ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

जनवरी–जून, 2025

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

'जूनी ख्यात' सम्पादक मण्डल

प्रो. हरबंस मुखिया	इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. वसन्त शिंदे	पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहास	पूर्व कुलपति दक्कन कॉलेज, पूना
प्रो. राजीव गुप्ता	समाज शास्त्र	राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर
प्रो. दिलबाग सिंह	राजस्थान इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा	मध्यकालीन इतिहास	पूर्व कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विवि., कोटा (राज.)
प्रो. एल.एस. निगम	प्राचीन इतिहास	पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर
प्रो. सीताराम दुबे	प्राचीन इतिहास	बी.एच.यू., वाराणसी
प्रो. चन्द्रपाल सिंह चौहान	शिक्षा	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़ (उ.प्र.)
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय	कला इतिहास विशेषज्ञ	इन्दौर, (म.प्र.)
कर्नल प्रो. एस.एस. सारंगदेवोत	कुलपति	जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (वि.वि.), उदयपुर (राज.)
डॉ. दिनेश जुनेजा	डायरेक्टर	खुशालदास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़
प्रो. सूरजभान	मध्यकालीन इतिहास	दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
प्रो. किशोरकुमार अग्रवाल	क्षेत्रीय इतिहास	पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर
प्रो. रामेश्वरप्रसाद बहुगुणा	मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. जीवनसिंह खरकवाल	प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व	साहित्य संस्थान जे.आर.एन, विद्यापीठ, उदयपुर

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 14 • अंक 2 | जनवरी-जून 2025

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

ISSN 2278-4632

'Juni Khyat' is A peer-reviewed Journal, which is in consonance with the 'UGC Suggestive Parameters for Peer-Reviewed Journals' (Vide letter No. F.No. L-l (2OL8(CARE/JOURNAL)-Part file, dated 11.02.2025)

Juni Khyat was indexed in UGC-CARE List (upto February 2025).

संपादक

प्रोफेसर (डॉ.) बी. एल. भादानी

❑

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

❑

सह संपादक

डॉ. रीतेश व्यास ❑ **रवि पुरोहित**

मरु भूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन, एन.एच. 11

श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज. 331803

सदस्यता

10 वर्ष के लिए शुल्क - 5000 रुपये

संस्थागत सदस्यता - 700 रुपये वार्षिक।

इस अंक का मूल्य : 500 रुपये

Punjab National Bank

Marubhumi Shodh Sansthan,

Sri Dungargarh (Bikaner)

Account No. 3604000100174114

IFSC. PUNB0360400

❑

प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :

मरू भूमि शोध संस्थान

(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)

संस्कृति भवन, एन.एच. 11

श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज. 331803

फोन : 01565-222670

❑

लेजर टाईप सेटिंग : जुगल किशोर सेवग

मुद्रक : महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूंगरगढ़

आवरण चित्र :

कश्मीर से प्राप्त नौवीं शताब्दी की भगवान शिव पार्वती एवं कार्तिकेय गणेश की मूर्ति

मेट म्यूजियम न्यू यॉर्क

❑

सम्पादकीय कार्यालय :

प्रोफेसर (डॉ.) बी.एल. भादानी

रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.) मो. 9950678920

bbhadani.amu@gmail.com • junikhyat.mss@gmail.com

सावधान

जूनी ख्यात (अर्द्ध वार्षिक) दिसम्बर 1994 ई. से नियमित Print Form में प्रकाशित हो रही है। जून 2019 में 'UGC Care List' (S.N. 220) में सामाजिक-विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित है। हमारी पत्रिका Online प्रकाशित नहीं होती है।

जूनी ख्यात नाम से ही एक फर्जी पत्रिका (Cloned Journal) ऑन लाइन निकाली जा रही है जो हमारे ही ISSN एवं यू.जी.सी. केयर लिस्ट की संख्या को उपयोग में ले रही है। इस सम्बन्ध में **यू.जी.सी.** ने 23-7-2020 को 'Cloned Journal' की एक सूची जारी की है उसमें अन्य पत्रिकाओं के साथ **जूनी ख्यात** का भी नाम है। यह पत्रिका निम्न वेबसाइट पर प्रत्येक विषय के शोध पत्र आमंत्रित करती है।

Juni khyat Journal

Language	:	English & Hindi
Publisher		NA
ISSNo.		2278-4632
URL http	:	www.junikhyat.com

हमारी पत्रिका **मरू भूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़** द्वारा प्रकाशित की जाती है। अब 'नकली पत्रिका' बी.एल. भादानी, संपादक के नाम का भी उपयोग कर रही है, जो एक आपराधिक कृत्य है।

इसमें तथाकथित रूप से प्रकाशित आलेख का कोई महत्त्व भी नहीं है। इसलिए शोधार्थियों से सावधान रहने की अपील की जाती है।

प्रोफेसर (डॉ.) बी.एल. भादानी
संपादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
220		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal **: JUNI KHYAT (Print Form)**
ISSN Number : 2278-4632
e-ISSN Number : NA
Source : **UGC**
Discipline : **Social Science**
Subject : **Social Sciences (all)**
Focus Subject : Cultural Studies
Publisher : Marubhoomi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

Membership Fees

A half - yearly research journal named **Juni Khyat** is being regularly published by the Marubhumi Shodh Sansthan Shri Dungargarh (Bikaner), which is featured in the Social Sciences category of the UGC Care List. Its membership fees for ten Years is Rs 5000/-. This increase is applicable from the July- December 2022 issue.

Members Life will get the journal for ten years and no fee will be charged from the members on the publication of research articles approved by the subject experts. Please deposit the membership amount in the following account number of our organization and send us information about the same.

email: marubhoomisansthan@gmail.com

Membership Fee Account Details:-

Punjab National Bank

Marubhumi Shodh Sansthan,

Sri Dungargarh (Bikaner)

Account No. 3604000100174114

IFSC. PUNB0360400

Regarding publishing articles in the Journal and life time (TEN YEARS) membership fees and charges. Please contact following Persons

01. **Shri Shyam Maharshi** (Managing Editor) 9414416274
02. **Dr. Ritesh Kumar Vyas** (Associate Editor) 9828777455

Send research articles to the following

email: bbhadani.amu@gmail.com ● drrkvyas1977@gmail.com

शोध आलेखकों से निवेदन है कि वे अपने आलेख अंग्रेजी में 3000 से 3200 एवं हिन्दी में 3400 से 3500 शब्दों से अधिक न भेजें। इससे अधिक शब्द होने पर आलेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

पत्रिका के सदस्यता शुल्क में वृद्धि

मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) द्वारा **जूनी ख्यात** नामक अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका नियमित प्रकाशित की जा रही है जो UGC Carelist की सामाजिक विज्ञान की श्रेणी में दर्शाई गई है। इसका सदस्यता शुल्क रुपये 5000/- है। आशा करते हैं कि आप हमारी विवशता को समझ कर हमारा सहयोग करेंगे।

पत्रिका के सदस्यों को दस वर्षों तक पत्रिका मिलेगी एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा स्वीकृत शोध आलेखों के प्रकाशन पर सदस्यों से किसी प्रकार की फीस नहीं ली जायेगी। सदस्यता हमारी संस्था के निम्न अकाउण्ट (खाता) में जमा करवा कर हमें उसका स्क्रीनशाट भिजवाने का कष्ट करें।

Membership fees should be transferred directly to the A/c of Institution and send us screenshot with complete postel Address

to

email: marubhoomisansthan@gmail.com

सदस्यता शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh

Bank	:	Punjab National Bank
Branch	:	Sri Dungargarh
A/c No.	:	3604000100174114
IFSC	:	PUNB0360400

पुनश्च : सदस्यता एवं पत्रिका से संबंधित अन्य प्रकार की जानकारियों हेतु प्रबंध संपादक **श्री श्याम महर्षि** मो. नं. 9414416274 एवं **डॉ. रीतेश व्यास** मो. नं. 9828777455 से संपर्क करने का कष्ट करें।

शोध आलेख संपादक की ईमेल पर भेजें : आलेख के साथ अपना ई मेल पता डाक का पूर्ण पता एवं मोबाइल नंबर का उल्लेख आवश्यक रूप से करें। bbhadani.amu@gmail.com ● drrkvyas1977@gmail.com

दस्तावेज मातृभाषा में

यदि कोई मुझसे पूछे कि सबसे अधिक ताम्रपत्र कहां जारी हुए तो मैं कहूंगा : मेवाड़ में ! सबसे कम ताम्रपत्र कहां पढ़े तो भी वही उत्तर होगा। यह बड़ा सच है कि मेवाड़ में सैकड़ों की संख्या में भूमिदान के ताम्रानुशासन जारी हुए हैं। मैंने महाराणा हमीरसिंह (प्रथम) से लेकर महाराणा भूपालसिंह तक के समय के ताम्रपत्र पढ़े हैं। ताम्रपत्र ही नहीं, रजतपत्र भी मिले हैं। शिलालेखों को भी मिलाएं तो यह संख्या 2000 हजार से ज्यादा ही होगी। मेवाड़ की यह संख्या कम नहीं है, मुझसे पहले भी लोगों ने पढ़े ही हैं। यहां एक-एक अग्रहारी (लाभार्थी) परिवार में दो से लेकर पांच-पांच ताम्रपत्र भी मिले हैं।

सबके सब स्थानीय मेवाड़ी भाषा में है। मैं इसीलिए कहता हूं कि देश में ताम्रपत्र की बड़ी भाषा मेवाड़ी रही है। एक एक महाराणा के कई कई ताम्रपत्र। अनेक महाराणाओं ने पुराने ताम्रपत्र नवीकृत करके भी जारी किए। युवराज, रानियों और सामंतों ने भी जारी किए। महाराणा उदयसिंह ने नवीन राजधानी के प्रबंधन में तो महाराणा प्रताप ने तो संकट काल में भी विजय कटक का डेरा (स्कंधावार, छावनी) से जारी किए। महाराणा भीमसिंह और जवानसिंह के शासन काल में सैकड़ों नवीकृत ताम्रपत्र जारी हुए। पूरा कारखाना खुल गया!

ये सब देवनागरी लिपि में है। रामजी की जय और श्री गणेश सहित एकलिंगजी का अनुग्रह स्मरणीय मिलता है। भाले के चिह्न और सही के संकेत के साथ है जो राजकीय मुद्रा का रूप है। बहुत सुंदर अक्षरों में है। महाराणा की आज्ञा (दुए) से और ढिकड़िया, प्रधान आदि की अनुमति (प्रति दूए) सहित पचोली (कायस्थ लिपिक) द्वारा लिखित हैं। विक्रमीय वर्ष, मास, पक्ष, तिथि और वार (अमूमन) भी अंकित मिलते हैं। (भारतीय इतिहास के स्रोत, भूमिका)

यहां एक ताम्रपत्र महाराणा भीमसिंह का दिया जा रहा जो श्री अभिषेक जैन ने जुटाया है। यह नाथद्वारा के समीप घोड़च गांव का है। इसमें भूमि का प्रमाण हल में आया है जिसका मतलब 50 बीघा होता है।

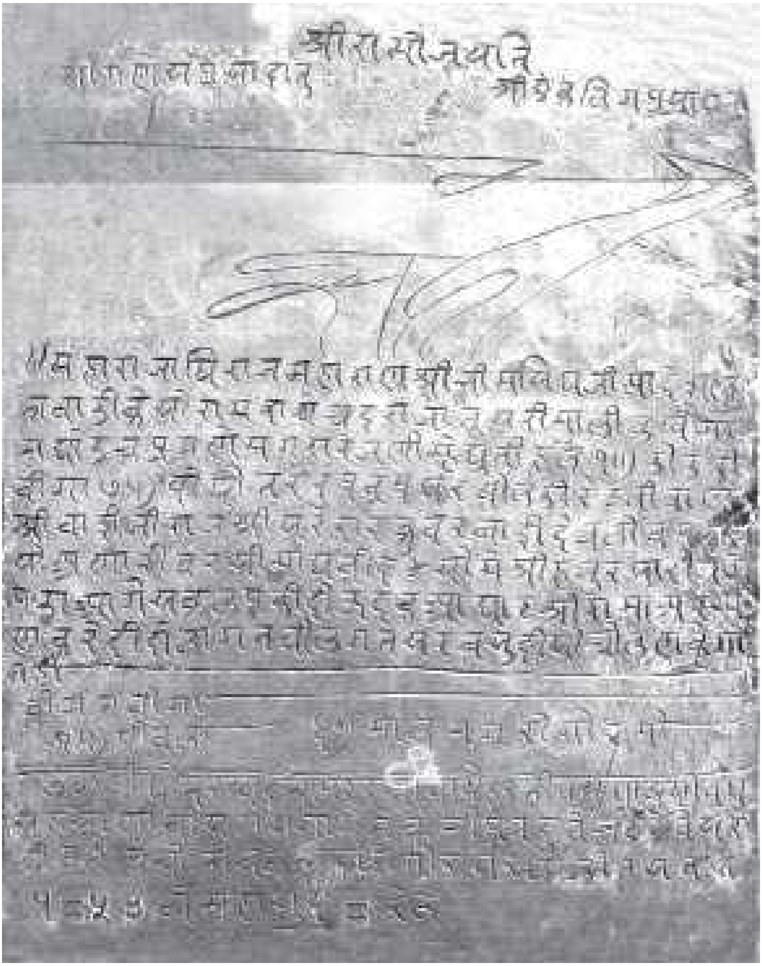

इस भाषा को हर कोई समझ सकता है ना!

श्रीरामो जयति

श्री गणेश प्रसादातु श्री एकलिंग प्रसादातु

सही

1. महाराजाधिराज महाराणा श्री भीम सिंघ जी आदेसातु
2. त्रवाडी केसोराम रायेचंद रा जात सरीमाली कस्य गा-
3. म घोडच प्रगणे मगरा रे जणी म्हे ध्रती हल 1।।) डोड री

4. वीघा 75) पीछोतर रुष, व्रष, घर बोलडी रेट नीवाण
5. श्री बाइजीराज श्री सरदार कुंवर बाइ देवलोक पधार्या
6. सो अणि री वरसी माघ वीद 4 सोमे श्री हजूर सारी गरे
7. पडा आगे सकलप कीदी उदक आघाट श्री रामा अरप
8. ण करे दीदी लागत वीलगत सरब सुदी सो चोलण व्हेगा नहीं
9. वीगत वीगा
10. 15) पीवल 60) माल मगरी गोरमो
11. 75 वीघो, स्वदत्ता परदत्ता वा ये हरंती वसुंध्रा। सष्टी व्रष
12. सहस्राणी वीस्टायं जायते क्रमी, प्रतदुवे भट्ट देवेसर
13. लीषता पंचोली बलभदास गीरधर लालोत संवत्
14. 853 व्रषे महा सुद 8 रेऊ.

—डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

ISSN 2278-4632

संपादकीय

जनवरी से जून 2025 अंक के लिए सामाजिक विज्ञान के तथा कुछ सह विषयों से सम्बन्धित देश के विभिन्न उच्च शिक्षा से जुड़े विद्वानों व शोधार्थियों के शोध पत्र प्राप्त हुए हैं। इन शोध पत्रों को विषय विशेषज्ञों को उनकी राय के लिए भेजा गया। कुछ आलेखों को संपादक मंडल के सदस्यों ने गहन जांच के बाद प्रकाशन के लिए चुना। गत वर्ष **जूनी ख्यात** के लिए खास रहा। जुलाई से दिसम्बर 2024 के अंक के लिए हमारे पास इतने अधिक शोध पत्र प्राप्त हुए कि एक ही अंक के दो वोल्यूम (भाग) प्रकाशित करने पड़े। दोनों अंकों में 100 के करीब आलेख थे।

इस अंक में अनेक महत्वपूर्ण आलेख हैं। इसमें डिजिटल इण्डिया, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं विधि के क्षेत्र में प्राकृतिक न्याय, कैशलेस ट्रांजेक्शन में ग्राहाकों की सुरक्षा के कानूनी प्रावधानों, आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस जैसे विषयों के पत्र शामिल हैं। स्थापत्य कला, लोक कला, संस्कृति के साथ-साथ समाजशास्त्र व राजनीति शास्त्र विषयों के आलेख प्रकाशित हो रहे हैं। वर्तमान राजनीति में जो हॉर्स ट्रेडिंग का दौर चल रहा है, उस पर भी आलेख है।

इस अंक में एक नवाचार भी हुआ है। देश के विभिन्न भागों में पुरातात्विक उत्खनन होते रहते हैं, जिनसे साधारणतः हम अनभिज्ञ होते हैं। इनकी जानकारी हम पत्रिका द्वारा आप तक पहुंचाने का प्रयास कर रहे हैं। इस अंक में केरल के कोच्चि तथा राजस्थान के भरतपुर के पास बहज नामक स्थान पर हुए उत्खनन कार्य की सर्वे रिपोर्ट शामिल है। आशा है इसमें भी आपका सहयोग मिलता रहेगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय इतिहास पर केन्द्रित कई नए विषयों पर शोधार्थियों के शोध पत्र इसमें संकलित हैं यह अंक समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों पर शोध करने वालों के लिए लाभकारी होगा।

इस अंक में जिन विषय विशेषज्ञों ने आलेखों में अपनी महत्वपूर्ण राय समय पर प्रेषित कर जो अपना सहयोग दिया, उनके प्रति पत्रिका परिवार आभार व्यक्त करता है। ये विद्वान हैं— प्रो. चंद्रपाल सिंह चौहान (अलीगढ़), प्रो. राजीव गुप्ता (जयपुर), प्रो. के. के. अग्रवाल (रायपुर), प्रो. जीवन सिंह खरकवाल (उदयपुर), प्रो. सूरजभान (नई दिल्ली), डॉ. अनंत किशोर जोशी, डॉ. राकेश किराड़ू (बीकानेर) एवं डॉ. विनोद शर्मा (कोटपूतली)।

पत्रिका की टाईप सेटिंग का कार्य जुगल किशोर सेवग ने किया हैं। जिन्होंने अत्यंत लगन के साथ कार्य निष्पादन किया, इस हेतु उनका आभार।

संपादक

विशेष सूचना

सभी माननीय सदस्यों व पाठकों को बताते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि इस अंक से हम एक **पुरातत्व के क्षेत्र में नई खोजें** का कॉलम प्रकाशित करने जा रहे हैं। हमारे आस-पास के क्षेत्रों में ऐसे उत्खनन हो रहे हैं जिनकी जानकारी हमें नहीं होती। ऐसे में खुदाई के कार्यों और नई खोज को सभी तक पहुंचाने के लिए नया कॉलम शुरू किया है। इस अंक में **केरल के कोच्चि** और राजस्थान के भरतपुर के पास बहज नामक स्थान पर हुई खुदाई के कार्य को प्रकाशित किया जा रहा है।

आप माननीयों से निवेदन है कि यदि आपके शहर या गांव के आस-पास कोई **पुरातात्विक उत्खनन व सर्वेक्षण हो रहा है** या हो चुका है तो उसकी एक संक्षिप्त रिपोर्ट (फोटो सहित) बनाकर हमें भेजें। उसके परीक्षण के बाद उसे प्रकाशित किया जाएगा।

धन्यवाद

संपादक

अनुक्रम

- Contextualizing Panji Prabandh of Mithila in historical tradition of pre-colonial India 15
  • Dr. Amitabh Kumar
- The Nawabi in the City and the City in the Nawabi : Lucknow and the Reinvention of the Awadh Nawabi 36
  • Rohma Javed Rashid
- Mapping Nagaur's Importance in the Late Eighteenth Century : From the Production of Metal Crafts 47
  • Athar Hussain
- The Sacred *Nishan*: Valmiki Community's Role in Honouring the Folk Deity Goga Ji 57
  • Naincy Rana
- History and the Legacy of Slavery in Toni Morrison's *Beloved* 79
  Subhash Singh • Dr. Sanjeev Tayal • Dr. Sumita Ashri
- Juvenile Heroism: A Study On The Young Revolutionaries of Sonarang National School Of Colonial Bengal 87
  • Smt. Dalia Roy
- Youth Dormitories And The Sociological Imagination : A Comparative Historical Study Of Indigenous Institutions In India 95
  • Kalpana Singh
- Implementing Art-integrated Learning through Visual Arts 113
  Susmita Lakhyani • Shivam Luthra
- Basic Elements of Principles of Natural Justice 124
  Bidhan Chandra Patra • Dr. K.B. Asthana
- Recruitment of Children for Hostile Activities : Analysis of Amendments in Indian Criminal Laws through Criminal Law Amendment Bills, 2023 vis-à-vis various United Nations Guidelines. 133
  Shivanshu Tiwari • Shri K.B. Asthana

- Significance of Communication as a Tool to Boost Organizational Work Efficiency 142
  - **Dr. Bhawana Bardia**
- Structural Changes In Occupational Pattern of Workforce In India 154
  - **Dr. Bhupinder**
- Adolescent Reproductive Health Education For Sustainable Development 164
  Paramita Mukherjee ● Minara Yeasmin
- Gender-Specific-Biases and its Impact on Stress Level, Commitment and Enthusiasm Among Working Women : A Primary Research Study 184
  Sawitri Devi ● Rajkumar
- Challenges and Growth Potentials of Tourism Industry in Mizoram 199
  - **Sushovan Mondal**
- Consumer Protection In The Digital Marketplace 208
  - **Dr. Shiv Shankar Vyas**
- Role Of Artificial Intelligence And Information Communication Technology In Agriculture 214
  Dr. Sanjay Kumar ● Nikhilesh Rai
- Chinese Policies towards North Korea : No Scheme and Regulation 220
  - **Rachit Bharadwaj**
- A movement for socio economic transformation by self help groups : A Case study on Farakka C.D. Block, Murshidabad, West Bengal, India 228
  - **Jiban Barman**
- Exploring The Shifts In Portrait Photography Brought Forth by The Growth of Mobile Phone Photography 243
  - **Dr. Ajay Yadav**

- The Question of Women's Education and Emancipation in Colonial Bengal : A Study of the Role of Christian Missionaries and the East India Company's Administration 254
  • Dr. Sourav Naskar

- Women of Wisdom : Women Rishis in Kashmir with Special Reference to Shanga Bibi 266
  Dr. Shabir Ahmad Punzoo • Dr. Gowar Zahid Dar

- Occupational Structure Pattern of Population In Bemetara District (Chhattisgarh) 280
  Ghanshyam Nage • Devendradhar Dwivedi

- Lost in the Pursuit of Excellence : The Mental Health Burden of Academic Stress on Young Minds 290
  Dr. Sneha Sharma • Ms. Rishika Gupta

- Celestial Nymphs And Sacred Space : Interpreting Devanganas In Early Medieval Temples of Rajputana 305
  • Dr. Shobha Singh

- स्वशासन की गांधी दृष्टि 313
  • कनक तिवारी

- राजनीति में आध्यात्मिकीकरण के गांधी के लक्ष्य का एक आलोचनात्मक विश्लेषण 355
  सुनिता मौर्य • अफरोज अहमद

- डिजिटल युग में अंबेडकर के सिद्धांत : ग्रामीण भारत में डिजिटल समावेशी समाज का निर्माण 367
  • नेहा मीना

- मनु स्मृति के महिला-संबंधी प्रावधानों की वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में प्रासंगिकता—एक अध्ययन 380
  • डॉ. अलका सैनी

- गोदान का समाज 399
  • डॉ. स्वपना मीना

- कृष्णगढ़ राजघराने का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक परिदृश्य 408
  डॉ. सुरेश सिंह राठौड़ • भगवती सोनी
- राजस्थानी चित्रों में शबीह अंकन : एक कलात्मक अध्ययन 425
  • डॉ. शैलेन्द्र कुमार
- सीकर में जन चेतना का प्रतीक : खादी 435
  • सुनिता कुमारी
- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जीवन कौशलों के विकास हेतु प्रमुख शैक्षिक रणनीतियाँ 439
  जसमीत कौर • अभिषेक कुमार प्रजापति
- नये दौर में हॉर्स ट्रेडिंग एवं रिसॉर्ट कल्चर की राजनीति : एक समीक्षात्मक अध्ययन 452
  • डॉ. शक्ति जायसवाल
- सतत विकास लक्ष्यों (SDG) की प्राप्ति की दिशा में वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों के समाजशास्त्रीय आयामों पर बॉलीवुड फिल्मों का एक अध्ययन 462
  • प्रो. (डॉ.) रमेश कुमार शर्मा
- *पुरातत्त्व के क्षेत्र में नई खोजे*
  भारत में पुर्तगालियों द्वारा निर्मित प्रथम दुर्ग के अवशेष 474
  केरल के कोच्चि
- बहज-पुरातात्विक उत्खनन की सर्वे रिपोर्ट 475
  • डॉ. रीतेश व्यास

Contextualizing Panji Prabandh of Mithila in historical tradition of pre-colonial India

● **Dr. Amitabh Kumar**

India like any other civilization in the world has her own historical sense and historical traditions in sharp contrast to the unanimous opinion of the Orientalist who left no stone unturned to portray a gloomy picture of India's past. In fact, they compared our historical tradition with their history produced along the European tradition and found deficient in terms of spatial and chronological precision. It appears that history and notions of past were inextricably enshrined in the notion of power. Historical sense presupposes a consciousness of past events that are relevant to a particular society, a chronological framework and express in a form that serves the needs of the society. The analysis of past event by suggesting causal relationship based on rational explanation appears to be a modern thinking. In this context the present paper proposes to explore the tradition of historical writing in pre-colonial India in two sections: the first section enquires look into some of the elements of historical traditions like genealogical records, inclusion of myth, spatial description of narrative, the theme of causality in narrative, and the measurement of time. In the second part the endeavour is to explore the Panji Prabandha or Panji records in Mithila, the essentially genealogical records of the brahmanas and the Kayasthas at the behest of the Karnata ruler Harisimhadeva in 14^{th} C.E. to serve a certain social obligation. The content, purpose and the manner in which genealogical records prepared and maintain by the specialist called Panjikaras for more than half a Millennium has attracted attention of the scholars of various hues. The present work intends to look for elements that constitute and confirm to make a historical sense and in tune with the historical tradition and history writing.

The contemporary history writing or historiography emerged a couple of centuries ago with the preconceived notions, visions, opinions and myopic assumptions that Indians had no historical sense. The historical tradition was conspicuous by its absence in their writing. Its prima facie appears to be believed by them that Indians had no tradition of keeping accurate accounts of their past specially in the spatial and temporal context. Again, the frequent portrayal of ossified, frozen and unchanging society by the historians of various hue only obfuscates the fact that there was a strong historical sense and historical traditions deeply embedded and rooted since the inception of the civilization of the subcontinent over a considerable period of time. The tradition got enriched and became robust, stronger and concrete shape with the passage of time. The Vedas, brahmanas, aranyakas, upanishads, akyayika, epics, puranas as well as the Buddhist and Jain traditions, all reflect the gradual evolution of the historical sense and historical tradition from myths, legends, narrative and genealogy to a more accurate, precise account keeping in view the temporal as well as special concern. In fact, the transition from the oral traditions to written tradition has all the elements and ingredients of historical sense. The emergence of a robust and vibrant indigenous historical writing even confirms to the European or Western paradigm of viewing the past gone by. But then there is a need to see them in right context and perspective and through the decoding and deciphering the elements of history within the confines of culture and civilization. Every civilization has their own ingenious intelligent way to preserve and propagate their past glory both in the form of oral as well as written tradition. Romila Thapar observes:" Societies represent their past in various ways."[1] It is in this context the present paper explores the genealogical records of Mithila in the form of Panji Prabandha that was conceptualised in 14th C.E., preserved, survived for over half a millennium and continued even today with the passage of time and shifting of geographical space serving the purpose although in a constricted and residual manner reflecting upon the historical consciousness of the region towards the end of early medieval period. The inquiry into various aspects of Panji Prabandha acknowledges and confirms to the historical sense, historical tradition and the paradigm as viewed by the scholars of present day from all over the world.

The Ancient Indian historical tradition though extant from the

inception of the civilization in the subcontinent in the oral form, assumed the written shape much later in the 1st millennium B.C.E. Nevertheless, the recovery, revival and resurgence were coincided with the British conquest and subjugation in the 18th C.E. The colonial hegemony, notion of power and supremacy demanded understanding of the colonial cultural milieu. Thus began an enquiry into India's past by a group of scholars who were often portrayed as Orientalists in broader sense and Ideologists in the narrower sense. With the enhancement of the stakes involved, their evolved and developed different shades of opinion regarding historical sense and historical traditional in the ancient Indian writings among the scholars ranging from absolute outright denial and rejection to partial acknowledgement and complete endorsement and acceptance of such tradition when the available sources were analysed not according to the modern definition but contextualizing them in the cultural milieu to which they belong.

The earliest generation of the Orientalist scholars encompassing William Jones Charles Wilkins, H.T. Colebrook, H.H. Wilson, Mount Stuart Elphinstone, Munroe and Malcolm were mesmerized by variegated culture of India and made foray into the realm of religion and philosophy. The subsequent generations represented by James Mill who wrote 'History of British India in 1817' in which he divided the history of India into Hindu Civilization, Muslim Civilization and the modern civilization was harbinger of the British tradition that vehemently denied the presence of historical sense and historical tradition or anything historical in the writings of Ancient India which he gave the nomenclature of Hindu civilization. He defended his argument by portraying the static, unchanging nature of Indian society. He also maintained that Indian society had remained substantially unchanged from the period of its origin to the coming of Aryans unlike the arrival of the British.[2] Mills assertion that Indian past had been that of unchanging static society dominated by despotic ruler[3] had reflected upon the Hegelian philosophy of history. Hegel believes that true history involved dialectical change and development. Indian history remaining stationery and fixed was outside the precincts of world history. In fact, Romila Thapar observes that the static character of Indian society concomitant with its despotic ruler became an accepted truth of Indian history. The concept of Oriental Despotism began to take shape.[4]

Christian Lassen in middle of 18 century applied Hegelian dialectical system of thesis, antithesis and synthesis to Indian context. Nevertheless his endeavour to connect Indian history with the general stream of world history fall apart following his inability to refute Hegel's assumption concerning the unchanging nature of Indian past.[5] Karl Marx pursuing the Hegelian assumption put forward his theory of Asiatic Mode of Production[6] characterised predominantly by self-sufficient village economy, absence of privately owned land, the lack of much surplus and the complete subjugation of village community to the state ruled by despotic rulers.

The Evangelicals like Charles Grant in his writing 'Observations on the State of Society'[7] saw pre–British Indian history as being almost totally without virtue. Their explicit purpose was conversion to Christianity, hence the approach. Moreover, Mills tradition of lack of historical sense and chronological sense is also evident in A.B. Keith's observation:"… despite the abundance of its literature, history is so miserably represented… that in the whole of the great period of Sanskrit literature there is not one writer who can be seriously regarded as a critical historian."[8] Echoing the same sentiment Vincent A. Smith asserts:" Most of the Sanskrit works were composed by Brahmans who certainly had not a test for writing histories, there interest being engaged in other pursuits."[9] E. Sreedharan observes: "The Europeans explain that the lack of historical sense to absence of national feeling and resultant popular action which are a powerful source to add to the writing of history was not evolved in India by all the foreign invasion during the period up to A.D. 1200… in the sense in which the Greek repulse of the Persian attack called forth popular actions and evoked the history of Herodotus.[10] Thus, lack of historical consciousness and historical sense was linked to lack of national unity and lack of political freedom. The presence or absence of historical sense to a great extent depends upon the belief and mental attitude of people.

J.W. M'Crindle renowned author on ancient India in his 'Ancient India as described in Classical Literature' envisages:"… without them our knowledge of India before the era of the Mohammadan Conquest would have remained all but an utter blank on the page of history. The Indian themselves did not write history. They produced no doubt, a literature both voluminous and

varied and containing works which rank as masterpieces in various departments of Philosophy, Poetry and science but within its vast range history is conspicuous by its absence. Their learned men were brahmans whose modes and habits of thought almost necessarily incapacitated them for the task of historical composition.[11] He further underlines:" Absorbed in devout meditation on the Divine Nature or in profound speculations on the insoluble mystery of existence, they regarded with indifference or contempt the concerns of this transitory world which they accounted as unreal, as a scene of illusion, or, to use their own expression, as Maya. Hence, they allowed events, even those of the greatest public moment, to pass unrecorded and so to perish from memory".[12]

Historical knowledge is the knowledge of past events in which changes are understood in terms of cause and effect related to index of time but the Indian believes in an absolute and external reality beyond change as well as lack of Universal standard and chronology was in sharp contrast to the European notion of time and chronology. Thus, it is not surprising that no ancient Indian historical work or creation is considered relevant as other works of past produced in classical world like 'History' of Herodotus or History of Polybius or works of Thucydides, Annals of Livy or Tacitus of Rome.

Even the Pioneer among the Indian historians like R.G Bhandarkar[13] followed the British model of history writing which was mainly a narrative of dynastic and political history. Romila Thapar observes: "Bhandarkar though recognising the deficiency of the sources as historical material. He was also aware of the most obvious prejudice of contemporary historians writing on the Indian past.[14] She believes that the cultural background of the Indian historians tended to inhibit a critical or analytical study of the sources. The British model was challenged in 1920 and 1930 by a bunch of scholars like H.C. Raychaudhury,[15] K.P. Jayaswal,[16] R.C. Majumdar,[17] R.K. Mookherjee[18] and other whose interpretation were in tune with the fervour of nationalism. They vehemently question the hegemonic notion of static and unchanging Indian society over the period of time. From within the nationalistic School emerged a new trend pioneered by D.D. Kosambi[19] who in his 'Introduction to the study of Indian history' saw the means of production as the key to the historical events though he didn't endorse Asiatic Mode of Production.

There was need to look for historical sense and historical tradition within the cultural milieu of indigenous traditions to find out how far the ancient sources confirm to the paradigm of historical sense and historical tradition of modern History writing. R.J. Collingwood observes: “All history is the history of thought and history is the re-enactment in the historian’s mind of the thought whose history he is studying.”[20] Moreover, the past which historian studies is not a dead past but a past which in some sense is still living in the present. Whether or not India had a sense of history she had actively a sense of past through this past was visualised in legendary term.[21]

There are group of scholars who adopted a different approach looking for historical sense and historical traditions in the ancient Indian literature. These include: F. E. Pargiter,[22] A.K. Warder,[23] V.S. Pathak,[24] Romila Thapar[25] and many others. F. E. Pargiter wrote two books on the historical tradition in ancient India based on the testimony primarily of the Puranas and also of the epics. Kunal Chakraborty argues that he took the Puranas seriously and argue that oral traditions would retain some memory of early kings, the genealogy were based initially on some authentic version of the past.[26] The contribution of V.S. Pathak in establishing historical sense and historical tradition of ancient history writing was even acknowledged by A.L Basham.[27]

Romila Thapar defines sense of history as a consciousness of past events, which events are relevant to a particular society seen in a chronological framework and expressed in a form which meets the needs of that society.[28] She further elaborates: “history implies a concern with the political events and in addition involves historical analysis of the past event by suggesting the causal relationship based on rational explanation and which therefore assumed a critical judgement on the past by the historians.”[29]

V.S.Pathak in his ‘Ancient Historians Of India’ envisages that “the oral tradition of history at least from the later Vedic age have five distinct forms: gatha, narasamsi, aakhyan, itihasa and purana. Gatha and narasamsi were in existence from the early Vedic age. Aakhyana or narrative were there in the Vedic period.”[30] In his opinion as work of historical nature Itihasa has come into being by the later Vedic age as it is mentioned in Atharvaveda[31] and

Brahmanas[32]. Derivatively it means verily thus happened. In its broader sense which developed later it includes all form of historical composition.[33] The word Purana as Pathak believes is the more comprehensive term its properly an adjunctive but as a substantive it occurs as early as in the Atharvaveda where in one passage it definitely means ancient lore.[34] He also suggests that towards the concluding phase of later Vedic period the literature of itihasa-purana tradition grew considerably and It was during this period that Vamsa developed and become characteristic features of the Puranas.[35] The original tradition was oral recited at gatherings and later assumed the written forms. The works of collecting information and composing it in literary form was the special function of the Magadha's, the bards and the chroniclers. They were probably originally drawn from the priest poet families of the Vedic period and hence accorded important status.[36] Their works was to prepare the genealogy of the Gods, the kings, the Rishi's and the heroes and to compose Royal panegyrics and eulogies as the occasion demanded.[37]

Moreover, in the context of new settlement and inter-tribal warfare, as Romila Thapar suggest the genealogies of the leaders became the nucleus of historical traditions since these were maintained among the other things for the functional purpose of proving legal rights and social status and also to procure the tribal identity.[38] As long as the tradition was oral it would require professionally skilled memorizers but once it was written down, those with access to formal education take over the records. Thus, the brahmanas appropriated the genealogy and became the keeper of records. The importance of historical tradition was realised and it had to be incorporated with functions and not left to mere genealogist and chroniclers. The fact that records were written in the puranic form was a result of a variety of historical reasons. The concept of divinity was no longer a dominant aspect of the Indian political tradition rather status by birth became a much more important factor.[39]

Nevertheless, the composition, format and structure of Purana reflects a fairly integrated view of the past notwithstanding the fact that this view is some extent clouded by mythology, cosmology and the unfolding of the Vaishnavite tradition. Romila Thapar delineates the aim of Purana as to consider subjects relevant to the nature of creation, the relationship between men and God, the maintenance

of societal Institution, the genealogies of Kings, heroes and legends related to Krishna avatar of Vishnu and the eventual destruction of the world at the end of Kaliyuga.[40] Seen in this light she proclaims that the Puranas present an integrated world view from a Vaishnavite brahmanical perspective of which historical tradition became an integral part.[41]

Although the Vishnu Purana may not reveal a critical and causal analysis of the past but it certainly contains evidence of historical consciousness manifested and reflected in the consciously formed image of the past from the 7th C.E. onwards.[42] The genealogical aspect of tradition transcended into various Vamsavali or family chronicles maintained in many Kingdoms also paved the way new tradition of historical writing, the historical biography or carita. Moreover, the role of suta was assumed and appropriated by the court poet who became mainstay to the history writing.in pre-colonial India.

In fact, Romila Thapar outlines three major forms which constitute the historical tradition namely: myth historical narratives and genealogy.[43]

Early Indian historical tradition brought into its fold the myths whose significance can be understood in terms of historical world view of the author of these texts. The Puranic myth referred to origin of two royal lineage has a fairly obvious meaning. The great flood caused the total destruction of the world and this is recognised as stage in the cyclic time concept. The choice of two lineages the sun and the moon are equally significant. Perhaps the myth was a memory of dividing tribe into two rival groups or it was an attempt to weave the many dynasties to main current and finally to a single origin.[44] Historical narratives often contain the core of historical explanation. The notion of time and the role of man are instrumental in interpreting the nature of historical explanation. The chronological sense existed from the beginning of the civilizations and reflected in measurement of time which changes and evolves in keeping with the historical changes in the society. Earlier it was measured on the basis of natural phenomena which occur regularly. The concept of time was cyclical and lunar reckoning became the obvious basic measure. For the purpose of historical memory genealogies were maintained in terms of regnal year. “Time

periods are often reckoned not according to a calendar but by some important events."[45] In ancient India lunar calendar was frequently used for everyday activity while the solar calendar was used by the priests for keeping accurate records and ascertaining dates thereby contesting the European prejudice of lack of chronological sense. The lunar calendar continued to be used widely perhaps because it's easy to use and perhaps much because of rituals associated with the time reckoning had already been established on the basis of lunar calendar.[46]

Besides the use of regnal years and calendar the chronological sense also reflected in the use of eras . To begin with Vikram and Saka eras were widely used, but from the Gupta period a large number of eras came up all over the continent. Calendars and era are more functional aspect of time reckoning.[47] Nevertheless, in early India the concept of time was generally a cyclical concept where the movement of time was in the form of circle.

The theory of Mahayuga was not really a concept of cyclical time it also subsumed the idea of changing morals. Such a cyclical concept emphasised continual change manifesting the dynamic and vibrant nature of the society in sharp contrast to moribund, ossified and static image drawn by the European counterpart. It has been suggested that association of time with destruction and with retrogressive movement inhibits the idea of a purpose in history. But the Hindu cycle a cosmological concept didn't prevent the recording of past in a form considered socially relevant and necessary to future and present.[48]

The theme of causality an essential ingredient of historical sense and historical consciousness in historical explanation was obscured by predominance of Dharma and Karma, being integrated to historical explanation. In fact, the two introduced the element of historical determinism and the idea of responsibility of the individual in history thus portraying the historical sense from today's perspective. Dharma was seen in historical context as social religious ordering of the society. Nevertheless, it was an ideal concept and the application of the deterministic explanation was rare. The concept of Karma concerns the action in the life of an individual which shapes his next birth. Continuity from the past is both relevant and significant. Moreover, the historical purpose of

man is to perform merit earning action and thus arrive at salvation. From the perspective of historical explanation, the concept of Karma holds an almost dialectical position vis-a vis that of Dharma.[49] By conceding the concept of Karma ultimately man's control over his own action was also conceded.[50] The belief that the Karma of the king is united with his people and the people get the king it deserves has political overtones. All this unmistakably suggest the flourishing of strong historical sense and historical tradition pervading in the writings of pre-colonial India.

The core of historical traditions are the genealogical records. F.E. Pargiter in the 'Ancient Indian Historical Tradition' endeavours to ascertain the chronology of the beginnings of Indian history by correlating the genealogical information from the Vamsanucarita material from various Puranas.[51] He even tried to identify the various lineages with the predominant racial linguistic group. There were scholars working on a chronological reconstruction but in the absence of critical editions of Purana became a major stumbling block. Traditional genealogies are rarely faithful record of times past as Romila Thapar[52] argues but are memories of Social relations. Her analysis shows that genealogies became important point of historical changes either with the entry of new social groups or in periods of competition. In other words, the genealogies reveal a pattern that's reflects socio political change over a long period of time.[53]

Genealogies serve a definite purpose related to the past and claim to be records of succession yet very often their preservation is dependent on the social institutions of the period when they were put together and for which they provide legitimising mechanism.[54] They are often encapsulations of migration and movement of people in time and space and to that extent are associated with the geographical locale. However, the genealogical record is based on the distribution of lineage which may or may not coincide with the geographical region. [55]

Moreover, in Romila Thapar's analysis genealogies as record of social relations were concerned only with particular social groups namely those who were the members of the lineages and had access to political and social status. Lineage of those in authority even in the tribal society had to be maintained with as much concern as those of the kings. When other groups began to participate in social

and political power such as religious teachers and priest then their genealogy had also to be maintained.[56]

The keeping of genealogies become important with the emergence of property, for the right to ownership or participation in property can be proved by lineage links. In a pre-agriculture food gathering society, the right to ownership was faintly defended and flexible. In an agrarian society the notion of property became stronger. The record of ownership and the status can extend not only to the rights over land and live stocks but also to right of women in the form of marriage alliance between the lineages and the other sources.[57] All this suggest conscious endeavour to record the past event which had greater relevance and significance for the generation to come. Most traditional genealogy carry two types of information. The core of the genealogy consists of succession list or the list of descent group called fixed tradition interspersed with this is the narrative tradition which is added to and changed by the genealogist more freely.

The fixed tradition was less tampered with although it was often telescoped where only essential names and events were memorized and other matters dropped as long as genealogical record was an oral one.[58]

The narrative tradition consisting of legends or description of events inevitably changed more easily when the social norms changed or when the new requirements demanded a fresh narrative. The inclusion of genealogies in a body of literature reflects both a desire to freeze the tradition on the assumption that it will continue to serve a social purpose as well as taking over the tradition from the professional memorizers to literate groups.[59] This at once represent the historical sense of continuity and change unlike Moreover, the coalescence of a number of genealogies reflects the collation of various literary tradition. These aspects of genealogical records in the ancient Indian tradition can be seen as a useful source of data.

It is in this context the present paper explore the Panji Prabandha of Mithila essentially genealogical record prepared by a group of expert professionals carefully recruited to serve the socio-political expediency. The Panji Prabandha which came into existence under the tutelage of the Karnata ruler Hari Simha Deva in the 14th C.E. Though prepared and maintained by the experts called

Panjikaras mostly brahmanas and kayasthas has both political as well as social connotations. Moreover, endeavour is also to explore how far the Panji Prabandha system confirm to the historical sense and historical tradition as interpreted by the historians of modern thinking especially in the chronological and spatial sense. The exploration is aimed to trace out historical sense whether there is consciousness of the past event relevant to the Maithil society and whether it confirms to the notion of spatial and temporal concerns absence of which often led to the rejection of these works as historical tradition. The present paper will also look into what was the purpose of recording the genealogy by the Panjikaras whose genealogy was recorded by them and why. It is only after an enquiry into all these aspects we can say anything definitely.

G.A. Grierson describes Mithila “For centuries it has been too proud to admit other nationalities to intercourse on equal terms and has passed through conquest after conquest from the north, from the east, from the west without changing its ancestral peculiarities.”[60] “Furthermore, it was land under the domination of a sept of brahmanas extraordinarily devoted to the mint, anise and cumin of the law.”[61]

Grierson provides the description of the marriage customs and genealogical practices of the Maithil Brahmanas:”the Soti Brahmans of East Tirhut have several curious marriage customs which have existed for many hundred years, some of which will now be noted. The greatest care is kept in keeping up correct genealogies of this clan. The genealogical registers are called Panji and they are kept up by hereditary genealogist call panjiyar. Once a year or often there are great meetings of these brahmans at Sauratha, near Madhubani and other places where the panjiars assemble and write up the registers. They also arrange marriages after consulting their registers and give certificate to the parents certifying that the marriage is lawful and that the parties are not within the prohibited degrees of affinity. These certificates are called adhikara patr or asujan patr. The settlement of the condition of marriage is called Siddhant.”[62] There existed a basis of social identity that predates linguistic identity.

These arrangements were made centuries before Grierson’s visit to the region in the 14th C.E. during the reign of Harisimhadeva. In Mithila there was a creation of formal genealogical system known

as Panji Prabandha, an elaborate system of genealogical records similar to Kulji texts of Bengal,the Buranji texts of Assamthe Madalsa Panji of Orissa.[63] This custom of keeping genealogies traced back to the times of Kumarila Bhatta reference to ‘Samuha Lekhya’[64] and even earlier in accordance with the Puranic tradition of keeping genealogical records. These records were kept by the Maithila brahmanas and Kayasthas as wellas the Suri caste.[65] The Panji Prabandha unlike Samuha Lekhya which was maintained individually came to be elaborated, compiled and maintained under royal patronage and a set of trained genealogist called Panjikaras who were assigned the task of keeping records up to date.[66] The measure got so stabilised it has weathered in course of six hundred years and more ,all the storms that have blown over Mithila without its root being shaken much less uprooted.[67]

The purpose of Panji Prabandha:

Some scholars have acclaimed the Panji as a ‘Crowning act’ of the age which was and has been, never excelled before or after.[68] But from a close and impartial study of the Panji it is clear that it was a reactionary measure.[69] Without going into merits the fact remains that it recorded an important event of past with a definite purpose to serve. This new reform was affected by Harisimhadeva with a view to saving the Maithila society from being polluted by foreigners, who were already knocking at the doors of Mithila and protecting the purity of blood in Maithila society.[70] The Panjis are the only literature of its kind in the world, which went on multiplying from time to time with new additions and alterations. It has many branches, each having hundreds of sections and sub sections, all equally important. There are one thousand and five hundred villages panjis of which one thousand villages were inhabited by the kulinas.[71]

The king appointed official genealogist in order to maintain the register. New rules were enacted regarding marriage and the validation of marriage must be by genealogist and approval by the king was made compulsory. The Panji Prabandha thus established the endogamous boundaries of a new brahmana community. Moreover, by controlling marriage, the system also dictated the future membership in the community.

Besides formulating endogamous boundaries, the Panji system

also delineated the second most important basic foundation of the caste- the territorial distribution. The territorial aspect of the Maithil Brahmin focuses upon the creation of a territorial patriline anchored in the Mithila region. The patriline or the mula has an apical ancestor who is supposed to be the earliest fore father to have occupied the region. The mula manifest a deliberate attempt by the implementer of the Panji Prabandha to establish brahman lineage connecting to the Karnata kingdom. After the Panji Prabandha the term Maithila was reinforced from a generic territorial designation to refer to Brahman inhabitants of the Mithila region. In fact, the term was used since the formulation of Panji Prabandha thus reflecting upon chronological sense. The implementation of Panji Prabandha by the Karnata king was an important historical event as it established the Maithil brahman as a distinct endogamous and territorial caste group for the first time.

Besides the Panji Prabandha placed the authority to regulate the problem community of Mithila in the hands of the King. Nevertheless, the invasion of Delhi Sultanate abolished the Karnata dynasty and replaced it by a new ruler who was the high ranking Srotriya brahmana. His social practices were not only regulated by the Panji system but he also took the charge of regulating the system. Panji Prabandha was an endeavour to verify the identity of brahman through creation of standardized genealogy and regulation of marriage.

It established that brahman was indeed brahman by registering him in the genealogical census. The system classified each brahman based upon his ancestry on the territorial basis called Mula. The Mula assumed historical importance as Biji purusa was a historical figure unlike the gotra eponymous rishis were in legendary form. According to Risley, wherever exogamy based on mula conflicted with that based on gotra the mula prevailed over the gotra[72] Nevertheless as the gotra is basic principle of primary kingship and society the Panji Prabandha classified all the mulas in terms of gotra affiliation in gotra Panji. A sub lineage of mula is grama or village called Patra Panji. Unlike the legend of Harinath Upadhyaya which explains the origin of genealogical record there is no traditional legend associated with the mula upon which Panji Prabandha was organized.

Moreover, the system ensured marriage between individuals belonging to the registered Mula. The Mula exogamy became the order of the day besides the gotra exogamy. Thus, kula and mula express a circle of agnatic descent, and no one was allowed to marry a girl of his own mula.[73] The Panji system controlled the identity of brahmans in Mithila ensuring that future brahman would be born to parents whose Brahmanism is confirmed by genealogical records.

The exercise was undertaken on a grand scale where all the brahmans were asked to report their paternal and maternal ancestry. The information collected and compiled and became the basis of the official genealogical records called Mula Panji,[74] containing ancestral record of every Brahman male in the community. The Gotra Panji attached to the beginning of Mula Panji entailed classification of lineage according to Gotra. The Uterha Panji contains ancestral details of particular individual and is used in the selection of marriage partner.

Mula as spatial connotation and spatial sense:

Panji Prabandha not only codified the marriage rules but it also introduced a new exogamous rule based upon mula. The mula is the foundation of principle of the social organisations of the brahmanas in Mithila. It is agnatic lineage subordinated to Gotra. All the mula that belong to a gotra are sagotra. The genealogical records are organized according to the mula which is agnatic lineage that descends from primeval individual or the Biji Purusha.[75] The crisis faced by Harinatha Upadhyay spurred the brahmanas to recognize the importance of genealogy. It emerged as a response to a breach of law. The necessity of accurate record was addressed by the creation of formal visible documents. In fact, Panji Prabandha eased the existential anxieties of the brahmanas; by providing a means of verifying their identity thereby it ensured the rebirth of Brahmanism in Mithila.

The Panji Prabandha state, kinship and the caste:

The Panji Prabandha represent a new aspect of relationship between state, kinship and the caste The systematisation of genealogy and the appointment of officers entrusted with maintenance of genealogies bound caste and kinship with political authority and state bureaucracy. Mula was a socio centric aspect of the brahmana

identity. It is the basis of endogamous and territorial bound caste community of Maithil brahmana. The collection of registered mula in genealogical records defined the conceptual and geographical parameters of an endogamous group established a jati of Maithil brahmana. The creation of mula indigenized the brahmana of the region and bound them as a community to the kingdom.

The implementation of Panji Prabandha also established a chronological boundary to the definition of Maithil brahmana as it was not until the implementation of Panji Prabandha in the 14th century that the brahmanas of Karnata kingdom were truly established endogamous territorial jati. The number of mula was fixed at some time after the Panji Prabandha number of recorded mulas were over one thousand at the time of registration but several hundred became defunct over the past six centuries.

Whether mula existed before Panji Prabandha or was created during the preparation of genealogies. Following the evidence suggested by Kumarila Bhatta, it is quite likely that some conscientious family maintained carefully records for their ancestries and were able to identify the earliest known ancestor that reside in Mithila. It is also possible in the course of tracing the ancestries of various families that the panjikaras were able to find the inter relationship between various families and lineages that where inter related back to earlier ancestors until they arrived at a sole individual that was the originator of the various lineages and earlier known ancestor to have resided in Mithila.

Establishing of each mula involved a combination of preexisting information on lineage and ancestral detail gathered during the census operation. The creation of mula reflects causal relationship as it led to indigenization of the Biji purusa through severance of any external community and geographical lineage. The ancestors may have originated outside Mithila may have left their ancestral home migrated as early as the Gupta period or as late as the Karnata period. He may have left behind his parents as well as agnatic relatives. This Brahman was the earliest known member of that lineage in settled in Mithila. The codification of mula during the Panji Prabandha anchored the Brahmanas to a territory of Mithila by connecting a brahmana to a particular village mula establishes two other links between land and lineage that operated anything the domain of relationship between the king and brahman.

The Panji Prabandha also reflects migration of brahman. The village inhabited by Biji purusa of mula was a grant of land made to the brahman either by the Karnata King or the previous ruler the notion that mula represents a grant of land made to the brahman contains information about territorial expansion of the mula. The mula envisages the localization of lineages descended from the universal gotra patrilines that are anchored within the territory of Mithila by historical individuals who claimed descent from the eponymous risi who are the ancestor of all the brahmanas.In fact the establishing Biji purusa as the founder of mula in Mithila gave distinct identity to the Maithil Brahmanas.

Moreover, the Biji purusa of all the kulas were not contemporaries and that all the mulas do not belong to the same time. Along with every (kula) also occurs the name of the village. About two hundred mulas are enumerated along with their Biji purusa. Nevertheless, name of more thana thousand villages is associated with the mulas of persons whose genealogies are not found in serial order. This according to Upendra Thakur[76] probably because all these families were uprooted in course of centuries or they might have migrated to places outside Mithila or they might have changed their caste.

The Panji Prabandha essentially genealogical records of Mithila therefore reflects all the ingredients that make the historical sense and historical tradition as the modern thinkers and scholars visualise. Contrary to the Colonial perception of unchanging, ossified and static society of India and delibrate attempt keep Indian History outside the purview of world history fall apart. The Panji Prabandha was created with a definite purpose rooted in the tradition of itihasa- purana has both the elements of continuity and change over a considerable period of time and vast geographical region Mithila.It hhas definite socio political connotation of the era to which they belonged.

References:

1. Romila Thapar, The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India, Harvard University Press, London, 2013.p.49.
2. Romila Thapar, Ancient Indian Social History, Orient Black Swan pvt. ltd., Hyderabad, 2019.p.4.

3. Ibid.,5.
4. Ibid.,5.
5. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.6.
6. E. J. Hobsbawm, ed. Pre-Capitalist Economic Formations, London, 1964.
7. See Charles Grant, Observations of the State Society, London, 1813.
8. A.B. Keith, A history of Sanskrit Literature, Motilal Banarsidas, New Delhi,1993,p,144.
9. V.A. Smith, The Oxford History Of India, Oxford: Clarendon Press, xiii.
10. E. Sreedharan, A Textbook of Historography 500BCtoAD1000, Orient Black Swan pvt. ltd., Hyderabad,200j.W.M'Crind le,Ancient India ,West Minister Archibald Constable and Co,ltd,1901,p,xii9.p.312.
11. J.W. M'Crindle, Ancient India, West Minister Archibald Constable and Co,ltd,1901,p.xii.
12. Ibid, p. xii.
13. See R.G. Bhandarkar, The Early History Of Deccan ,Bombay 1894; A Peep into the Early History Of India, Bombay 1920.
14. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.10.
15. H.C. Raychaudhuri, The Political History of Ancient India,Calcutta,1923.
16. K.P. Jayaswal, Hindu Polity,Calcutta,1924.
17. R.C. Mazumdar, Advanced History of India,2nd Edition,London,1950.
18. R.K.Mookreji,Harsha,London,1926.
19. D.D. Kosambi, An Introduction to the Study of Indian History, Bombay 1956.
20. See R.G. Collingwood ,The Ideas of History, South Asia Edition, Oxford University Press Revised edn,2020.
21. R.G. Collingwood ,The Ideas of History.
22. F.E.Pargiter, Ancient Indian Historical Banarsidas,Delhi,1997 (originally published in 1922) Tradition, Motilal Banarasi Das Delhi, (Originally Published 1992)

23. A.K. Warder, An Introduction to Indian Historiography, Bombay Popular Prakashan, Bombay, 1972.
24. V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay.
25. Romila Thapar, The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India, Harvard University Press, London, 2013.
26. Kunal Chakraborti, Of Mouse and Other Ancestors: Recovering History From the Puranas, Kumkum Roy and Naina Dayal ed., Questioning Paradigms Constructing Histories, Rupa Publication, New Delhi,2019,p.212.
27. A.L. Basham, Foreword, V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay .p.vii.
28. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.237.
29. Ibid.,237.
30. V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.6.
31. Atharvaveda,XV,6,4. see also V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.7.
32. Shatpatha BrahmanaXIII,4,3,12. see also V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.7.
33. V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.7.
34. Atharvaveda,XV,10,7. see also V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.7.
35. V.S, Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay,p.8.
36. Ibid.,pp.8-20.
37. Ibid.,pp.10-20.
38. Romila Thapar, Ancient Indian Social History, p.237.
39. Ibid.,pp.240-41.
40. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.242.
41. Ibid.,p.242.
42. Ibid.,p.242.
43. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.246.

44. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.248.
45. Ibid.,p.251.
46. Ibid.,p.251.
47. Ibid.,p.251.
48. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p.253.
49. Ibid.,pp.254-55.
50. Ibid.,pp.254-55.
51. Kunal Chakraborti, Of Mouse and Other Ancestors: Recovering History From the Puranas, Kumkum Roy and Naina Dayal ed., Questioning Paradigms Constructing Histories, p.212.
52. See, Romila Thapar, Ancient Indian Social History, The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India, Harvard University Press, London.
53. Kunal Chakraborti, Of Mouse and Other Ancestors: Recovering History From the Puranas, Kumkum Roy and Naina Dayal ed., Questioning Paradigms Constructing Histories,p.214.
54. Romila Thapar, Ancient Indian Social History,p286.
55. Ibid.,pp.286-87.
56. Ibid.p.287.
57. Ibid.p.287.
58. Ibid.p.288.
59. Ibid.p.288.
60. George A. Grierson, The Linguistic Survey Of India. Vol. V, Indo Aryan Family. Eastern group, Pt. II Specimens of Bihari and Oriya Languages, Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing,India,1903,p.3.
61. ibid, p.4.
62. George A. Grierson, Bihar Peasant Life Bengal Secretariat press,1885,p.373.
63. Upendra Thakur, History of The Panji System in Mithila, in History of Mithila,Mithila Institute Darbhanga !988,pp.362-63.
64. Ibid.p.363.
65. Ibid.p.363
66. Upendra Thakur, History of The Panji System in Mithila, in History of Mithila,p379.

67. Ibid.p.394.

68. R.N. Jha, Saduktimuktavali,(Ed),Intro.p.29.

69. Upendra Thakur, History of The Panji System in Mithila, in History of Mithila,p397.

70. Ibid.p.399.

71. Ibid.p.408.

72. See Herbert H. Risley, p. L ii -L xiii

73. R.K. Choudhury, History of Muslim Rulein Tirhut, Varanasi, 1970, p.117.

74. Mula Panji written by Panjikara ,Modananda Jha,folio no.203

75. Monier Williams Sanskrit -English Dictionary, 732. See also Ashutosh Pandey.Recasting the Brahmin in Medieval Mithila: Origin of Caste Identity among the Maithil Brahmins of North Bihar, 2014.

76. Upendra Thakur, History of The Panji System in Mithila, in History of Mithila, pp408-09.

Dr. Amitabh Kumar
Assistant Professor
University Department of History
Lalit Narayan Mithila University.

❑ ❑ ❑

The Nawabi in the City and the City in the Nawabi : Lucknow and the Reinvention of the Awadh Nawabi

● **Rohma Javed Rashid**

It [Lucknow] has a personality of its own. It has not, like some of our great cities, a past which runs through tangled histories of Hindu princedoms and Muslim invasions; it has seen little even of the great Moguls; but it has in itself all attractions of a period picture. Its buildings, its records and its traditions are all of the period; its character, as every resident of Oudh knows, was always "Nawabi" and remains "Nawabi".

—*Lord Hailey*[1]

In the late eighteenth century, the year 1775 to be precise, an event completely transformed a small but prosperous town on the banks of the Gomti. This town was Lucknow. Asaf-ud-Daulah, the Nawab of Awadh decided to finally quit Faizabad and create an independent court for himself. He chose Lucknow as the seat of the Nawabi and gradually the town was transformed into perhaps the only worthy successor of Delhi in North India. Today Lucknow is known as the city of the Nawabs. The fact that the Nawabs of Awadh remained for a fairly long time representatives of Mughal rule in Awadh is almost forgotten. So is the fact that the many migrants from Delhi played a key role in the emergence of Lucknow as the cultural beacon of Hindustan. Asaf-ud-Daulah ensured that the city became emblematic of the Nawabi and the Nawabs emerged as the greatest patrons of the city. Soon the Nawabs transformed into the beloved cultural icons of Awadh, an image that continues to survive in modern memory.

This was no easy feat to achieve in the highly contested and volatile political landscape of the eighteenth century, however most modern historiography on the subject has ignored the role of the city and its glistening court in shaping the endorsement of the Nawabi in the political and cultural landscape of Lucknow. This paper seeks to analyse this process through a study of the new cultural world the Nawab Asaf-ud-Daulah was able to create in the city.

From Suba to Nawabi

Before it became a Mughal Suba in 1580, Awadh had been a stronghold of Rajput and Afghan Zamindars. Entrenched in the region for a long time these two groups were a source of constant trouble for the Mughal state. The earliest Mughal attempt to capture the region was made by Babur when he sent his son Humayun on an expedition to conquer the eastern regions in 1526. Although the expedition ended with a victory for the Mughals, the resistance was far from curbed and the Afghans rose up in revolt every chance they got. Then began the policy of, accommodation under which Babur showed significant leniency in his dealings with the Afghans. He appointed many nobles of the previous regime as administrators in the region and also turned a blind eye to their many transgressions. Even this did not help win the Afghans over to the Mughal side and eventually the Mughals had to forgo their kingdom in India for some time.

The first systematic attempt to address this problem was made by Akbar when he repeatedly curbed the rebellions with a heavy hand. Despite intermittent disturbances the region saw large scale stability and the state's investment in the construction of roads, bridges etc. brought a lot of prosperity to the region. By the year 1580, having effectively curbed the Afghans and the Uzbek who had made this region a centre of their revolt too, Akbar began the task of streamlining the administration of the acquired territories. One of the most significant steps in the direction was the division of the empire into provinces or Subas. Awadh was designated an independent Suba in the year 1580 along with eleven others. The city of Ayodhya was its capital and it contained five sarkars.[2]

Different communities held zamindari rights in land in the region. Chief among them were the Rajputs and Afghans. Of the Rajput clans entrenched in the region, perhaps the most powerful

were the Bais Rajputs of Baiswara. Claiming to have been inhabitants of the region from the thirteenth century onwards the Bais were extremely powerful. Their power in the region was a source of constant trouble for the Mughal state. They rose up in revolt several times in our period. Similar was the case with the Afghan zamindars who had been entrenched in the Lucknow sarkar for a long time.[3] Besides the Rajput and Afghan zamindars who held zamindaris in the region the area also had a significant population of Muslim Sheikhs. The Lucknow Gazetteer regards them as the representatives "of the first Musalman invaders", who claim descent from Sayed Salar Masud.[4] These Sheikhs or Sheikhzadas as they were known in our period, not only enjoyed a high social status in Awadh society but also held zamindari rights in various districts under the Mughals. A significant number of Shaikhzadas were learned men who were holders of the Madad-i-Ma'ash grants in the region.

The region continued to be peaceful till the early eighteenth century when we see the reemergence of disturbances. Some of the most important nobles of the time ranging from Chin Qilich Khan, Sarbuland Khan and Chabbele Ram were given the subadari of Awadh in the early eighteenth century, none of them however could achieve the task of suppressing completely the intermittent revolts staged by the various zamindars across the province. Although Chabbele Ram did achieve some military success over them, the revolts were far from suppressed. The resistance from Bais Rajputs of Baiswara and the Afghans of Lucknow intensified from the year 1712 onwards, causing big troubles for the Mughal state.[5]

By the year 1722 when Sadat Khan Burhan-ul-Mulk was appointed the governor of the province, the Mughal state it appears had lost all hope of retaining Awadh and its revenues. Having failed to curb the Jats of Agra, Sadat Khan was given the subedari of Awadh a turbulent province as a punishment. Once in Awadh, Sadat Khan tried several times to find his way back to the Mughal court but failed every time. While he continued to aspire to return to the court at Delhi, Sadat Khan also set in motion a process of acquiring increasing autonomy in the province by tying up with the local elements and affecting a change in the administrative structure of the Mughal province of Awadh to transform it into an independent province under the command of the governor. The Nawab of Awadh while still pledging loyalty to the emperor in

Delhi was able to retain its autonomy under Safdar Jung until his successor Shuja-ud-Daulah got entangled in a conflict with the English East India Company in the battle of Buxar in 1764. After a decisive defeat by the English

Lucknow: New Capital, New Autonomy, New Identity

By the time Asaf-ud-Daulah came to be the Nawab, Awadh had effectively lost all political power. The odds were stacked against the Nawab. Soon after his accession, John Bristow the new Resident signed with him the Treaty of Faizabad in 1775 and he had to part with Benaras which now became Company territory. The monthly subsidy for the maintenance of Company troops was also raised from 210,000 to 260,000 Rupees. With a resident permanently placed at the court of Awadh, the Nawab did not have much space to act.

Lucknow held an important place for all the previous Nawabs of Awadh, Sadat Khan spent time here and so did Shuja-ud-Daulah. So, when it came to choose a new site for the capital, Lucknow must have appeared as the obvious choice for Asaf-ud-Daulah. Lucknow was a prosperous city even before the Nawab moved here. This may have been a reason why it enjoyed such favour among the ruling elite. We are told that when Humayun rested here on his campaigns against Sher Shah Suri, the Sheikhs of Lucknow gifted him Rs. 10000 and 50 horses.[6] Even in the eighteenth century, the city was exporting sugar, indigo and cloth to as far as England.[7] When Asaf-ud-Daulah moved here in 1775, Lucknow had many remnants of its long history. The tomb of Sheikh Mina, the fifteenth century Sufi and that of Hussain Ali, a commander of Akbar’s army, are the chief among them.

How did this small trading post change with the arrival of the court? While it is true that city dwelling was an important part of the identity of the Muslim elite in medieval Islamicate world, cities were a result of a combination of demographic expansion, conspicuous consumption and trade. And although Lucknow may have been a prosperous centre of trade in the past, one cannot underestimate the extent of changes the arrival of Nawabi would have brought to it. First and foremost, the landscape of the city was completely transformed as it became home to some fine specimens of Nawabi architecture that included, palaces, mosques and the

inimitable *Imambaras* and *Karbalas*. The changes however go much beyond the architectural as we will see below.

Lucknow was infamous for its uneven topography. In this uneven, crowded city, Asaf-ud-Daulah erected imperial and religious structures that surpassed any other city in north India at the time and made it a remarkable centre of culture, arts and the Shi'i sect of Islam. The oldest of the Nawabi buildings of Lucknow was the Macchi Bhawan palace. Once Asaf-ud-Daulah shifted here with his court he undertook a series of constructions to beautify it and make it grand enough to serve as the residence of the Nawab. Like the Palace fortress of Delhi, the Machi Bhawan complex was not merely meant as residence of the Nawab. It had to fulfill multiple functions. It had to house the elaborate paraphernalia of the Nawabi court, workshops, animals and hundreds of attendants and service providers, it had to have gardens as pleasure spots for the Nawab and his family and several courts where he would appear to his subjects in all his finery and take up matters of governance. He undertook the project of enlarging and adding to the complex. He is said to have added as many as six courts to the existing complex, a mosque, a Dargah and many garden pavilions. Travelling through Lucknow some years later William Hodges wrote:

> It (the palace complex) has, however, been greatly extended by the present prince, who has erected large courts within the walls, and a durbar, where he receives publicly all persons that are presented. This Darbar is a range of three arcades parallel to each other, and supported by columns in Moorish style: the ceiling and the whole of this is beautifully gild and painted with ornaments and flowers.[8]

The Machi Bhawan resembled closely the palace-fortress complexes of medieval kings who created within these structures miniature cities that served administrative and defensive purposes. In the 1780s however Asaf-ud-Daulah moved to the Daulat Khana. The Daulat Khana housed the Asafi Kothi, residence of the Nawab, gardens a baradari and several tanks.[9] In 1803, Nawab Sadat Ali Khan purchased Claude Martin's town house and laid here the foundations of the Chattar Manzil (then known as Farhad Baksh palace), a new complex. A fine specimen of the use of European motifs and architectural elements like cusped arches, ornate stuccos

and floral motifs, this palace complex differs markedly from the previous constructions of the Nawabs. Catherine Asher sees in the succeeding constructions of the palaces, a glimpse of the “political impotency” of the Nawabi. While the Machi Bhawan stood out as a defensive palace-fortress, the Qaiser Bagh appears to be more of a pleasure garden.[10]

Despite being magnificent symbols of the Nawabs’ power, these palaces did very little to bind the city with the Nawabs. This task was accomplished by the religious structures in the city- the Imambaras, Dargahs and Karbalas. The greatest of these structures is the Bara Imambara built by Asaf-ud-Daulah. Completed in the year 1791, the Imambara rests in a large complex that comprises of forecourts, a mosque, a step well or baoli and a massive gateway called the Rumi Darwaza, which “dazzles (sic.) the eyes of all those who look up.”[11] The other two Imambaras of note are those of Almas Ali Khan and Janab-i-Aliya. Unlike the palace buildings of the Nawab which betray an ever-increasing influence of European forms, the religious buildings are completely traditional in their design and forms.

The Nawab and His New Court: Patronage, Ceremony and Spectacle

Courts are peculiar institutions and not easily defined. A court is as much a physical space where the rulers reside as well as a social space where they interact with the elite. The elaborate ritual and strict etiquette at the court, distanced them from the ruled but at the same time the magnificent ceremonial, the congregation of artists, poets and other people of talent also connected the ruler to a larger social and political world. Soon after he moved his court to Lucknow, Asaf-ud-Daulah, decided to create in Lucknow, a new splendid world of which he was the centre. This world would be created by investing patronizing artists who could tell the world of his greatness, by organizing ceremonies which cantered around him and by overwhelming his audiences with grand royal spectacles that dispelled all doubts in their mind about the greatness of the Nawab.

Perhaps the most difficult task at hand for the new city was to achieve cultural refinement that had always been associated with Delhi. This could come when the Nawab invited and sheltered artists in his new court. Perhaps the greatest of the arts in the period was

that of poetry. Poets shared a special relationship with royal courts across the Islamicate world. While their compositions brought fame to them, their patrons also partook some of that fame as the enablers of such compositions. While Shuja-ud-Daulah was at Lucknow, his uncle Salar Jung invited there, the famous Delhi poet Siraj-ud-Din Ali Arzu.[12] As the fortunes of the Delhi elite withered away and the patronage networks of the city collapsed, all of these poets gradually made their way into Lucknow.[13]

As these great men assembled here, Lucknow consolidated its position as one of the greatest poetic hubs in Hindustan. A new school of poetry called the Lucknawi school developed here which was distinct from the Delhi school. These poets also contributed in the development of the art of Marsiya which as we will see below played an instrumental role in forging a bond between the Nawabi and the people of Lucknow. Within the city, the Nawab created a series of spectacles, both religious and secular. A remarkable series of rituals had come to be associated with practicing Shi'ism by the eighteenth century and these provided the Nawab with a perfect platform to not just express his own religiosity and faith in Shi'ism but also transformed him into a beloved icon of Awadh.

The variety of rites and rituals associated with Shi'ism provide it with an important cultural dimension of its own. Unlike Sunni Islam which allows a very limited space for rituals, the Shi'i community is said to have been created on the basis of its own rituals and a collective memory of the events of Karbala. Adherence to this sect provided the Nawabs a distinct culture around which they could create a new community, which was bound to Shi'ism and its propagators'-the Nawabs by ties that were not religious alone but cultural. The Shi'i ceremonies evolved into what may be termed as a wider culture for the society of Lucknow. The Nawabs it seems were very aware that they ruled over a diverse group of people and hence the investment in ceremony that appeared unnecessary to contemporaries like Abu Talib was necessary to focus their rule and perhaps provide a counterpoise to the mystique that still surrounded the Mughal court. Shi'ism provided the perfect tool for this. Husain is considered among the Shi'is the prince of martyrs. His death represents a symbol of sacrifice for the greater good of the community, an ideal that could inspire the community of believers. The Imambaras and shrines constructed by the Nawabs

provided for the people an enduring object on which to focus the ceremonies.

The public mourning ceremonies were organized on a grand scale in Lucknow. Although there were several Imambaras built by the nobility, the Bada Imambara of Asaf-ud-Daulah was the meeting point of all Taziye processions in the city. The Nawab however visited the Imambaras of the Begums, nobility and common people and inadvertently involved them into the processions that headed towards the Bada Imambara. Every year the Nawab spent four to five lacs of rupees in the decoration of this Imambara as hundreds of Taziyeh of gold and silver and glass chandeliers were brought every year. The Nawab also ordered two glass Taziyeh and chandeliers from England.[14]

Madhu Trivedi argues that the mourning rituals were comparatively simple in the times of Asaf-ud-Daulah[15], however our sources reflect a completely different picture. There was nothing simple about the way Asaf-ud-Daulah commemorated Muharram. First and foremost, the Muharram ceremonies were marked by a dazzling display of the wealth of the Nawabi. The Taziye as we have already seen crossed all boundaries of extravagance. Hundreds of chandeliers were lit in the Imambara every day. The Akhbarat or daily reports of Asaf-ud-Daulah's court takes us through the Nawab's daily routine during Muharraam. Contrary to popular belief the Nawab did not confine himself to his own Imambara but visited the Taziyeh of his nobles and the common people too. Thus, in the year 1794, the Nawab visited Hasan Raza Khan's mansion presenting 5 gold coins to honour the Taziyeh. He then went to the Imambara of Hasan Raza Khan, where he was introduced to a Hajji who brought relics from Karbala. The Hajji was presented with 5000 rupees. The Nawab then rode over to honour the Taziyeh of Tamas Ali Khan and presented 500 Rupees to honour the Taziyeh there.[16] Often the nobles presented the Nawab with a nazar in return for his largess. Thus, when the Nawab visited the Taziyeh of Almas Ali Khan in 1795 and made an offering if a hundred rupees, the former presented the Nawab with 5000 Rupees. Similarly, when Deen Mohammad Chowdhry's Taziyeh was honoured with a hundred rupees, he presented 2000 Rupees to the Nawab.[17]

What do these daily visits of the Nawab to honour the Taziyeh

of the nobility and even the common people signify? Why did he feel the need to do so? One explanation could be that the Nawab was encouraging the attempts of his nobility and subjects to participate in the rituals of Muharram. The nobles competed with each other in producing grand Taziyeh to impress the Nawab, who rewarded them by honouring their Taziyeh by visiting them personally. The exchange of gifts on these occasions also reinforced the hierarchical relationship between the Nawab and his noble. By presenting a nazr to the Nawab, the nobles honoured him as their superior.[18]

The Nawab however did not confine himself to visiting the Taziyeh of the nobility alone, on the 4th of Muharram, 1795, the Nawab visited the Taziyeh of the "poor, presenting them with rupees 5 each."[19] Even the beggars of the city built Taziyeh that the Nawab visited often.[20] The ceremonies of Muharram witnessed a massive spatial alteration. From being confined to the Imambara of the Nawab, they spilled into the houses of the nobles, the houses of the poor and to the streets. The Nawab's visits to these Taziyeh brought his subjects into direct contact with their ruler even if it was for a few fleeting minutes. The Nawab's visitations to honour the Taziyeh of his subjects should therefore be seen as attempts to bind his subjects with the Nawabi as the leader of the ceremonies of Muharram. As J.R.I Cole points out in these rituals "social distinctions temporarily broke down into liminality and a generalised feeling of levelled community (prevailed)."[21]

Conclusion

Although his political achievements were negligible, Asaf-ud-Daulah created in Lucknow a powerful symbol through which to assert the power of the Nawabi for which he has received little credit. The architecture, ceremony, spectacle enabled him to transform the politically impotent Nawabi into a beloved cultural icon of north India. Although still borrowing heavily from the Mughals the Nawabi seems to have created a new niche for itself. Lucknow, the new capital city was therefore instrumental as a socio-cultural in which the declining political power of the Nawabi was masked and the Nawabi reinvented itself. While the Nawabi was instrumental in the making of the city, the city was equally instrumental in the making of the Nawabi.

References

1. Lord Hailey in the introduction to Sydney Hay, Historic Lucknow, Lucknow:1939, p. i
2. Abul Fazal Allami, Ain-i-Akbari, ed. H. Blochmann, Calcutta: 1927, p. 129
3. Muzaffar Alam, Crisis of Empire in Mughal North India, Awadh and the Punjab 1707-1748, Second Edition, Delhi:2013, pp.96-99
4. H. R Neville, ed., Lucknow: A Gazetteer being Volume XXXVII of District Gazetteer of the United Provinces of Agra and Oudh, Lucknow:1922, p.66
5. Muzaffar Alam, Crisis of Empire, pp. 96-100
6. Lucknow Gazetteer, p. 144
7. Rosie Llewellyn Jones, 'Lucknow Before 1856', in Kenneth Ballhatchet and John Harrison, eds., The City in South Asia: Pre-modern and Modern, London:1980, p. 91
8. William Hodges, Travels in India during the Years 1780, 1781, 1782 and 1783, London:1783, p.101
9. Rosie Llewellyn-Jones, A Fatal Friendship, The Nawabs, the British and the City of Lucknow, Delhi:1985, p. 181
10. Catherine B Asher, Architecture of Mughal India. of The New Cambridge History of India. Cambridge:1992, p. 322
11. Abu Talib, Tafzih-ul-Ghafilin, translated as History of Asafud' Daulah Nawab Wazir of Oudh by William Hoey, Allahabad: nd p. 93
12. Madhu Trivedi, The Making of the Awadh Culture, Delhi: 2010, p. 74
13. For more on the travails of Mir's life in the aftermath of the destruction of Delhi and the ardous journey to Lucknow see Mir Muhammad Taqi Mir, ikr-i-Mir, translated as Zikr-i-Mir, The Autobiography of the eighteenth-century Mughal Poet: Mir Muhammad Taqi Mir, 1732-1810 by C.M. Naim, Delhi: 1999, especially pages 67; 84-85
14. Tafzih-ul-Ghafilin, pp. 93-94
15. Madhu Trivedi, The Making of the Awadh Culture, p. 54

16. S.A.A. Rizvi, A Socio-Intellectual History of the Isna Ash'ari Shi'is in India, 2 Vols., Delhi:1986, Vol. II, p. 311

17. S.A.A. Rizvi, A Socio-Intellectual History of the Isna Ash'ari Shi'is in India, p. 314

18. For a brilliant analysis of the practice of gift-giving and its implications in the medieval political culture see Harbans Mukhia, The Mughals of India, Delhi:2004, p. 100

19. S.A.A. Rizvi, A Socio-Intellectual History of the Isna Ash'ari Shi'is in India, p. 314

20. ibid., p. 312

21. JRI Cole, Roots of North Indian Shi'ism in Iran and Iraq: Religion and State in Awadh, 1722-1859. Berkeley: 1988, p.118

Rohma Javed Rashid

Assistant Professor

Department of History and Culture

Jamia Millia Islamia

❑ ❑ ❑

Mapping Nagaur's Importance in the Late Eighteenth Century : From the Production of Metal Crafts

● **Athar Hussain**

Rajasthan began to establish a large number of towns and cities in the middle ages. The sixteenth century saw the beginning of this phenomenon, which persisted throughout the eighteenth century. Towns and cities developed as a result of a variety of administrative, religious, cultural, and commercial forces. The purpose of this research study is to document the beginnings and growth of Nagaur as a location for eighteenth-century artisan manufacturing. Old or indigenous industries were transformed by the presence of different occupational classes. In the eighteenth century, production activities that had begun in the sixteenth century were expanded and changed. The Rathor monarchs' policy regarding the producing class contributed to the transformation of Nagaur crafts. As a result, Nagaur emerged as a significant hub among Marwar's current manufacturing centres. Therefore, in light of the Marwar of the eighteenth century, this study charts the development and growth of metal craft production as well as the artisanal groups engaged in it.

***Key Words : Metal, Production, Town, Objects, Utensils, Arms & Ammunitions*.**

Introduction

In 1560, Akbar the Great (1556–1605) conquered Nagaur and established Sarkar as the district headquarter.[1] He is also known for having established the Mughal-Rajput relationship using a variety of strategies, including alliances, treaties, and military force. By 1570, he gave Rajputs a significant position among the Mughal aristocracy. The Rajputs then actively served in the Mughal Empire's armed forces. The establishment of a centralised system

of governance with increased peace and security following the incorporation of the numerous Rajput states under Mughal control allowed for the growth of new towns, the extension of already-existing ones, and the development of local crafts. Furthermore, in 1580,[2] Akbar started the administrative restructuring of the empire and established a single identity for the different Rajput states, including Subah Ajmer. Ain-i-Akbari provides the first conclusive evidence on the subah's territorial boundary delineation in 1595.[3] As an administrative restructure, the subah was separated into seven sarkar (districts), which were then further separated into parganas (administrative cum revenue unit) borders.

There were thirty parganas that made up Nagaur.[4] It was taken by the authorities in the early eighteenth century when Marwar's territory grew. The city gained prominence after Vijay Singh (1752–1793) took the throne of Marwar, as it was one of the four parganas under his jurisdiction in the early years of his reign.[5] In addition to its administrative nature, Nagaur developed as a market city. Marwar and Vijay Singh's treatment of artisanal groups, together with the altered political, social, and economic landscape of the eighteenth century, helped to modify and diversify Nagaur's arts and crafts. Vijay Singh was particularly fond of Nagaur and became the city's and its people's only political patron. His fascination in craftsmen and artisans sparked Nagaur's growth as a hub for metalworking.

For this article, the Sanad Parwana Bahis[6] from Marwar (particularly for the era of Maharaja Vijay Singh) were consulted. The Bahis were given this designation because they contain two types of information: Sanad, which is a royal order, and Parwana, which is a letter sent to the officials. Under three headings, including Nagaur Kotwali Chauntra (fiscal and urban affairs headquarters), Nagaur Kachehri (a pargana's administrative and judicial headquarters), and Nagaur Sair (administrative in-charge of transit responsibilities), there is a wealth of information.

Orders issued by the Maharaja of Marwar's court are transcribed in the Bahis. A wide range of topics are covered by the order, including administrative, revenue, state employee payments, manufacturing weapons, domestic utensils, and other items, as well as orders in response to petitions from subjects looking for solutions to their troubles. In addition to these, the Bahis include court-issued orders to the officials.

The literary work known as gajal (Persian Ghazal), written by the Jain Yatis saints, has also been used in addition to official documents.[7] Based in Nagaur, one Ghazal provides valuable insights into urban activities and the artisans who produce a variety of items using various metals and conduct structured sales of commodities in the area.

The western (Marwar) region of present-day Rajasthan is where Nagaur is situated. It has inflexible resources and is located in an arid and semi-arid zone. It is bordered to the north by Bikaner and Churu, to the east by Sikar and Jaipur, to the south by Ajmer and Pali, and to the west by Jodhpur.[8] Additionally, its history was impacted by its location on the routes to Multan.

Nagaur served as a Sarkar (district) and Pargana (administrative and revenue district) headquarters since the sixteenth century, making it a fascinating destination to examine the creation of metal crafts in the eighteenth century. There was a marketplace that traded a variety of items as a result of the concentration of state and imperial officials, which raised demand for handmade goods. Numerous domestic items, weapons, and other products were fashioned using metal, according to the evidence that is currently available for Nagaur. These goods were made both for the open market and on customer's order. The documents mentions metals like iron (Loha), copper (Tamba), bronze (Kansa), and brass (Pital). The Thateras and Kansera (braziers) were the names given to the metalworkers who prepared brass and bronze vessels, respectively.

According to the accounts, an artisan named Thathera Pittal specialised in producing high-value cutlery.[9] He prepared various goods on demand, and the consumers provided the number, size, and weight specifications. A customer ordered some brass (Pital) objects from the Rathor capital city of Jodhpur[10] including degh (big pot), degcha (small pot), charipa (water vessels), parat (a large circular metal dish with a raised edge), chalni (sieve), kudchi (ladle), one lota (a small round pot with a long neck), kada charpa (raflar of water vessels), dhakkan (lid/cover), and thali (small metal plate). In addition to them, chariya (water vessels) and other brass items of various sizes were ordered.[11] It should have the capacity of six or two sers (liters) of water in each of them. Customers also provided the size, design and amount of the goods they wanted in

order to achieve a particular style and effect. There are two kind of brass matali (huge pots), which should be between 2.5 and 5 ser so that rice can be cooked in them.[12] Another type of utensils was the patila (little pot), which needed to be large enough to cook two ser pulse.

Similarly, two tateri (jars) were made in Nagaur for the royal household to store ghee, according to the sources. Other items known as matka (water pitchers) are also found. These matkas must have a long neck and a Rajasthani-style spout that can hold ten ser (litres) of water. In addition to these items, archival documents also mention a few other items, including two Katora (covered bowls), one doharia (big spoon/ladle), two parat (huge metal plates), a dabra (tank), and a matali (water-storing pot) that were produced on a wide scale for domestic use.

Bronze (Kansa):

The document contains references to bronze metal. Many utensils were fashioned from bronze metal. The term kansera (brazier) refers to the people who worked with bronze. The bronze-metal kitchenwares were much sought after. A thal (tray) was ordered; it needed to be able to accommodate two ser of food item. Besides, a dabra (small tank), katori (small metal bowls), and katora (bowls) were ordered to be made. In addition to household products, Nagaur also produced certain ornamental pieces, including a wall clock made of a Jhaler, (little cymbal). This demonstrates the artistic sensibility of people and the craftsmanship of the artisans, who were able to create items that satisfied the needs and preferences of the client.

Copper (Tamba)

Copper is the next metal we found in the sources.[13] Braziers were the artisans who worked with this metal. Jodhpur ordered the brazier of Nagaur to make a copper kalash (water pitcher) and inlay it with gold. Furthermore, it contained instructions that these should have a suitable appearance. It's for a particular event. In addition, a lota (water craft) was prepared. Typically made of copper and brass, the water jars were fashioned in the Rajasthani tradition. Other copper-related household objects included parat, a large dish with an elevated edge, and chalni (sieve). We also learn from the archival evidence that the emperor ordered certain ritual utensils

to be manufactured and provided to the temple. Parat and Tapaila, for example, were necessary for ritual performance and to deliver presents to the gods on special occasions.[14] In addition to them, we discover items made by copper artisans, such as kalamdan (a pen holder or stand).[15] The pen holder, or kalamdan, appears to have been a rare item that could have been made upon request.

Iron Objects

Iron, which gained significance over time, was the next most important metal. Those who work with iron are known as lohar, (ironsmiths). Iron goods were produced as weapons, masonry tools, and household items.[16]

Jodhpur, Sojat, and Jalore Parganas iron mines provided the iron to Nagaur. Karahi (a shallow iron cooking pot), taila (tongs), kudchi (ladle), tawa (griddle), chhuri (knives), chhani (sieve), katarni (a type of scissor), kainchi (scissors), dol (bucket), sui (needle), taala (different locks), tateri (jar), handiya, taita, hamman dasta, and so on are among the items that have been mentioned in the source. In addition to these household items, masonry tools such as sikanje, sabal, karni, and sandsi were produced. Additionally, tin and iron boxes that were well-known in Rajasthan were manufactured.[17]

This is also where the fine iron wire for the guitar (a musical instrument) was manufactured. The eighteenth century saw the development of Nagaur's iron industry. These domestic tools were designed for members of wealthy and aristocratic families. The adjacent cities received these domestic tools. Household goods were produced for the wealthiest members of society, both in terms of range and value. It lost its political prominence in the second half of the eighteenth century, but it became a major hub for Marwar's and Rajasthan's metalworking industry.

Weapon and Military Items

The Rathor kings of Marwar were left without patronage and began to face instability in the area when the Mughal Empire began to fall in the first half of the eighteenth century. In the early eighteenth century, local conflict increased as a result of the emergence of tiny principalities, adventurers, and freebooters on the political stage. The shifting political landscape at the regional

level has made iron more useful. Additionally, the late eighteenth-century Marathas' assaults of Marwar, Rajasthan, increased demand for weapons in the state to protect the state coffers from looting. Tod's statement from the early nineteenth century that "the artisans manufactured with deftness in their own shops, swords, blades, matchlock, dagger, iron boxes, and iron lances"[18] indicates to the rise in iron use and manufacturing. One of the couplets in the Nagaur ki Ghazal highlights the ironsmiths' skill in creating iron tools in the most admirable manner.

Pur hai luar ka pohlak, budhh shudhh karigar bahulak,
Tikha bhal gharh Talwar, aur hi tuppak nal apaar.[19]

(This is a colony of blacksmiths where resides large number of skilled iron workers; they were preparing sharp headed spears and swords, casting canons, matchlocks in large number).

Both literary works and archival records describe a particular area of Lohar known as Loharpura, where many highly qualified ironsmiths resided and worked to make sharp-headed spears and swords.[20] They were also involved in casting cannons (toppak), matchlocks (nal) and muskets in large quantity.[21]

The poem makes clear that in the late eighteenth century, Nagaur had its own independent colony of iron workers. The names of many weapons and other items, such as banduq (gun), talwar (sword), barchhi (javeline), katari (dagger), teer (arrows), and kaman (bows), were produced and explicitly recorded in a number of historical records from the time.[22] Besides these armour, dhal (shield) and pusak were also made.[23] In addition to this, Nagaur's ironsmiths produced ammunition. In order to deliver one and a half-mound iron cannon ball (goliyan) made of hammer, the monarch of Marwar wrote a letter to Moji Ram Lohar.[24] Once more, we discover that the ruler of Marwar has ordered that 2000 iron balls be prepared and sent from Nagaur Barudkhana (gunpowder workshop) as soon as possible, within seven days.[25] The head of Nagaur's kilikhana (wood/iron workshop) received another order from the Maharaja of Marwar to produce 125 additional guns that the army needed. There were design specifications, and these needed to be in operational condition and fixed with wooden butts.[26] According to a related collection of archival records, the court of Marwar demanded 5,000 bows from Nagaur; if they were not available, they had to

be prepared and sent immediately since the soldiers needed them.[27] The Nagaur metalworkers were said to be able to produce these tools.[28] In Nagaur, there were also a few Kabanigars who produced iron-tipped arrows for the military.[29]

Additionally, we learn that the technologically and physically damaged weapons were transferred here for repair. The existence of arms and ordnance workshops in Nagaur is amply demonstrated by the facts above. The Nagaur armourers had gained special recognition in Rajasthan throughout the seventeenth century. The Ghazal describes and emphasises the artistry of Nagaur's ironsmiths.

Vija luharpur barek, sab hi karigar sarek[30]

(In the colony of luharpur all live here are fine iron worker).

Jud bal jar gharhat jiwar, pura sughat gharah parkar[31]

(Metal-workers are engaged in casting variety of weapons).

According to both official and literary accounts, the Rajput kings of the eighteenth century actively supported the arts and weaponry producers in addition to exercising leadership in the battlefield. In addition to using coercion, the rulers safeguarded the occupational castes' abilities by generously favouring them in order to satisfy state demands. Because of their interest in the eighteenth-century technological advancements in the area, the artisans should be credited with producing weapons and tools.

As a result, it has been observed that Nagaur produced metal crafts on a huge scale throughout the post-Mughal era. In addition to meeting the needs of the ruling class and the affluent part of society, it had a large customer base. The home goods were of excellent quality. Furthermore, the craftspeople were engaged in the production of guns. at Nagaur, skilled artisans and craftsmen were given the option of contract work on a daily wage basis or for a certain amount of time at the state-owned workshops (karkhanas). The late eighteenth century saw a rise in cash nexus, which led to huge and refined commodity production. The artisans and craftsmen are seen as essential components when designating a region as a centre of manufacturing. Evident from the facts analysed from archival documents and supported by modern literature, which significantly changes the perception of Rajasthan's "dark age" in the eighteenth century. In Nagaur ki ghazal (1805), Yati Manrup portrays Nagaur as a thriving town in the couplet that follows:

Marudhar desh hai motak, Annadhan Ka jo nahi totak,
Jis mein seher kete jor, Nipat hi adhik hai Nagaur.[32]

(Marudhar (Marwar) is a vast expanse, where there is no dearth of food and wealth; there are many prosperous cities in Marwar, Nagaur is the best among them).

References

1. Abul Fazl, Ain-i-Akbari, Vol. I, tr. H.S. Jarret, Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1937, p.512.
2. Abul Fazl, Akbarnama, Vol. III, tr. H. Beveridge , Asiatic Society of Bengal, Biblothica Indica, 1937,P.143.
3. Abul Fazl, Ain-i-Akbari, vol. II, tr. H.S. Jarret, Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1949, pp, 162,165.
4. Ibid. Vol. I, p. 512.
5. Hooja, Rima. A History of Rajasthan New Delhi, 2006, p. 713.
6. Sanad Parwana Bahis, Jodhpur are written in medieval Rajasthani language in Devnagri script and arranged in a volume beginning from V.S 1821 1995/ 1764-1938, preserved at the Rajasthan State Archives, Bikaner. Each Folio is marked A and B. I have consulted the volume covering to 1800 A.D.
7. Yati Manrup, “Nagaur ki Ghazal” in Muni Kant Sagar,(ed). Shri Nagar Varnatmak Hindi Padhya Sangrah Surat, 1948, pp. 58-66.
8. K. K. Sehgal, ed. Rajasthan District Gazetteers, Nagaur, Government of Rajasthan, Jaipur, p. 1.
9. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 09 V.S1826/1769 A.D. f.17
10. Sanad Parwana Bahi, Jodhpur, No. 09.V.S.1826/1769 A.D.f.18.
11. Sanad Parwana Bahi, Jodhpur, No. 09.V.S.1826/1769 A.D.f.18.
12. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 21. V.S.1835/1779 A.D. f 22.
13. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, 09. V.S.1826/1769 A.D.f.17 (b)
14. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, 09. V.S.1826/1769 A.D.f.17 (b)
15. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, 09. V.S.1826/1769 A.D.f.35 (a)
16. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, 09. V.S.1826/1769 A.D.f.17 (b)
17. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 09.V.S.1826/1769 A.D. f.23 (b)
18. James Tod, Annals and Antiquities of Rajasthan,Vol, II. Delhi, 1990, p. 229.

19. Yati Manrup, Nagaur ki Ghazal, P. 64
20. Ibid. P. 64
21. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No.09.V.S.1826/1769 A.D.f.57
22. Nagaur ki Ghazal p.64
23. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 09.V.S.1826/ 1769 A.D.
24. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 58. V.S.1862/ 1805 A.D. f.53 (b).
25. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No.17. V.S. 1833/ 1776 A.D.
26. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 25.V.S. 1838/ 1781 A.D.f.16(a).
27. Sanad Parwana Bahi Jodhpur, No. 32.V.S 1842/ 1785A.D. f.50 (a).
28. Sanad Parwana Bahi, Jodhpur, No. 43.V.S.1848 /1791A.D. f.1.
29. Nagaur ki Ghazal,p.65.
30. ibid.p.64.
31. ibid.p.65.
32. Nagaur ki ghazal, p. 56. Marwar was also called Marusthali, Marubhumi, and Marudesh due to high mortality rate in the region. Unlike Urdu poetry Shar Ashob (city's misfortune) Poems composed by the Jain yatis in the eighteenth and early nineteenth century describe cities of Rajasthan full of life. For detail see Carla, "Poetry of the declining Mughals: The Shahr Ashob" Journal of South Asian Literature 25, No.1, 1990, pp. 99-110.

Secondary Sources

Alam, Muzaafar. The Crisis of Empire in Mughal North India: Awadh and Punjab, 1707-1748, Delhi, 1986.

Bayly, Chris. Rulers, Townsmen and Bazzars: North Indian Society in the Age of British Expansion, 1707-1870, Cambridge, 1980.

Bhadani, B. L. Peasants, Artisans and Entrepreneurs: Economy of Marwar in the Seventeenth Century, Jaipur, 1999.

Bharat, Shiv Dutt Dan. Jodhpur ka Itihas,1753-1800, Jaipur, 1982.

Chicherov, A. I. India Economic Development in the 16th 18th Centuries : Outline History of Crafts and Trade, Nauka Publishing House, Central Department of Oriental Literature, 1971.

Choudhary, Sushil. From Prosperity to Decline: Eighteenth Century Bengal, Delhi, 1995.

Devra, G.S. L. The Internal Expansion of Society and Formation of Medieval Polity, Presidential Address 59th Section Medieval, Indian History Congress, Patiala, 1998.

Gupta, B. L. Trade and Commerce during 18th Century Rajasthan, Jaipur, 1987.

Gupta, S.P. The Agrarian System of Eastern Rajasthan, C. 1650-1750, Delhi , 1986.

Habib, Irfan. Agrarian System of Mughal India 1556-1707, Delhi, 1999. (2nd revised edition).

Lalas, Sitaram. Rajasthani Sabad Kosh, Tirtya Khand. Partham Jild, Jodhpur. (2nd revised edition).

Naqvi, Hamida Khatoon. Urban Centres and Industries in Upper India, 1556-1803, 1928, Bombay.

Rana, R.P. A dominant Class Upheaval : The Zamindars of North Indian Region in the Late Seventeenth and early Eighteenth Century IESHR Vol.25, No.4, 1987, pp.395-410.

Sahai, Nandita Prasad. Politics of Patronage and Protest: The State, Society and Artisans in Early Modern Rajasthan, 2006, New Delhi.

Vanina, Eugina. Urban Crafts and Craftsmen in Medieval India, 2004, Delhi.

Athar Hussain

(Has worked as Faculty at Zakir Hussain
Delhi College Evening (DU)

Mail: athar.siwani@gmail.com

❑ ❑ ❑

The Sacred Nishan : Valmiki Community's Role in Honouring the Folk Deity Goga Ji

● **Naincy Rana**

This paper explores the long-standing tradition of nishans (banners/flags) in Indian history. These symbols have expressed identity, belief, and authority from ancient times. It draws a comparative view of the flags associated with folk deities of Rajasthan, analyzing how each reflects the distinct traits and values of the deity it represents. Among these, the nishan of Gogaji stands out for its unique form and symbolic depth. Gogaji's nishan is a long bamboo staff adorned with coconuts, red cloth, and symbolic decorations. Gogaji is a revered folk deity considered a protector of livestock and a guardian against snake bites through the sacred Nishan Yatra (flag procession). This article examines the Valmiki community's significant role in honouring Gogaji. Though Gogaji is venerated across caste lines, the Valmiki community holds a special position as custodian of this ritual, particularly during festivals like Teej. Using observations and focus group discussions, the study documents the ritual's preparation, spiritual significance, and evolving meanings. It also explores the role of women and how the community asserts its identity and agency through this symbolic yet powerful act.

Keywords : *Jaipur, Valmiki Community, Folk Deity, Gogaji, Nishan, Sacred Flags*

Throughout human history, signs and symbols have played a crucial role in shaping identities, expressing beliefs, and marking power structures. From clan emblems to religious icons and royal

banners, these signs helped communities assert their presence and values. One such symbol is the Nishan, a word in Hindi that refers to a sign, mark, emblem, flag, or standard.[1] It can be political, military, or religious in meaning. In religious contexts, the Nishan often becomes sacred, representing divinity, protection, and collective identity. The word Dhwaja or Jhanda is often used interchangeably with Nishan, especially in religious and historical contexts.

During the Teej festival in Jaipur, I observed a striking procession led by members of the Valmiki community, carrying tall, decorated staffs known as Goga Ji ke Nishan. This sight, both vibrant and deeply symbolic, prompted me to further explore the cultural and historical significance of this practice. While Goga Ji himself is a well-known folk deity worshipped by various communities across Rajasthan, Haryana, Punjab, and Madhya Pradesh. Despite his Rajput lineage, he is venerated across caste lines, including by Dalit communities such as the Valmikis. This inclusive devotion reflects the syncretic nature of many folk traditions in India, where deities often transcend rigid social boundaries. However, there is surprisingly little scholarly work on the rituals surrounding his Nishan, particularly in the context of contemporary festivals and community practices.

Thus, my journey began, leading me to engage with the Valmiki community and explore their cultural practices and beliefs. This article also explores the significance of Goga Ji and the Nishan within the context of Rajasthan's cultural celebrations, particularly during the Teej festival. It will examine the historical context of Goga Ji, tracing its roots and relevance to the Valmiki community. The study will also delve into the preparation of the Nishan, highlighting the rituals and celebrations surrounding its creation and presentation to the Teej festival. Additionally, it will investigate the crucial role of women in these ceremonies, emphasizing their contributions and participation. Furthermore, community involvement will be a focal point, as this research seeks to showcase the collective efforts that bring the Nishan to life and enhance communal bonds.

This article is divided into several parts to better understand the deep connection between the Valmiki community, Goga Ji, and the tradition of carrying the Nishan during the Teej festival. It begins by looking at the history of flags and how they have been used across time to express identity, faith, and belonging. The next

part introduces Goga Ji and explores how his story and worship became meaningful for many communities, especially the Valmikis. The article then looks at the meaning of the Nishan itself, not just as an object, but as a sacred symbol of protection, devotion, and unity. After this, it focuses on how the Nishan is prepared and celebrated, describing the rituals and festive atmosphere that surround it during Teej. A special section is dedicated to the role of women, highlighting their active participation in the ceremony. Finally, the article looks at how the Valmiki community comes together to make this tradition possible, showing how it strengthens their shared identity and brings people together across generations.

I. Historical Context of Flags

The history of flags in India is ancient and well-documented. The Rig Veda mentions the dhwaja in a hymn, where it is described as a portable battle emblem.[2] This early form of the nishan gave both visual identity and spiritual strength to those who carried it.

In Hinduism, Buddhism, and Jainism, the dhwaja is one of the ashtamangala (eight auspicious symbols).[3] The epic Mahabharata provides vivid descriptions of the banners (dhwajas or nishans) carried by warriors during the Kurukshetra War, each bearing a distinct emblem that symbolized the identity, lineage, or spiritual allegiance of its bearer.[4] These visual emblems were not merely decorative, they played a critical role in battlefield storytelling, allowing warriors to be identified from afar. They were also used for invoking the virtues or divine blessings they embodied.

Historically, many Indian dynasties used flags to mark their political identity. Whether it was the Mughals, Marathas, or Rajput kingdoms, each had distinct flags. In Rajasthan, different Rajput dynasties had their own traditional flags. For instance, Jaipur was known for its Panchranga (five-coloured) flag.[5]

Mewar (Udaipur) is renowned for its crimson triangular Nishan, adorned with a gold-embroidered face of the Sun, symbolizing the Surya Vanshi (Solar lineage) heritage of the Maharanas.

Another important region, Marwar (Jodhpur) used a vibrant flag with five horizontal stripes: orange, red, white, yellow, and green colours symbolizing Jodhpur's spirit. At its center was the great coat of arms of Jodhpur.

Picture 1 : Panchranga flag of Jaipur/Amber state

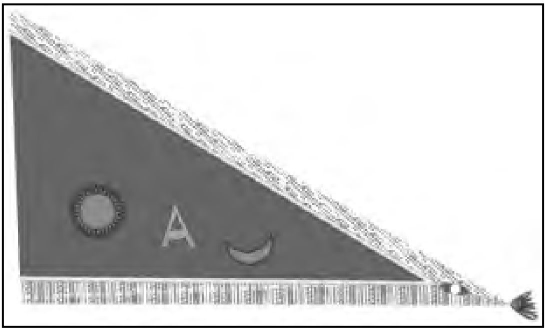

picture 2 : Flag of Mewar (Udaipur)

Picture 3 : Marwar's (Jodhpur) flag

Picture 4 : Degray Mata's Nishan

Picture 5 : Bhadariya Rai Mata's Flag

Picture 6 : Karni Mata's Flag

picture 7 : Nagnechiya Mata’s flag

Picture 8 : Neja of Ramdev ji

Picture 9 : Devnarayan ji's Jhanda Yatra.

Picture 10 : Nishan of Teja ji

Apart from political and royal flags, many flags in Rajasthan are deeply religious in nature. The region is home to a rich diversity of folk deities, each of whom is worshipped with unique rituals and each has a distinct nishan that symbolizes their identity, power, and relationship with the devotees.

Folk deities in Rajasthan include both male and female figures. Female deities typically have red or variants of red flags, as red is considered auspicious in Hinduism and associated with suhag (marital bliss). For example, Degray Mata, Bhadariya Rai Mata, and Karni Mata are represented by simple red triangular nishans. In contrast, Nagnechiya Mata's nishan is orange and features a trident, symbolizing the divine weapon of the goddess. These flags are moderate in size.

On the other hand, the flags of male deities tend to be more elaborate and larger. For instance, the flag of Ramdev Ji, known as Neja, includes symbolic elements such as pagliya (footprints), representing his divine presence. The nishan of Devnarayan Ji features five auspicious colours, each symbolizing divine attributes. The nishan of Teja Ji stands out for its rich decoration, vivid colours, and symbolic motifs, reflecting his identity as a revered warrior deity.

In history and legends, records were made of these warriors who fought after being beheaded. They were given the title Jujhar or Junjhar, meaning brave warrior.[6] Many of these warriors were later worshipped as folk deities. For example, Jujhar Jot Singh Ji of Jodhpur and Junjhar Panraj Ji of Jaisalmer are honoured for their ultimate sacrifice, and their flags are white, symbolizing supreme martyrdom.

Each folk deity in Rajasthan has a unique nishan that reflects some part of their story or values. Among them, the nishan of Goga Ji stands out the most, not only because of its distinctive appearance, which includes a long bamboo stick adorned with coconuts, red cloth, and other decorations but also because of the deep symbolic meanings it carries.

It represents protection from snakes, devotion, and communal identity, especially among marginalized communities like the Valmikis, who hold Goga Ji in deep reverence. The ritual of carrying

Picture 11 : Nishan of Jujhar Jot Singh Ji

Picture 12 : Nishan of Junjhar Panraj Ji

Picture 13 : Goga Ji's Nishan

his nishan during fairs and processions reflects a shared cultural memory and a sense of belonging that transcends caste and class boundaries.

II. Significance of Goga Ji and the Nishan

A. Historical context of Goga Ji

Gogaji, also known as Jahar Veer Gogaji, is an important figure in Rajasthani and other North Indian folk traditions, where he is venerated as a warrior-saint and defender from snake bites. Gogaji, a member of the Chauhan Rajput clan, is believed to have lived in the 10th century CE.[7] His legacy mixes physical valour and spiritual devotion, distinguishing him as a unique figure in Indian tradition. According to legend, he was born to Bachal Devi and her husband, Raja Jewar, with the blessings of Guru Gorakhnath, who prophesied his great destiny. Guru Gorakhnath ji offered Bachal Devi guggal (Commiphora wightii) and told her that consuming it will help her conceive.[8]

However, before eating it, she decided to put its powers to the test by dividing it into five parts and giving one to a Valmiki maid who worked in her home.[9] This gesture established a unique tie between the Valmiki community and Goga Ji, despite his Rajput Chauhan ancestry, and it is because of this bond that the Valmiki community continues to venerate him with tremendous devotion. Gogaji is recognised as a saint for his miraculous ability to manipulate snakes, while as a warrior he is credited with defending his kingdom from invaders. His spiritual significance is celebrated across cultures, regardless of caste or religion.

Gogamedi, in Rajasthan's Hanumangarh district, is the site which is most strongly linked with Gogaji. Some people say here is where Gogaji perished while fighting Mahmud of Ghazni's soldiers. Others think he did not die but rather fell into samadhi, a deep meditation state in which he departed his body and ascended a higher spiritual dimension.[10]

Picture 14 : Samadhi of Goga Ji at Gogamedi

Worshippers from both Hindu and Muslim faiths come to pay their respects to Gogaji, seeking his protection and blessings. Iconography at the shrine frequently portrays him on horseback with a lance in hand, symbolising his martial prowess. The oral traditions and folktales around Gogaji emphasise themes of dedication, fairness, and inclusivity, demonstrating his long-standing presence in the region's communal memory.

B. Symbolism of the Nishan

The Nishan (flag) represents Goga Ji himself, serving as a sacred emblem used during festivals and rituals to convey his presence and blessings. It is a revered emblem carried as a symbol of devotion and belief, considered to channel Goga Ji's blessings of safeguarding, good fortune, and spiritual guidance to the community. The Nishan allows devotees to demonstrate their strong respect and attachment to the deity.

This flag is solely carried by the men of the Valmiki community, who uphold the duty of maintaining this revered tradition. The ritual is popular in several Indian states, including Rajasthan, Himachal Pradesh, Haryana, Uttar Pradesh, and Punjab.[11] Goga Ji devotees may also be found in Gujarat and Madhya Pradesh, indicating that this practice is well-established in many locations.

The Valmiki community firmly believes that Goga Ji remains alive, having entered samadhi instead of passing away. The Nishan serves as a powerful artefact for his followers to experience Goga Ji's presence and connection. Additionally, it symbolizes Goga Ji's respect for Teej Mata during the Teej festival. This connection originates from a significant event in Goga Ji's life. According to the legends, prior to his departure for war in Kabul, he sought the blessings of Kali Mata, the fierce incarnation of Goddess Parvati, who is honoured as the goddess of power and destruction. Teej Mata, an alternate incarnation of Parvati Mata, is honoured during the Teej festival. Since Kali Mata is also a manifestation of Parvati, this relationship emphasises Goga Ji's respect for both goddesses. As a result, the Nishan not only represents Goga Ji but also depicts the strong bond between him and Teej Mata, reinforcing the affinity between the two deities within the community's rituals and beliefs.

As a result, the Nishan serves as a powerful symbol of religion, dedication, and collective identity for the Valmiki people. They honour Goga Ji's heritage and maintain a long-lasting link to their cultural traditions by raising this sacred flag during festivals and rituals.

III. The Nishan : Preparation, Celebrations and Rituals

The preparation of the Nishan, a symbolic representation in the Valmiki community, varies across different regions, with slight subjective changes. However, the core method of creating the Nishan remains consistent. This process is particularly significant in Jaipur,

where the Valmiki community engages in specific rituals to prepare the Nishan, reflecting their cultural heritage and reverence for Goga Ji.

A. The first step in this preparation occurs on Guru Purnima, which falls on the last day of the month of Ashadha (June/July). This day is dedicated to honouring teachers and mentors—those who impart knowledge and wisdom. A Saraswati Puja is performed on this occasion, as Goddess Saraswati is revered as the deity of knowledge, learning, and the arts. Her worship signifies the importance of education and the enlightenment that comes through learning. As part of the rituals, a long bamboo stick is taken and ceremonially bathed, symbolizing Goga Ji. This stick serves as the physical representation of Goga Ji during the subsequent celebrations. On this special day, only pure items such as ghee (clarified butter), Itra (perfume), and mehendi (henna) are applied to the bamboo stick. The application of these substances symbolizes the community's respect and devotion to Goga Ji.

B. Following this, on Nag Panchami, which celebrates the serpentine deities on the fifth day of the Krishna Paksha (waning phase) of the Shravan month, the bamboo stick undergoes another ritual bath. It is then adorned with a Kholi, a piece of cloth that is typically red in colour, though any colour may be used. This variability allows for personal expression within the community's practices.

Next, morpankh (peacock feathers) are placed atop the stick, symbolizing the hair of Goga Ji. This element of the Nishan showcases the artistic and spiritual significance of the preparations. A safed pagdi (white turban) is then wrapped around the bamboo stick, with its ends left hanging in front and at the back. This design represents the hands of Goga Ji, which are adorned with mehendi (henna). To further enhance the symbolic representation, two nariyal (coconuts) are used to create eyes, adding a lifelike quality to the Nishan.

As part of the ceremonial adornments, a kanthi (necklace/garland) made from 11 or 21 nimbu (lemons) is placed around the neck of the Nishan. Additionally, two paankhe (long peacock feathers) are tied at the bottom of the stick to symbolize Goga Ji's legs. After that, two ropes are tied around the Nishan, signifying the Janeu, a sacred thread worn by male Hindus across the chest, which represents their spiritual identity.

Picture 15 and 16 : Nishans from the 2000s reflect more minimal and less ornate designs

Picture 17 and 18 : Modern-day nishans are significantly larger and feature elaborate, decorative patterns

C. Following the tying of the Janeu, the next step involves the placement of the pharera, a triangular flag that signifies victory and honor. After Nag Panchami, a ritual is held in honor of Narsi Pandit Ji, one of the five deity (Paanch Veer) born alongside Goga Ji. This day is particularly notable in Jaipur, where a diya (lamp) is lit at the Jorawar Singh Gate also known as Dhruva Pole, the northernmost gate of the walled city. The gate is named after the Dhruva Star, which represents the north, and is the widest of all the gates. On this day, members of the Valmiki community go out seeking alms, accompanied by the sounds of a whip, damru (a small drum), and jhaalar (a traditional musical instrument). This practice reflects their cultural heritage and the communal spirit of the Valmiki community, as they engage with their surroundings and share their traditions with others.

D. As the celebrations continue, the day of Sinjara arrives, occurring on the day before the festival of Teej. Sinjara is a tradition in which a bride's family sends gifts to her and her in-laws. These gifts often include sweets, clothing, jewellery, wedding items, and fruits. On this day, half of the Nishan is adorned with coconuts, which some members of the community believe represent Goga Ji's army. However, these coconuts symbolize Goga Ji's protective kavach (armour), reflecting his identity as a warrior.

E. On Teej, the Nishan is fully decorated with coconuts and it weighs approximately one quintal, and the garland made of 11 or 21 lemons is replaced, as the previous lemons may have dried out by this time. It is customary to offer kheer (a rice pudding) and choorma (a sweet made from crushed wheat) to Goga Ji as a form of worship during the Teej festival. Additionally, during the Teej procession, the pharera is unfurled and bowed before Teej Mata, a gesture of respect and devotion to the goddess.

After the festivities, the Nishan is taken back home. If someone wishes to invite Goga Ji to their house, they take the Nishan to their home for the night, engaging in a jagran (spiritual night vigil) where prayers and songs are performed. The following day, offerings are made according to the individual's beliefs, and food is shared with guests, reflecting a spirit of community and generosity.

On Goga Navami, which marks Goga Ji's birthday, the community gathers for another Jagran (spiritual night vigil), performing prayers and rituals before unwrapping the Nishan.[12] Notably, the peacock feathers and turban remain intact, symbolizing Goga Ji's enduring presence. This celebration culminates with the unwrapping of the Nishan by the day of Siriyal Navami, which honours Siriyal, Goga Ji's wife, falling on the ninth day of the waxing moon in the month of Bhadrapada. This ritual emphasizes the Siriyal's significance within the Valmiki community.

Through these rituals, the Valmiki community not only preserves their cultural legacy but also reinforces the significance of their connection to Goga Ji, celebrating both his valour as a warrior and his enduring presence in their lives.

IV. Role of Women in the Ceremony

In the rituals surrounding Goga Ji, women play an important yet restricted role, reflecting both devotion and restraint. In Jaipur, the women of the family contribute by helping men prepare the sehra (a ceremonial headgear) for Goga Ji. They also prepare the prasad (offering), and when the Nishan of Goga Ji is taken out, they accompany it for a short distance, waving their pallu (veil) to offer air and showing reverence by folding their hands in prayer before returning home.[13] However, they do not carry the Nishan themselves, nor do they participate in the "raati jaga" (night vigil), where only men gather to sing folk songs and perform rituals.

Interestingly, in other regions such as Gogamedi in the Hanumangarh district of Rajasthan, women do participate by visiting and offering prayers, bowing their heads in reverence. Moreover, in parts of Uttar Pradesh, women carry the Nishan as well, highlighting regional differences in practices.[14]

When asked why women do not carry the Nishan in Jaipur, participants of the ritual explained that Goga Ji was a disciple of Guru Gorakhnath, whose tradition encourages distance from women to some extent. Families who perform these rituals also follow a vow of celibacy during the months of Saavan and Bhadrapada, adhering to the rules of the Gorakhnath tradition.

Thus, while women are involved in significant aspects of the ceremony, there are clear limits to their participation. Their role is

Picture 19 :
The collective preparation of prasad by women as part of the ritual

often centered around supporting the rituals rather than leading them, which aligns with traditional views that place men at the forefront of spiritual and religious activities. This limited involvement of women, especially in carrying the Nishan or participating in night vigils, reflects the broader societal norms where women's participation in certain public and sacred spaces is restricted. However, the respectful tasks they perform, such as preparing prasad and offering air with their pallu, continue to symbolize their devotion and integral presence in the ceremony, albeit within defined boundaries.

V. Collective Involvement : Structures and Processes within Valmiki Community

The involvement of the Valmiki community in the rituals surrounding Goga Ji is both collective and deeply rooted in tradition. These ceremonies are not just religious observances but also occasions that strengthen communal bonds and identity.

The community's involvement in the rituals is structured through distinct family lineages, referred to as gharanas, which play a pivotal role in organizing and maintaining these traditions.

In Jaipur, there are four prominent gharanas named after their respective gurus: Hathidas Gharana, Namonath Gharana, Devidas Gharana, and Topidas Gharana. Among these, the Hathidas Gharana is the oldest.

Each of these gharanas oversees manyata prapt Nishans (recognized flags) of Goga Ji, which receive formal recognition from Gogamedi in Hanumangarh, Rajasthan, a sacred site dedicated to Goga Ji. Currently, 17 such recognized Nishans exist in Jaipur, and each one is associated with its own akhada—a religious congregation or group exclusively composed of male members. This recognition is generally given to an elder from the community who expresses a deep devotion and commitment to carrying the Nishan throughout their life, ensuring the tradition continues through their successors. To receive official recognition, a devotee must undergo a formal process where they are granted a stamp paper and a tilak from Gogamedi.

The structure within these Akhadas is hierarchical, reflecting an organized community effort. At the top is the Bhagat, the head of the Akhada, followed by the Kalifa, who acts as a secretary and assumes leadership in the Bhagat's absence. The next position is Chaudhari (chief), followed by the Baajdaar or Samaiya, responsible for leading the musical aspect of the procession with folk songs. The Kotwal handles logistical arrangements, such as food and refreshments for the participants, while the Ghoda (literally meaning "horse") is the individual who physically carries the Nishan.

After the Teej festival, the community comes together at Chougan Stadium for a grand fair, where all 17 Akhadas participate with their respective Nishans. Each Akhada has its own squad, and they perform folk songs, engaging in musical competitions and challenges with one another. This aspect of the ceremony brings out the spirit of camaraderie and healthy competition within the Valmiki community, ensuring that the traditions of Goga Ji are not only preserved but celebrated with enthusiasm across generations.

Through these rituals, the Valmiki community continues to strengthen its identity, passing down these deeply rooted traditions from elders to younger generations while reinforcing the bonds within their community.

Picture 20 : Late Shri Lal Nath Ji Sarsar, a respected elder and renowned bhajan (religious melodies) singer from the Valmiki community of Rajamal Ka Talab, Kanwar Nagar, Jaipur

Conclusion

Symbols like the nishan have long been central to Indian cultural and spiritual life, serving as powerful markers of identity, authority, and belief. From ancient Vedic battle standards to the richly varied flags of Rajasthan's royal houses and folk deities, these emblems communicate stories of lineage, valour, and divine protection. Each nishan reflects the unique values and histories of the community or deity it represents. The Nishan procession of Goga Ji, reflect the Valmiki community's devotion, heritage, and identity. Historically barred from entering many mainstream temples and with such exclusions still persisting in some places, marginalized castes naturally gravitated toward folk deities, whose worship offered them a more accessible and inclusive spiritual space. The Nishan decorated with coconuts, peacock feathers, and sacred threads not only symbolizes faith but also preserves collective memory. These traditions, maintained through gharanas and akhadas, reinforce communal bonds and continuity.

While women primarily take on supporting roles, their limited participation in carrying the Nishan highlights broader gender norms. Despite this, their involvement remains crucial. The broader community asserts its identity through these rituals, using them to strengthen cultural heritage and solidarity. Viewing these traditions as evolving rather than fixed reveals how faith and social structures shape the Valmiki community's role in Rajasthan's cultural landscape.

Acknowledgments

I sincerely thank Shubham Goyar, Gaurav Sangela, Manish Golecha, Piyush Sangela, and other community members from Brahmpuri Valmiki Colony, Jaipur, for generously sharing their oral accounts. I am grateful to my friends Ravi Kumar Sharma for his help in data collection and organisation, Hemendra Singh Rathore and Yash Chaudhary for assisting with photographs. Above all, I extend my heartfelt gratitude to my supervisor, Dr. Neekee Chaturvedi, for her constant encouragement, insightful guidance, and faith in my work.

Notes

1. "Nishan: 2 Definitions," WisdomLib.org,

   accessed May 30, 2025, https://www.wisdomlib.org.
2. Ṛgveda 7.85.2:

   Spardhante vā u devahūye atra yeṣu dhvajeṣu didyavaḥ patanti|

   Yuvam tān indrāvaruṇāv amitrān hataṃ parācḥ śarvā viṣūcḥ ||

   (Those who compete here for divine favor, on whose banners the flames fall — you, Indra and Varuṇa, destroy those enemies. Drive them away, O mighty ones, O scatterers of foes.)
3. Yowann Byghan, Sacred and Mythological Animals: A Worldwide Taxonomy (McFarland, 2020), 279.
4. Benjamin Walker, Hindu World: An Encyclopedic Survey of Hinduism, vol. 1, A–L (London: Routledge, 2019), 408.
5. Rima Hooja, A History of Rajasthan (New Delhi: Rupa Publications, 2006), 487–89.
6. Raghunath Prasad Tiwari, Rajasthan ke Veer Jujhar (Jodhpur: RG Group, 2019)

7. Usha Kasturia, Rajasthani Veergathatmak Pavaade (Delhi: Lok Prakashan, 1989), 35.
8. Bindhyaraj Chauhan, Gogadev Chauhan (Tradition and History) (Jodhpur: Rajasthani Granthagar, 2018), 36.
9. ibid., 37.
10. Chandra Dan Charan, Gogaji Chauhan Ri Rajasthani Gaatha (Jodhpur: Rajasthani Granthagar, 2000), 22.
11. Suresh Salvi, Rajasthan ki Lok Sanskriti evam Lok Devi-Devta (Udaipur: Himanshu Publication, 2009).
12. ''धूमधाम से मनाई जाएगी गोगा नवमी छड़ी निशान'' Dainik Bhaskar, August 2024, https://www.bhaskar.com/amp/local/mp/sehore/ashta/news/goga-navami-chhadi-nishaan-will-be-celebrated-with-great-pomp-133468657.html
13. Aashika Shivangi Singh, "Jaharveer Mela in Mathura Is an Assertion of Dalit Faith, Cultural Identity," BehanBox, April 25, 2023, https://behanbox.com/2023/04/25/the-jaharveer-festival-is-an-important-event-in-the-life-of-mathuras-valmikis-marking-their-distinct-culture-and-identity/
14. ibid.

Naincy Rana
Research Scholar,
Department of History and Indian Culture
University of Rajasthan, Jaipur

❑ ❑ ❑

History and the Legacy of Slavery in Toni Morrison's Beloved

Subhash Singh • Dr. Sanjeev Tayal • Dr. Sumita Ashri

Morrison blends historical context with personal narrative to highlight the enduring impact of slavery on the present. Beloved intertwines the past and fable, merging societal and past elements with themes of racial discrimination, prejudice and the mystical. Toni Morrison herself wrestles with whether to keep in mind or not remember the hurting memories of history, a conflict reflected in her treatment of the story and its characters. Her goal is to honor those who suffered and were brutally killed by slavery. Morrison guides readers through a realistic portrayal of African American history, confronting the most distressing aspects of racism and slavery. Her narrative engages with historical struggles within Black communities while also creating a new, non-hegemonic space for meaning and existence. Through, a multi-dimensional perspective shaped by the legacy of slavery, Morrison offers a reinterpretation of African American historical experiences that goes beyond dominant norms. By combining historical facts with vivid, imaginative storytelling, Beloved has reshaped the representation of history in literature, fostering a deeper and more empathetic understanding of the past.

Key Words : *Historical, Confrontation Slavery, Exploitation, Racial oppression*

Introduction

Toni Morrison's *Beloved* intricately weaves historical exploration with a focus on the legacy of slavery in America. Set in the consequences of the American Civil War, the narrative pursues Sethe, an escaped enslaved woman, as she confronts her traumatic past and its effects on her current life. It addresses racism and the

harrowing aspects of African American history related to slavery. *Beloved* deeply examines the emotional and psychological impacts of slavery through Sethe's experiences, revealing how this traumatic history influences her identity and relationships. Morrison merges historical context with personal narrative, emphasizing the persistent scars of slavery and their continued impact on the present. Through its blend of historical events and evocative storytelling, *Beloved* offers a profound insight into the enduring legacy of slavery.

The narrative draws inspiration from the actual case of Margaret Garner, a fugitive slave who murdered her young child to avoid recapture. *Beloved* intertwines the past and fable, merging societal and chronological elements with an altercation of racial discrimination, prejudice and the mystical. In the novel, Beloved, the child whose death was a consequence of slavery, is resurrected from the past and enters the present consciousness of Sethe, Denver, and everyone connected with 124, the house on Bluestone Road:

> “124 is spiteful, full of baby’s venom. The woman in the house knew it and so did the children. For years each put up with the spite with his own way, but by 1873 Sethe and her daughter Denver were its only victims.” *(Beloved, 4)*

Sethe's suffering is not unique; it reflects the hidden pain experienced by many African Americans. They grapple with the weight of their historical trauma, striving to escape the burden of their past. However, they are often haunted by ghosts from history that destabilizes their lives. To overcome this instability, Black Americans must confront and acknowledge the very history they seek to forget. They need to confront their memories and address the unresolved issues they have tried to evade.

The novel conveys a pervasive wisdom of indecision and bewilderment. Morrison herself grapples with the dilemma of whether to keep in mind or overlook the hurting memories of history. This ambivalence is mirrored in her approach to the narrative and its characters. Morrison aims to honor those who suffered and were harshly murdered by slavery. Beloved serves as a deliberate attempt to address and heal the deep wounds inflicted by the enslavement of Africans, which represents a significant social injustice. Through her

narrative, Morrison gives voice to the profound lament of thousands of Black Americans, highlighting the absence of a historical marker that might prevent such atrocities from recurring. The lack of such a marker does not erase or lessen the pain of slavery; instead, it emphasizes the void and the reminder of what is misplaced. For many years, Sethe has resisted confronting her past, actively working to keep it at a distance. She is deeply engaged in the challenging task of repelling the haunting memories of her history. The ghost of Beloved compels Sethe to confront her previously unspoken history. Beloved's come back as a ghost forces Sethe to acknowledge the murder of her baby daughter, highlighting the painful reality that nothing truly dies and that the return of the dead can be agonizing. Beloved intertwines supernatural elements with a deeply personal story, focusing on the real struggles of a woman. Set in 1873, outside Cincinnati, Ohio—a state that had only been part of the Union for seventy years—the novel's historical specificity, references to the passage of time, and setting affirm its role as a historical novel. It adheres to the conventions of fictional historiography by grounding itself firmly in its historical context. The novel explores the experiences of Black Americans before, during and after the Civil War, aiming to vividly bring these historical experiences to life, especially for those distanced from that era. Beloved deepens the historical narrative by uncovering the realities of slavery, suffering, assassinate and economic exploitation, offering insight into the slave experience through vivid, personal accounts.

The novel portrays the harsh behavior of enslaved females by slave holders, who not only deprived of them the right to family life but also exploited them as breeders for future generations of slaves. This dehumanizing practice mirrors Sethe's own mistreatment, including being beaten and having her milk forcibly taken. The historical setting of the novel is crucial for understanding the period's context. In 1855, while free Northern states offered refuge to escaped slaves, they were still vulnerable to being recaptured by slave catchers. This is exemplified in the novel through the real-life case of Margaret Garner, who, having fled with her family, faced the threat of recapture by slave catchers. In her desperation, she made effort to murder her children to avoid them from being enslaved again; her baby daughter died, but her sons survived. Garner was historically judged not for the act of murder but as a fugitive property issue. Beloved is fundamentally a story about memory, specifically the collective reminiscence of racial domination endured under slavery.

While *Beloved* is a historical novel, it can also be viewed as a love tale. Throughout the novel, many types of relationships are explored, including those between lovers and the beloved, as well as between self and other. The novel delves into different forms of love, adding complexity to its central themes. Within this historical framework, the most significant love relationship is the maternal bond. The narrative frequently emphasizes the connection between mother and child, highlighting the joys and challenges of maternal love. This focus is repeated in Sethe's personal experiences and reflections:

> "If I hadn't killed her she would have died and that is something I could not bear to happen to her" (*Beloved,* 199-200)

The system of slavery, which leaves a terrible legacy that distorts human connections, is surely the main cause of Sethe's acts. According to Paul D.'s perspective, Sethe's tactics were eventually ineffective in addition to being desperate. Beloved holds Sethe responsible for the extremely tragic deed of killing her own kid in an effort to protect her from the atrocities of slavery. There had to be another way to deal with her circumstances. As Sethe herself reflects:

> "She wouldn't draw breath without her children" (*Beloved,* 203).

She attempts to validate her act by saying:

> "The best thing she had was her children. Whites might dirty her all right, but not her best thing, her beautiful magical best thing-the part of her that was clean." (*Beloved,* 251)

Sethe discusses love, clothing, family protection and similar concerns. However, Sethe's love has been tainted by the legacy of slavery. This institution turns relationships into transactions, treating the beloved as property to be owned and exchanged. Such a form of love effectively turns the loved one into an object, rendering the act of loving itself a form of possession and haunting. This type of love is an anomalous surfeit, a distortion of its true nature. As Baby Suggs observes in the novel:

> "Everything depends on knowing how much, good is knowing when to stop." (*Beloved*, 86)

When Sethe kills her baby, Beloved, Paul D. criticizes her actions, arguing that there were alternative ways to protect her from slavery. Sethe, however, dismisses these alternatives, believing that only suicide or violence against the slave owner could have been viable options. If Sethe can understand that she is her own most important asset and lie to rest the last ghost of slavery's history, then she and Paul D. may be able to move on from their traumatic past and enjoy a better future.

Toni Morrison takes readers on a historical tour of her novel, *Beloved,* highlighting the historical authenticity of American-African experiences. The most horrific elements of American African slavery and history, such as suffering, assassinate, embarrassment, repression and brutality are discussed in the novel along with racial discrimination. Morrison skillfully combines a ghost story with a love narrative, delving into history and slavery while comparing mother love to a kind of magic. The strength and beauty of the past, as well as its pain and shame, are both depicted in the novel. It emphasizes how crucial it is to comprehend the past in its entirety in order to create an improved prospect with all of its opportunities. As a result, the historical past is portrayed in the novel as being alive. In summary, Morrison provides a reinterpretation of African American historical experiences that takes into account multiple dimensions impacted by the legacy of slavery, in addition to the dominant standards. She accomplishes this by rethinking African American experiences within the variety of its historical contexts and fusing elements of the fantastic genre.

Morrison's narrative attempts to establish a new, non-hegemonic domain of life and meaning in addition to addressing the historical battles within Black communities. She uses the fantastic mode in her novel to explore and communicate opposing or contradictory components in order to traverse this complex reality and create new avenues for cultural expression. With an emphasis on the problems experienced by African American women in particular, the novel, Beloved emphasizes the difficulty of rising from the periphery to the center. Morrison presents female characters as victims of cruelty, torture, humiliation and other types of inhumane subjugation. By isolating themselves, these women try to avoid the brutality of their white overlords. By intertwining historical realities of slavery, love, and fantasy, Morrison transforms these elements into a fictional

reality that reflects her genuine concerns. Additionally, she addresses the complexities of human nature, particularly in relation to love, sex, and relationships, making these themes central to the novel.

Beloved delves deeply into the brutal realities of slavery. Morrison reveals the inhuman impacts of slavery on both individuals and communities. The character of Sethe, who escapes from the Sweet Home plantation, embodies the struggle for freedom and the pain of separation from her children and her own humanity. The novel examines how slavery's trauma persists even after the formal end of enslavement, affecting individuals' identities and relationships. The novel is set in the aftermath of the Fugitive Slave Act of 1850, which consented that fugitive slaves be come back to their masters. This historical backdrop adds urgency and tension to Sethe's struggle, as it amplifies the constant fear of being recaptured. The setting of Beloved during the Reconstruction Era underscores the difficulties faced by freed Black people in rebuilding their lives and communities. Despite the end of slavery, the promises of Reconstruction were often unfulfilled, and African Americans continued to face significant socio-economic and racial challenges.

Morrison uses the character of Beloved, a ghost of Sethe's dead child, to explore the haunting impact of slavery. Beloved's return symbolizes the unresolved trauma and the way history's ghosts continue to affect the present. The novel suggests that confronting and acknowledging this trauma is essential for healing. The novel also highlights the importance of community and collective memory. Sethe's struggle is not just personal but also reflective of the broader Black community's struggle to create a sense of identity and belonging after the horrors of slavery. The support of characters like Denver and the community's eventual involvement demonstrates how collective solidarity can offer strength and recovery. Sethe's experience as a mother is central to the narrative. Her willingness to kill her own child to save her from the horrors of enslavement is a powerful commentary on the extremes of maternal sacrifice. It also prompts questions about the price of freedom and how far one might go to defend their loved ones.

Morrison blends the supernatural with the real, using elements of magical realism to emphasize the emotional and psychological dimensions of historical trauma. This technique helps to convey

the intangible, yet profoundly felt aspects of history's impact on personal and collective identity. The novel, Beloved stands as a profound historical novel by intertwining personal trauma with broader historical realities. Morrison's depiction of slavery goes beyond mere historical recounting to explore its deep psychological and emotional scars. The character of Sethe embodies the brutal legacy of slavery, and her struggles illustrate how the past's horrors shape identity and community. The novel's nonlinear narrative and supernatural elements emphasize how history and memory are inextricably linked, revealing the enduring impact of slavery on individuals and collective consciousness. Through its rich symbolism and emotional depth, Beloved not only recounts the history of slavery but also delves into its lingering effects, making it a crucial work for understanding the complexities of America's past and its reverberations in the present.

Thus, it can be concluded that, Beloved plays a vital part in reshaping the portrayal of slavery and its consequences. It introduced a deeply personal and psychological perspective on the legacy of slavery, diverging from traditional historical narratives. Morrison's novel brought to light the emotional and cultural dimensions of slavery, emphasizing its lasting impact on identity and memory. By blending historical facts with rich, imaginative storytelling, Beloved has influenced how history is represented in literature, encouraging a more nuanced and empathetic understanding of the past. Its critical success has solidified its place as a seminal work in both American literature and historical discourse.

Work Cited

- Ashraf Abu-Fares, (2021). Slavery of the Past and Trauma of the Present: A Study of Toni Morrison's *Beloved, British Journal of Philosophy, Sociology and History,* Vol. 1, Issue 1, pp. 1-7.
- Bloom, H., (2007). *Toni Morrison's Beloved,* Viva Books, New Delhi.
- Dhakal, L. N., (2022). Toni Morrison's *Beloved:* A Study on History, Slavery and Love, *Pursuits,* Vol. 6, Issue 1, pp. 39-43.
- Lakshmi, B. (2017). The Impact of Slavery in Toni Morrison's *Novel: Beloved, Veda's Journal of English Language and Literature*, Vol. 4, Issue 1, pp. 63-70.

- Mahameed Mohammed, M., (2018). The Impact of Slavery in Toni Morrison’s Beloved: From the Communal to the Individual, *International Journal of Applied Linguistics and English Literature,* Vol. 7, Issue 6, pp. 48-51.
- Morrison, T., (2004). *Beloved,* Vintage International, New York.
- Rani, A., (2022). The Portrayal of Slavery in Toni Morrison's *Beloved, International Journal of Creative Research* Thoughts, Volume *10,* Issue 2, pp. 345-356.
- Saxena, M., (2019). The Unspoken Truth about the African Slavery through Morrison’s *Beloved, International Journal of Social Science and Humanities Research*, Vol. 7, Issue 3, pp. 578-584.
- Viji. S, Veenu Girdhar, (2016). Slavery and Motherhood in Toni Morrison’s *Beloved, International Journal of Professional Studies,* Vo. 2, Issue 2, pp. 83-87.

Subhash Singh
Research Scholar
Department of English,
Baba Mastnath University Asthal Bohar Rohtak (Haryana)

Associate Professor of English
Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

Dr. Sanjeev Tayal
Assistant Professor
Department of English,
Baba Mastnath University Asthal Bohar, Rohtak (Haryana)

Dr. Sumita Ashri
Assistant Professor
Department of English,
P.I.G. Govt. College for Women, Jind

❑ ❑ ❑

Juvenile Heroism : A Study on The Young Revolutionaries of Sonarang National School of Colonial Bengal

● **Smt. Dalia Roy**

Indian Independence was possible with the popular participation of masses from every age- group- children, youth, and old. But unfortunately, child revolutionaries' history has not been illuminated by the historians. Hence, this article elucidates the significant role played by children or students in propagating the revolutionary ideals and participating in the national movement of India, especially in Bengal. As there are many instances in Bengal, which reveal the involvement of many such young revolutionaries, who sacrificed their lives for their country.

Key words : *Child revolutionaries, student movement, juvenile heroism.*

One significant question needs to be answered here: Has Indian history been fair and inclusive enough to represent the juvenile revolutionary's history? Perhaps the answer would not satisfy our scholarly mind of interest. Hence, I begin this article by arguing that the historians and scholars should initiate the process of rewriting colonial history to make Indian history more representative and should also go beyond the historical, sociological, and anthropological approaches in writing the history. As we all know, leaping flames of India's freedom struggle deeply sucked the blood of millions, i.e. child, youth and old equally. Expanding the scholarly gaze on the revolutionary struggle to take in the presence of children does not change the grand narrative of the movement, but it enriches our understanding considerably.

In exploring the place of children in the Indian revolutionary movement, it is important to make clear at the outset that, in some situations children lacked even awareness of, the role they were playing. This may be because they were infants or because their dependence on their parents meant that they had a limited ability to reject their parents' lifestyle even if they disagreed with it[1]. It was either their parents or the mentor who guided them. However, the political and cultural situation of being a colonial country probably made the Indians realize the need for instilling cultural pride and patriotic sentiments as early as childhood.

One of the most insignificant and inconsequential decision of the British government to partition Bengal in 1905, in fact, created utter chaos among the youth of the country. It contributed greatly to the awakening among Bengali intelligentsia which lead to revolutionary nationalism in subsequent years. Hence the growth of Swadeshi movement became topic of discussion especially among the youth. Every morning the youth eagerly waited for newspapers at their doors and could not attend to their classes without reading the newspapers. The revolutionary nationalist emphasized that every patriotic youth began to realize that India should no longer be exploited by the Britishers[2]. And when the influences of the boycott ferment were supplemented by the perusal of such newspapers as the Jugantar the impressions on many a youthful mind must have resembled those exemplified by the following letter, which was filed as an exhibit in the Alipore case[3].

" Mirasi 7th September 1907*"

Sir,—From your advertisement, articles and your bold writings, I understand that he alone who has the subversion of the Ferenghi Government at heart, should by all means read the Jugantar, I, a schoolboy, living in a hilly country, don't feel any oppression of the Ferenghi, and I give way before people for want of information. I am, therefore, in need of Jugantar, for it acquaints us to a great extent with the desire of driving away the Ferenghis and also makes us alive to wrongs. I am extremely in straitened circumstances, hardly able to procure one meal a day ; nevertheless my desire for newspaper reading is extremely strong. Hence I approach you as a beggar. Ah ! do not disappoint such an eager hope of mine. 1 shall pay the price when I shall have the means. I hope you will favour me by enlisting me as a subscriber. Further, please don't fail to send a sample copy.

Submitted by sri Debendra Chandra Bhattacharji, P.O. Macchihadi, Mirasi, Sylhet.”

Child psychological studies shows that youngsters participates enthusiastically in political struggle, they make good soldiers because they are easily motivated and natural joiners, and willing to take risks. Apparently, in the above letter similar enthusiasm can be seen in the young boy. Especially the way he expressed his earnest desire to get the newspaper” jugantar”. It symbolises, how the young students were desperate to know not only about the political situation of the nation but also enter into the mainstream revolutionaries’ activities. It also marked the era of a new beginning, where the whole society gradually gets involved in the movement irrespective of age.

But, at the outset, the question that needs to be answered is, who is the recruit and how they were recruited? Apparently, many school and college teachers and the old members of different societies acted as the talent-spotters and did the recruitment. Through this paper I intend to bring out the role of one such school which provided many participants from the ranks of its teachers and students with special reference to the Sonarang National school of Munshiganj (Dacca). Sonarang National school of Munshiganj (Dacca) was one ordinary school with extraordinary record of producing young revolutionaries. Indeed, the young students of Sonarang National school were exposed to the revolutionary outlook from an early age and many youngsters consciously embraced the movement and willingly helped their mentors where they could. These students after getting selected by their mentors, were usually put through a set of initiation rituals. The rituals and vows of the initiation ceremony could differ in detail from group to group. In some cases, the ceremony took place before an image of goddess Kali or Durga, or in front of a burning fire. Some were asked to hold a sword in one hand and the Gita in the other4. Not only Sonarang National school rather, many secondary English schools, Bengal colleges, have been regarded by the revolutionaries as their most fruitful recruiting centres[5]. The search of the Bengal revolutionaries ended in these schools and colleges, as fully realised that these boys have the potential for securing the ultimate liberation and complete independence of the Bengali ‘nation’.

This notorious school had been founded in the year 1908. They followed the same curriculum as in the Government schools up to the Entrance or Matriculation standard, in addition to that physical exercise and lathi-play, practical carpentry and iron-work also were taught to the students. Intention behind introducing such special training classes was being obvious i.e. to instil the spirit of vigilance, alertness, and developing the manufacturing skills among the young students. No syllabus of subjects taught or text-books used at this school had ever been issued, and it has not been ascertained what books were actually in use there, but on the occasion of a search made in August 1910 in connection with the Dacca conspiracy case, the following books were found in the school library[6]:

(1) History of Tilak's case and sketch of his life.

(2) Chhatrapati Shivaji, by S. C. Sastri,

(3) History of the Sepoy Mutiny.

The discontented and underpaid teachers and students of this school aimed at securing the ultimate liberation and complete independence of the Bengali ' nation ' It is obvious that the students were recruited , enlisted students and schoolboys for picketing operations[7]. Evidences shows that the young boys were actively participating in different activities enthusiastically. It has been found that at the time of the Dacca conspiracy case, as many as 60 or 70 students were part of it. For instance, the students seized the bag of a postal peon with its contents, including registered orders for money and cash. Fourteen teachers and students were arrested and seven were ultimately punished by fine or imprisonment. They even participated in the Goadia dacoity case. Their modus operandi being the circulation of seditious leaflets, spying, throwing bombs funds raising etc. The main idea behind such assaults were basically raising fund for buying arms for their movement. In another incident, on the 2nd of March, a little before 5 o'clock in the evening, a bomb was thrown into the motor car of a European gentleman named Cowley by a boy aged 16, who was arrested on the spot[8]. Between July 1905 and December 1907, the unusually large involvement of students and teachers in various protests, seditious leaflets circulation, and attacks appears to have unnerved the government.

Many samities like Anusulin Samiti, Dacca Samities began to show interests in recruiting these boys in their revolutionary

activities. Commenting on the Dacca samitis, the D.M., Dacca observed in 1907 that the average lower age limit of the members was 12 years. Reporting a year later on the same group but on the basis of information obtained from a large number of seized documents, another officer noticed that the children of still lower age were joining the samitis: "now children of nine take solemn vows to renounce all worldly ties for the samiti", and he commented with a certain degree of alarm that although "admirable in the interests of a revolutionary organisation….(this development was) pernicious to society in general[10]." Childrens were not afraid of death, rather they took it as an offering to their motherland. There were many such cases of courage, heroism and sacrifices, in Bengal. The following table shows the number of people who were convicted in Bengal political crimes or killed in the process.

Age-group of persons convicted in Bengal of political crimes or killed in the commission of such crimes (1907-1917)

10-15 years	16-20 years	21-25 years	26-30 years	30-35 years	36-40 years	Over 45 years	Not recorded	total
2	48	76	29	10	9	1	11	186

Source; sedition committee report, 1918.

The above data put forth by the sedition commission in 1918, clearly indicates that different groups of revolutionaries developed in India after 1905. First being the young school students under 16, second group comprising college students or college pass-outs, and the third group comprising of elderly mentors, who belonged to different agencies and revolutionary secret societies and were very eager to recruit these students to assist them in their movement. As a matter of fact, these boys proved to be better than their mentors. It also reveals the fact that the number of these young highly motivated nationalist youth was not only greater than the others participants, rather expected that their earnest effort would bring the British Government to its knees. They participated actively in the Swadeshi movement in the hope and belief that methods of agitation and protest would take the national movement out of its elitist groove. But unfortunately, it is very disheartening to state that there are hardly any accounts, books , or any official report/ documents put forth , revealing the names of these young students. We do find the

names of the samiti leaders, their mentors, or talent spotters, but there is dearth of any records revealing their names and identity. Which eventually leads their contribution towards obscurity. Despite of their vocal personalities, sacrifices, undaunting attitude and intimidating involvement in different revolutionaries' activities, they remained in the history as unsung heroes. Nevertheless, it is not to be forgotten that without the assistance of these young Bravehearts, the whole scenario would have been somewhat different.

Eventually , after the Swadeshi movement the impatient and frustrated youth began to feel that perhaps something even more dramatic was needed to overthrow the government, hence, they turned to the path of individual heroic action or revolutionary nationalism where they were left with only one choice for immediate action i.e. assassination of individual British officials, especially the unpopular ones, throwing bombs to strike terror among officialdom, funds raising, sacrifice for the motherland. For the first time in the history of Bengal, a wide cross-section of the Bengali middle class actively participated in organised crime. The crimes ranged from simple violation of the law by disobeying restrictions on meetings and processions and by chanting 'Bande mataram' at one end of the spectrum to armed dacoity, bomb throwing and murder at the other[11]. Not only this, it is also reported that around 51 attacks were carried out by the various revolutionaries' groups active in Bengal, Maharashtra, Andhra Pradesh, and Uttar Pradesh to uproot the Imperial forces from India. For carryout various activities, the groups have been generated finance plundering of Post Offices, banks and government treasures and robbery was advocated by the Yugantar[12]. Schools and college students in groups boycotted their classes to devote themselves to swadeshi activities.

As expected, the British Indian Government took repressive measure to suppress the movement. Anxious British Government was forced to issue the infamous Carlyle Circular to put down the movement. It was named after the officiating chief secretary to the Government of Bengal R. W. Carlyle and was issued on 10th October 1905. The Circular prohibited the students from attending the meetings of the nationalist leaders or from boycotting, picketing or other activities associated with the swadeshi movement[13]. Even, shouting Vande Mataram was banned. The Carlyle Circular also threatened withdrawal of grants, scholarships and affiliation from

nationalist dominated institutions. The circular prescribed as punishment stoppage of scholarship, refusal of transfer certificates after expulsion from school, rustication and canning. Thus merely for participating in the boycott movement many school boys were subjected to harsh punitive measures including indiscriminate and inhuman whipping. The publication of Carlyle Circular created sensation and a sense of shock all over the country[14].

However, harsh repression followed by a series of draconian laws and the lack of a popular response led to the gradual decline of this wave of revolutionary nationalism. Individual heroic action undoubtedly earned the revolutionaries a great deal of popular adulation and sympathy, but due to the lack of mass participation, they somewhere failed to make effective use of their strengths. Nevertheless, British government tried all their methods to put down the movement, and the energy of young boiling blood of the Indians, but somewhere, they misapprehended the magnitude of the national spirit. These revolutionary patriots were built up quite a different mould. Even after solitary confinement they did not veer off. They held out against all odds. This was major victory of the political prisoners and they stood united like a rock and succeeded in defeating British.

Conclusion

Hence, at the end one could say that the spirit of fighting against injustice has been pervading the minds of younger generations. They went against all the odds of resistance with real spirit and zeal for the sake of motherland. The young students of Sonarang National School of Munshiganj (Dacca) indeed posed a serious challenge to British colonial regime despite of adversity and authority. It was the spirit of these youth that never ceased and were ready to accept death for the sake of salvation of motherland at any cost. Hence, India needs a rigorous historiography to study the contribution and sacrifices of these little unsung heroes who played significant role in fighting British imperialism in their respective localities and provinces.

Reference

1. Turton, K. (2012). Children of the revolution: parents, children and the revolutionary struggle in late imperial Russia. The Journal of the History of Childhood and Youth,p- 54, 5(1).

2. Kusum Kumari , & Dr. Murthy R V R -Perceptions of youth during Indian freedom struggle between 1905 to 1930s: a study Galore International Journal of Applied Sciences and Humanities (www.gijash.com) 3 Vol. 6; Issue: 2; April-June 2022 ,p-2
3. Sedition commission report-1918, P--112
4. Mukherjee. Arun – Crime and public disorder in colonial Bengal (1861-1912),p-185
5. Sedition commission report, 1918, p-111
6. Ibid-, p-51
7. Ibid, p-112
8. Ibid, p-51
9. Ibid, p-51
10. Report on samitis, 1908, p-35, note of Salkeld, Officer-on-Special Duty
11. Mukherjee. Arun – Crime and public disorder in colonial Bengal (1861-1912),p-185
12. Kumari. Kusum -Perceptions of youth during Indian freedom struggle between 1905 to 1930s: a study Galore International Journal of Applied Sciences and Humanities (www.gijash.com) 3 Vol. 6; Issue: 2; April-June 2022
13. Majumdar Ramesh Chandra: History of the Freedom Movement in India, Vol. II, Firma K. L. M., Calcutta, 1963, Majumdar R. C.: op. cit. p. 62
14. Chattopadhyay Gautam: Bengal's Student Movement in Challenge: A Saga of India's Struggle for Freedom, People's Publishing House, New Delhi, 1984, p. 515

Smt. Dalia Roy
Assistant Professor
Department of History
Siliguri College, Siliguri
West Bengal
droyadhikary@gmail.com

❑ ❑ ❑

Youth Dormitories And The Sociological Imagination : A Comparative Historical Study of Indigenous Institutions In India

• Kalpana Singh

The concept of sociological imagination, introduced by C. Wright Mills (1959), enables an analysis of personal experiences within their broader societal context. Tribal communities, recognised as the indigenous inhabitants of their regions, utilise "youth dormitories" as vital institutions for education, vocational training, and life skills, reinforcing cultural values and community bonds (Elwin, 1943; Vidyarthi & Rai, 1977). When considering cultural diversity preservation, it's crucial to evaluate whether initiatives are unduly influenced by the driving forces of industrialisation and urbanisation or if they genuinely aim to protect the uniqueness of each culture (Hasnain, n.d.; Ghurye, 1963). This question holds significant implications. Historically, policies affecting tribal populations have progressed through three phases, leading to their marginalisation and reliance on mainstream society (Ghurye, 1963). External interventions have often undermined tribal identities under the pretext of serving public interests, primarily focusing on land acquisition and the imposition of foreign faith systems (Elwin, 1943; Nair, 1965). This article examines the institution of youth dormitories as a sociocultural space through a comparative historical lens, focusing on their evolution and socio-educational functions across tribal and Hindu societies in India. Drawing on classical sociological imagination and indigenous knowledge systems, it contrasts youth dormitories with the Gurukul system to explore how both served as traditional educational and moralising institutions (Kumari, 2017; Lalchhanhima, 2020). While the Gurukul was integrated within Brahmanical Hinduism, tribal

dormitories functioned autonomously and were often gender-segregated. The article highlights key indicators that differentiate and relate the two, including spiritual authority, pedagogical structure, and community engagement (Roy, 2006). By critically reviewing secondary sources and discussing the implications for modern youth development, the paper argues for a nuanced understanding of indigenous pedagogies. It also reflects on the symbolic construction of "India" as a cultural idea that frames these institutions historically and sociologically (Patar, n.d.; Daimai, 2023).

Keywords : *Sociological Imagination, Tribal Youth Dormitories, Marginalisation, Diversity, Tribals, India*

Introduction

Youth dormitories have historically functioned as vital institutions within various indigenous societies across India. These communal spaces served not merely as living arrangements but as centres for cultural transmission, socialisation, and moral education (Elwin, 1943; Vidyarthi & Rai, 1977). Through the lens of the sociological imagination, this article explores youth dormitories as both concrete social institutions and symbolic cultural forms, enabling an understanding of how individual biographies were shaped by broader historical and societal currents (Mills, 1959). The article adopts a comparative perspective to investigate two traditional Indian institutions: tribal youth dormitories and the Gurukul system. Despite their distinct social contexts—tribal versus Brahmanical—their shared emphasis on communal living, mentorship, and education invites an analytical comparison (Roy, 2006; Kumari, 2017). Such a comparison reveals how divergent forms of knowledge production and social integration evolved in parallel within Indian society. Moreover, the use of "India" in this context is not merely geographical but conceptual. The article treats India as an evolving cultural idea—a civilizational space where diverse educational and moral traditions coexisted and interacted (Hasnain, n.d.; Daimai, 2023). This conceptual framing allows for an exploration of how youth dormitories, as indigenous institutions, responded to and were shaped by broader socio-political forces, including colonial modernity and cultural revivalism (Elwin, 1943; Ghurye, 1963). Although the article relies primarily on secondary sources due to the absence of fieldwork, it attempts to bridge this

gap by critically engaging with ethnographic and historical accounts (Lalchhanhima, 2020; Patar, n.d.). The analysis foregrounds the need for renewed sociological attention to such institutions, especially in the context of contemporary youth challenges (Roy, 2006).

Objectives

This paper aims to undertake a comparative historical and sociological analysis of youth dormitories among tribal communities in India and their parallels with the Gurukul system within Hindu society. The primary objectives are:

1. To examine the structure, functions, and sociocultural significance of tribal youth dormitories (Elwin, 1943; Kumari, 2017).
2. To compare tribal dormitories with the ancient Gurukul system in terms of educational roles, community integration, and cultural transmission (Roy, 2006; Lalchhanhima, 2020).
3. To explore the impact of modernisation and industrialization on the decline of these indigenous institutions (Ghurye, 1963; Hau & Prasad, 2024).
4. To assess how policies and development models have failed to account for the distinctiveness of tribal educational systems (Borthakur, 2022; Nair, 1965).
5. To apply the sociological imagination in understanding the broader social, cultural, and political factors that influence the survival and transformation of such institutions (Mills, 1959).

Methodology

This study is based exclusively on secondary data analysis, synthesising insights from ethnographic studies, historical texts, government reports, peer-reviewed journal articles, and academic books. The comparative framework adopted here draws from sociological and anthropological literature on tribal institutions and classical Indian education systems.

While the absence of fieldwork imposes certain limitations, particularly in capturing the lived experiences and contemporary dynamics of dormitory systems, efforts have been made to ground the analysis in well-documented and peer-reviewed ethnographies. This approach allows for a historically contextual and theoretically

rich understanding of the dormitory system. The study also critically reflects on the implications of relying solely on secondary data and recognizes the importance of future field-based inquiries to validate and expand upon the findings.

The comparative method is applied through the identification of key indicators such as initiation rituals, community roles, pedagogical structure, spatial location, and gender dynamics, which allow for a nuanced distinction between youth dormitories and the Gurukul system.

Theoretical Background

Understanding youth dormitories through theoretical lenses—anthropological, sociological, and educational—provides a multidimensional framework for comparison with other traditional systems of education, such as the Gurukul. Both systems emphasise communal living, cultural transmission, and informal learning, but they differ significantly in structure, intent, and social embeddedness.

Anthropological Perspective:

Youth dormitories in tribal societies serve as organic institutions deeply embedded in cultural ecology. They facilitate intergenerational transmission of oral traditions, perform rites of passage, and maintain tribal identity through rituals and everyday practices. These dormitories evolve within the community's spatial and spiritual world, without centralised control or formal hierarchy.

By contrast, the Gurukul system—though also residential—operates within a formalized pedagogical tradition rooted in scriptural authority (e.g., the Vedas). Gurukuls are hierarchical, often teacher-centric, and emphasize scriptural learning under the spiritual authority of the guru. While both involve moral education and discipline, the Gurukul emphasizes transcendental knowledge, whereas dormitories focus on community life skills and survival-based knowledge.

Sociological Perspective:

From a sociological standpoint, both institutions act as agents of socialization and community reproduction. Tribal dormitories build social cohesion by embedding youth within collective labour,

ceremonies, and conflict resolution processes. Power and knowledge are decentralized, with elders and seniors guiding through shared experience.

In comparison, the Gurukul system aligns with caste-based social stratification, privileging Brahmanical knowledge and reinforcing hierarchical roles. Social control in Gurukuls is enforced through spiritual discipline, while in dormitories it emerges through group norms and communal expectations.

Educational Perspective:

Both systems function as informal (yet systematic) educational spaces. Tribal dormitories prioritize experiential learning—skills such as hunting, agriculture, domestic work, and oral storytelling. Gurukuls, while also non-modern in form, follow a structured curriculum focused on memorization, philosophy, and moral codes. One relies on performative knowledge embedded in daily life, while the other leans toward abstract and textual knowledge rooted in metaphysics and religious law.

Comparative Indicators Used:

To facilitate this analysis, the following indicators are employed:

- Pedagogical model (experiential vs. scriptural)
- Authority structure (community elders vs. spiritual guru)
- Cultural transmission method (oral vs. textual)
- Spatial location and access (community-embedded vs. secluded or exclusive)
- Gender roles and co-residence (co-educational or gender-specific vs. typically male-only Gurukuls)

By situating youth dormitories and Gurukuls within these comparative frameworks, we highlight not only their historical importance but also their divergent responses to sociocultural needs. This theoretical clarity is essential for understanding how different communities have envisioned education, identity formation, and societal continuity.

Tribals In Census 2011

According to the 2011 census, Scheduled Tribes (ST) make

up 8.6 per cent of the total population, with 11.3 per cent residing in rural areas and 2.8 per cent in urban settings. Notably, Punjab, Chandigarh, Haryana, the NCT of Delhi, and Puducherry do not have any Scheduled Tribe population. The highest ST populations were recorded in Madhya Pradesh, followed by Maharashtra, Odisha, Rajasthan, and Gujarat. When considering percentages, Lakshadweep has the highest proportion of ST residents, followed by Mizoram, Nagaland, Meghalaya, and Arunachal Pradesh. In terms of housing and amenities, 40.6 per cent of the ST population lives in good houses, 22.6 per cent have latrine facilities within their premises, and 53.7 per cent enjoy separate kitchen spaces. Regarding access to services, 44.98 per cent use banking facilities, 21.9 per cent own televisions, 4.4 per cent have mobile phones, and only 1.3 per cent possess all these luxuries. A significant 37.3 per cent do not own any of these mentioned assets.

Youth Accommodation Facility

Tribal youth dormitories, or communal living facilities for unmarried youth, play a pivotal role in the cultural framework of numerous tribal societies globally. These dormitories function as hubs for social integration, education, and the preservation and transmission of cultural heritage. A youth dormitory is fundamentally characterized as an institution where young members of a specific tribe converge, typically from around the age of eight, until they approach marriage, usually in their late teens. They serve as educational environments, facilitating the immersion of tribal children in their cultural ethos while also equipping them with essential life skills, promoting collaborative participation in communal activities, and instilling the social norms and regulations pertinent to their tribe. This process is critical for maintaining their tribal identity and ensuring their viability within the community. The terminology and structure of these dormitories can vary substantially across different tribes. They may be designated exclusively for boys, exclusively for girls, or as co-ed facilities. The following table 1.1 Tribal Youth Dormitories, summarizes these variations, as commonly referenced in scholarly literature on tribal societies in India.

Table 1.1 Tribal Youth Dormitories

S. No.	Tribe Name	Youth Dormitory Name
1.	Bhuiyas	Dhangarbassa
2.	Munda	Gitiora
3.	Konyak Nagas	Morung
4.	Ao Nagas	Arichu
5.	Angami Nagas	Kitchuki
6.	Oraon	Dhumkuria
7.	Bhotia	Rangbang
8.	Muria	Ghotul
9.	Juang	Darbar
10.	Apatani	Patang

Youth dormitories serve a function analogous to the ancient Indian concept of "gurukul" playing a pivotal role in the social, economic, cultural, and political dimensions of tribal life. One of the key questions surrounding the advantage of these dormitories is how they facilitate holistic child development within tribal communities. It is posited that once a child reaches a certain developmental stage and comprehends the social dynamics at play, they should be sheltered from witnessing parental intimacy. Families with fewer children particularly benefit from this arrangement, as it allows for necessary private time away from the scrutiny of younger siblings. Moreover, the practice promotes a collective responsibility approach to childrearing, contrasting sharply with the often-individualistic notion of motherhood prevalent in Western societies. This model reallocates parental engagement, freeing parents to participate in broader tribal activities, while a dedicated institution manages various aspects of children’s upbringing. Economically, this collective methodology proves advantageous compared to individualistic efforts, fostering greater homogeneity among younger tribal members and mitigating the divergent influences that can arise within separate family units. Youth dormitories also function as crucial hubs for the intergenerational transfer of cultural knowledge specific to each tribe, encompassing traditional practices, marriage customs, kinship structures, religious beliefs, and other societal norms. These institutions thus reinforce cultural continuity and societal cohesion within tribal communities.

Youth Dormitory And Gurukul : Institutions of Socialization And Development

In both tribal and Brahmanical Hindu contexts, traditional residential institutions played a foundational role in shaping youth identity, imparting values, and ensuring societal continuity (Kumari, 2017; Roy, 2006). Tribal youth dormitories and the Gurukul system represent distinct, yet functionally comparable, models of community-based education and socialization. In tribal communities, youth dormitories were integral to the process of socialization, beginning around the age of eight and continuing until marriage. Daily life in these dormitories was structured around collective labour, ceremonial participation, and storytelling. Young members were initiated into tribal knowledge systems through practical engagement—agriculture, craftsmanship, religious rituals, and communal responsibilities (Hasnain, n.d.; Panda, 2020). Gender-specific or coeducational dormitories also served as informal spaces for partner selection, preparing youth for social adulthood. The dormitory operated without rigid hierarchy, relying instead on elder-youth mentorship and peer-to-peer learning. This fostered a strong sense of community belonging and egalitarian social integration (Roy, 2006). Ethnographer S.C. Roy (2006) has outlined the purpose of the tribal youth dormitory through three key points. Firstly, it functions as an effective economic unit, as young members collectively arrange for meals, alleviating individual families from the burden of food preparation. Secondly, the dormitory acts as a training centre where youth learn about their social responsibilities and duties. Finally, this space is typically situated in the privacy of the forest, making it ideal for magico-religious ceremonies that hold significance in tribal culture. Moreover, such settings can enhance the procreative powers of young men. This concept is reminiscent of the gurukul system in Hinduism, where the Brahmacharya ashram—representing the first phase of life—provides a space for youth to learn from their elders and mentors.

In contrast, the Gurukul system emphasized textual learning, celibacy (brahmacharya), and obedience to a singular spiritual authority—the guru. While also residential and immersive, Gurukuls functioned within a highly structured pedagogical tradition. Learning was centred around scriptures, particularly the Vedas, and the focus was spiritual liberation, moral discipline, and philosophical inquiry

(Vidyarthi & Rai, 1977). Social roles were clearly stratified, and access was often limited to upper-caste males, reflecting broader societal hierarchies.

A comparative analysis of the two institutions reveals important distinctions:

Indicator	Tribal Youth Dormitory	Gurukul
Pedagogy	Experiential, oral, embodied	Scriptural, memorization-based
Authority	Decentralized, community elders	Centralized, guru-centric
Cultural Role	Social cohesion, survival skills	Spiritual enlightenment, caste training
Gender Access	Often coeducational or parallel	Predominantly male-only
Integration	Embedded in everyday tribal life	Secluded, often outside village life

The dormitory's participatory structure empowered youth to assume leadership roles, mediate disputes, and coordinate cultural events (Daimai, 2023; Hau & Prasad, 2024). Such experiences built emotional intelligence and collaborative decision-making. In modern terms, dormitories anticipated many aspects of today’s “life skills education”—though rooted in tribal cosmologies, not market-based curricula (Borthakur, 2022). In contrast, the Gurukul prepared youth for intellectual and religious authority within the Hindu dharmic order. Sociologically, these institutions represent two divergent models of holistic development: one grounded in egalitarian, community-based learning, and the other in hierarchical, text-based instruction. Both, however, illustrate how societies historically shaped their youth not just for survival, but for social responsibility and cultural reproduction. In the context of globalization and modern education, the dormitory system has largely eroded, becoming symbolic of a lost era. It is now often romanticized through tourism or ritual re-enactments, whereas Gurukul revivalism is increasingly institutionalized in elite spiritual education models. Recognizing this shift allows us to reflect—through sociological imagination—on

how systems of education are not neutral but embedded in broader socio-political transformations.

Comparative Case Studies – India And Beyond

Across tribal societies in India and the world, communal youth dormitories have served as foundational institutions for cultural preservation and intergenerational transmission. These structures are not unique to Indian tribes; similar patterns can be found across Southeast Asia and the Americas, offering a rich comparative perspective on how indigenous communities have addressed the challenge of youth socialization (Daimai, 2023; Patar, n.d.). In Northeast India, the Morung of the Naga tribes and the Ghotul of the Gond and Muria communities exemplify highly developed dormitory systems. These were not merely sleeping quarters; they functioned as community centres, schools, ceremonial venues, and even informal governance spaces (Elwin, 1943; Roy, 2006). Activities included singing, storytelling, dance, and collaborative work—all essential to forming tribal identity and social cohesion. Youth learned practical skills such as hunting, weaving, agriculture, and domestic crafts, while also absorbing tribal customs, beliefs, and values. Similarly, in Southeast Asia, particularly among indigenous groups in Borneo and the Philippines, the longhouse served a parallel role. In these communal dwellings, entire villages lived and socialized together, allowing youth to learn through observation and participation. Social norms were transmitted through ritual, elder instruction, and collective labour, mirroring the Indian tribal dormitory model in structure and function. Among Native American tribes—such as the Hopi, Iroquois, and Lakota—structured systems existed for transmitting cultural knowledge through storytelling circles, warrior lodges, and seasonal migration rituals. While not always residential like Indian dormitories, these practices had the same socializing effect, instilling communal values, ecological knowledge, and identity (Tsosie et al., 2022). The Gurukul, while often viewed as unique to Indian Brahmanical tradition, also fits within this broader comparative landscape. As in tribal dormitories, youth were separated from their families and immersed in an all-encompassing educational environment. However, the Gurukul emphasized textual knowledge, spiritual authority, and social hierarchy, distinguishing it sharply from the egalitarian and practice-based learning of tribal dormitories (Vidyarthi & Rai, 1977; Ghurye, 1963).

Region	Institution	Key Features
Northeast India	Morung / Ghotul	Communal living, oral culture, ritual-based learning
Southeast Asia	Longhouse	Multi-family residence, labour-based training, elder-led guidance
North America	Warrior Lodges, Story Circles	Seasonal, gendered initiation, knowledge of nature and survival
Pan-India (Hindu)	Gurukul	Scriptural learning, spiritual hierarchy, caste-based access

The juxtaposition of these institutions shows that across cultures, communal youth spaces have been critical to preserving identity, discipline, and collective memory. What differs are the authority structures, educational content, and access mechanisms. India, in this comparative view, becomes both a case study and a civilizational metaphor—housing multiple, sometimes conflicting, systems of knowledge transmission.

In modern times, these indigenous institutions have been either assimilated, marginalized, or romanticized. In tribal India, dormitories face extinction due to formal education models and cultural dilution, while Gurukuls are being revived in niche spiritual and nationalist contexts. Such patterns reveal global tensions between tradition and modernity, and between cultural continuity and homogenization.

By examining these case studies, we not only explore institutional differences but also use sociological imagination to understand how societies construct youthhood, community, and knowledge differently—based on ecological needs, spiritual frameworks, and social systems.

Challenges, Transitions, And Decline—A Comparative Historical Perspective

The historical trajectories of India's indigenous youth institutions—tribal dormitories and Gurukuls—reveal a broader narrative of cultural transformation under the forces of modernization,

state intervention, and global influence. While both institutions played central roles in youth development and identity formation, their decline followed distinct yet interconnected paths (Roy, 2006; Kumari, 2017). Tribal youth dormitories began to erode with the penetration of industrialization, formal schooling systems, and urban migration. Modern curricula, imposed through top-down educational policies, often disregarded indigenous knowledge systems. The introduction of Western-style education—aligned with market needs—led to the gradual replacement of dormitories with standardized classrooms, often located outside tribal contexts. This shift not only disrupted knowledge transmission but also alienated youth from their cultural roots, languages, and ecological worldviews.

In contrast, the Gurukul system, though similarly impacted by colonial reforms and modern schooling models, experienced a different historical trajectory. As a part of the dominant Hindu tradition, Gurukuls retained symbolic value and saw selective revival during the nationalist movement and in recent decades through spiritual institutions and private foundations (Kumar, 2020; Ghurye, 1963). However, their contemporary forms—often elite, male-centric, and urban—bear little resemblance to their ancient pedagogical function.

A comparative historical lens reveals several critical differences in decline patterns:

Feature	**Tribal Dormitory**	**Gurukul**
Colonial Impact	Marginalized as "primitive"; excluded from formal policy	Sanskrit education institutionalized but weakened
Post-independence Education Policy	Ignored in mainstream frameworks; no adaptation or support	Culturally revived in certain Hindu nationalist and spiritual sectors
Modern Perception	Romanticized, often seen as obsolete	Respected but elite, revivalist
Survival Status	Near extinction; ceremonial memory	Limited revival in private/spiritual domains

The decline of dormitories also reflects the broader policy neglect of tribal communities. Government schemes have rarely addressed tribal educational models on their own terms. Instead, the focus remains on integration—absorbing tribal youth into the mainstream system, often resulting in cultural loss, identity conflict, and social alienation. The cultural functions previously performed by dormitories—such as sex education, communal bonding, and leadership development—are now either omitted or inadequately substituted by formal curricula.

Additionally, religious conversion efforts during colonial rule, especially in Northeast and Central India, transformed tribal cosmologies. The imposition of Christian or Hindu practices altered the spiritual basis of many tribal dormitories, further destabilizing their role. While tribal deities were absorbed or replaced, Gurukuls—though weakened—retained access to religious and political patronage.

This divergent fate underscores how structural privilege and marginalization shape institutional survival. Gurukuls, embedded in dominant social orders, adapted through cultural capital and revivalist politics. Dormitories, lacking such support, have faded into symbolic memory or nostalgic tourism, their educational value unrecognized in national discourse.

Using sociological imagination, this decline can be understood not as a simple loss but as a reflection of changing state-society relations, where tradition is selectively preserved or erased based on its fit with dominant narratives of progress and development.

Comparative History, Cultural Survival, And Sociological Reflection

The comparative exploration of tribal youth dormitories and the Gurukul system reveals two culturally rooted, community-based institutions of socialization that have experienced sharply divergent historical trajectories. While both were designed to prepare youth for adulthood, community life, and moral responsibility, they did so through markedly different pedagogical models, social structures, and cultural assumptions.

Tribal dormitories were deeply integrated into the ecological, spiritual, and communal life of indigenous societies. They offered

practical, life-sustaining education through collective living and intergenerational learning. In contrast, Gurukuls functioned within a formalized Brahmanical tradition, emphasizing scriptural knowledge, caste discipline, and spiritual enlightenment under the authority of a guru. These distinctions—oral vs. textual, egalitarian vs. hierarchical, local vs. Sanskritic—reflect broader civilizational differences within India itself.

Over time, both institutions have been reshaped by external pressures, including colonial rule, missionary activity, post-independence development policies, and the rise of industrialized education. However, while the Gurukul has found renewed life in elite and spiritual circles, the tribal dormitory system has faced near erasure—reduced to a cultural memory rather than a living institution. This asymmetry highlights how structural privilege determines which traditions are preserved, repurposed, or abandoned.

From a sociological imagination perspective, these transformations underscore the intersection of personal development, institutional decline, and national narratives of modernity. The dismantling of dormitory systems cannot be seen merely as a side-effect of progress; rather, it reflects deeper ideological choices about what forms of knowledge and community are deemed legitimate or obsolete. In privileging one model (textual, hierarchical, standardized) over another (oral, communal, context-specific), the modern Indian state has inadvertently contributed to the cultural erosion of its tribal populations.

To move forward, a dual approach is needed. First, policymakers, scholars, and tribal leaders must collaborate to revitalize indigenous educational spaces in a way that aligns with contemporary realities while preserving their cultural core. Second, academic institutions and researchers must adopt inclusive frameworks—like the "Six Rs" of Indigenous Research—that prioritize respect, reciprocity, and relevance.

Comparative history is not only a method but a means of justice. By placing dormitories and Gurukuls side by side, we see not only two systems of youth development but two visions of society: one collective, grounded in land and ritual; the other spiritual, shaped by hierarchy and detachment. Reclaiming and adapting these traditions—especially those at risk of vanishing—

offers a way to reconnect with India’s plural heritage and build more context-sensitive models of education, identity, and community.

Conclusion

Policymakers, tribal leaders, anthropologists, sociologists, and NGOs can work collaboratively to integrate the teachings of tribal youth dormitories into modern educational curricula, especially in tribal areas. Emphasizing the importance of contextuality in education is crucial, as highlighted in various research works. Understanding the unique needs of tribal communities—such as their survival essentials and work opportunities—is vital for incorporating both economic sustainability and the preservation of tribal heritage into educational frameworks. Tribal youth dormitories serve as significant platforms for teaching essential life skills, particularly those aspects of sex education that are often overlooked in mainstream educational settings. Additionally, these dormitories foster a sense of community, social solidarity, collective work culture, and real-life decision-making skills necessary for navigating unforeseen life challenges. It is essential to revitalize and transform these dormitories to meet the contemporary needs of tribal societies while preserving their cultural roots rather than eliminating them from tribal lands. Indigenous research often presents challenges such as biases and culture shock for researchers. To address this, the "Six Rs" guiding principles have been developed to enhance understanding of tribal societies, cultures, and heritage while striving for objectivity. These principles form a conceptual framework for studying Indigenous communities and include six key points aimed at facilitating a more authentic and respectful research process. These are as follows:

Respect – This emphasizes the importance of respect for the feelings, rights, and traditions of others, particularly Indigenous communities. It highlights the need to honour their knowledge and cultural integrity while recognizing their connection to the Earth. Researchers should fulfil their obligations to both the community and the environment by building respectful, long-term relationships.

Relationship – Relationships in Indigenous contexts are rooted in identity, kinship, and accountability to land and community. Indigenous knowledge is relational, and all beings possess knowledge. Researchers must be honest about their motivations and accountable for their relationships.

Relevance - Relevance in research for Indigenous communities' means being connected to their education and worldviews. This highlights several key points regarding research involving Indigenous peoples. It emphasizes the importance of recognizing the relevance of the research to Indigenous communities and advocates for the use of Indigenous Research Methods (IRMs), such as storytelling. Additionally, it underscores the necessity of acknowledging historical and social contexts that impact the research. Applying IRMs in line with the inquiry question is essential, as is following Indigenous ethics and protocols to ensure that the research is meaningful and beneficial to the communities involved.

Reciprocity—Reciprocity is an ongoing exchange in which individuals offer to others as they receive. It involves practices that foster relationships in research, allowing equal negotiation and connection. In these relationships, resources are seen as gifts.

Responsibility - The text highlights responsibility as accountability for Indigenous communities' narratives and relationships with the Earth. It stresses mutual responsibility between Indigenous and non-Indigenous communities and the importance of questioning how to use our gifts responsibly. It connects gratitude with reciprocity and identifies responsibility as part of ethical research practices, involving communities, researchers, and institutions in fostering respectful and sound relationships.

Representation - The text highlights the importance of representation for Indigenous communities in research, empowering their voices and ensuring meaningful participation. It stresses the need for researchers to recognize the effects of colonization and to adopt a strengths-based approach rather than a deficit-oriented one. Incorporating Indigenous Research Methods (IRMs) promotes social justice and fosters relationship building, making the research more relevant to the community.

Utilizing sociological imagination allows us to gain deeper insights into the intricate relationship between individual experiences and broader social forces. This understanding can guide us in developing solutions that not only honour and maintain the cultural heritage of tribal communities but also tackle modern-day challenges effectively. By linking sociological imagination to the decline of tribal youth dormitories, we can explore how overarching

social, economic, and cultural dynamics influence these vital institutions and the lives of those they serve. This perspective opens up opportunities for creating supportive environments that foster growth and resilience among tribal youth.

References

Bodo, M. (n.d.). Life skill education and youth dormitory of Dimasas: An overview.

Borthakur, P. (2022, April–June). Study of dormitories as a social institution among tribal people in Northeast India. Research Journal of English Language and Literature (RJELAL), 10(2), 80–83. https://doi.org/10.33329/rjelal.10.2.80

Daimai, K. (2023). Khangchiu: The youth dormitory of Liangmai Naga. International Journal of Anthropology and Ethnology, 7(1), 1.

Elwin, V. (1943). The Aboriginals. Oxford University Press.

Ghurye, G.S. (1963). The Scheduled Tribes. Popular Book Depot.

Hasnain, N. (n.d.). Tribal India. Palaka Prakashan.

Hau, K. P., & Prasad, D. (2024). Shrinking communal living space: An ethnographic study of Rehangki of Zeme in Northeast India. Indian Journal of Anthropological Research, 3(1), 27–43.

Jose, K. (2015). Book review: Denotified tribes: Retrospect and prospect.

Kumar, A. (2020). Denotified tribes in India: A sociological study.

Lalchhanhima. (2020). A study of youth dormitories in Northeast India. Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences, VI(1), 95–104.

Mann, K. (1989). Girls' dormitory and status of women in Northeast India. Indian Anthropologist, 19(1/2), 65–75.

Kumari, M. (2017). Historical and cultural significance of tribal youth dormitories in India. International Journal of Science and Research (IJSR), 6(10), 2173–2176.

Nair, P. T. (1965). Youth dormitories of NEFA, India. Ethnos, 30(1), 57–78.

Panda, H. (2020). Good practices in tribal education: A field study.

Patar, R. (n.d.). The youth dormitory system among the Tiwa: Continuity and changes.

Roy, S. (2006). Tribal youth dormitory: A hiatus or heuristic? Studies of Tribes and Tribals, 4(1), 19–30.

Runge, J. (2022). From a dormitory town to a large industrial centre. In Post-Utopian Spaces: Transforming and Re-Evaluating Urban Icons of Socialist Modernism.

Tsosie, R. L., Grant, A. D., Harrington, J., Wu, K., Thomas, A., Chase, S., Barnett, D., Hill, S. B., Belcourt, A., Brown, B., & Plenty Sweetgrass-She Kills, R. (2022). The six Rs of Indigenous research. Tribal College Journal of American Indian Higher Education, 33(4). https://par.nsf.gov/biblio/10344854

Vidyarthi, L. P., & Rai, B. K. (1977). The tribal culture of India. Concept Publishing Company.

Kalpana Singh
Senior Research Fellow
Department of Sociology
Dayanand Brajendra Swarup P.G. College, KANPUR

❑ ❑ ❑

Implementing Art-integrated Learning through Visual Arts

Susmita Lakhyani • Shivam Luthra

India is a nation with a rich past that can be witnessed throughout its history. The nation has developed immensely since ancient times, when the lives of individuals were significantly engaged in manual tasks, including embroidery, craftwork, pottery, rangoli, weaving, etc. Consequently, individuals were practising one or another form of art in their everyday lives, making art a significant part of their daily lives. However, scientific development soon led to the withdrawal of this, with machines replacing manual work. This eventually led to the decline in the status of art to a mere leisure activity, which was earlier regarded as vital for life. The same is evident in the modern world, where individuals feel uncomfortable while taking part in different forms of art. Furthermore, this impacts the effective implementation of art-integrated learning in the classroom, a trademark of the National Education Policy 2020, as educators hesitate to use it as a tool while teaching their discipline. As a result, educators keep themselves deprived of an effective teaching style, obstructing their ability to facilitate learning. This study is an attempt to extract some insights from ancient Indian methodologies, specifically visual arts and how their implementation can enhance learning across disciplines.

Keywords : *Art-integrated Learning, Chausath Kalas, Learners, NEP 2020, Visual Arts*

Introduction

When we talk about a country with immensely rich historical past full of cultures, civilisation, languages, art, the one name that holds immense significance is India, the country that witnessed ancient civilisation such as Harappan; the country that has some

of the ancient most languages ever use in the world like Sanskrit and Tamil; the country that has one of the foremost residential universities of the world, i.e. Nalanda University; the country with the one of the most prominent and ancient medicine system, i.e. Ayurveda; the country that invented one of the most prominent everyday health practice, i.e. Yoga. What made all these remarkable was their contribution to the everyday lives of people, with Sanskrit and Tamil being languages, Yoga being a regular health activity, and Ayurveda being a knowledge system to cure illness. One such practice that was a part of the everyday lives of human beings was art, an activity essentially involved throughout their lives.

Art in Ancient India

Art has played a vital role in Indian culture and education since ancient times. People in India have always been raised with a deep appreciation for various artistic expressions (Pathak, 2023). The everyday lives of individuals in ancient India were full of practices such as folk music, dance, rangoli, storytelling, etc. This not only included special days in their lives, such as festivals and various rituals associated with them, but also the activities that were a part of their everyday life, household rituals, along with other rituals that were being performed on a regular basis, such as harvesting, grinding of spices, etc. Ganguly (1979) mentions that ancient Indian fine arts were as many as sixty-four in number. These arts, popularly known as Chausath Kalas were inseparable from ancient India. Garg (2021) identifies that the mention of these sixty-four art is found in the thirtieth chapter of the Yajurveda. These different arts involves everyday practices such as Vyayama Vidya or physical culture, Purusalaksana or determining the nature of a person, Patracchedya or decoration, etc. As a result, art and art activities were embedded in the lives of individuals in such a way that every individual was doing one or another form of art, where the artistic expressions were not valuably limited to professionals and thus every individual was considered an artist, irrespective of the art form including craftwork, sculpture, or painting he/she was engaged in. As Coomaraswamy (1935) mentions, the artist is not a special kind of man, but every man is a special kind of artist. The same was evident in education, which used to focus on hands-on learning lessons involving the arts along with other disciplines such as philosophy and sciences

to ensure all-around holistic development of individuals. As the National Education Policy (NEP), 2020 mentions, the arts, besides strengthening cultural identity, awareness, and uplifting societies, are well known to enhance cognitive and creative abilities in individuals and increase individual happiness. (p. 53)

Alienation from Art

With the transition in time, there also occurred a transition in education, and the same took place with art education. With the advent of the Britishers, there was a gain in power and in due course leading to the impact that they had on the traditional education system of India. One of the most exceptional impacts was the emphasis that they had was the enhanced emphasis on a rigid, non-creative scientific knowledge that used to be assessed through strict examination practices, where art was not even considered worthy enough to be a part of the regular school curriculum and was labeled as an extracurricular activity, ignoring its essentiality in the process of learning. Furthermore, their arrival in India also set in motion the arrival of industry and machine-based technology in India, overshadowing and overpowering Indian handicrafts, resulting in the reduction of demand, frequency, and ultimately the value attached to all the artistic handicrafts. Slowly, while art started getting distant from the everyday life chore of individuals, it gained popularity in the lives of elites as a medium to showcase their royalty. As a result, the very art that was once a considerable part of individuals' everyday life events turned out to be a leisure activity for lower or middle-class people and, in terms of collection, a way of showcasing elitism among the upper class.

Challenges in Art-Integrated Learning

The contribution of Nobel Laureate Rabindranath Tagore pioneered the idea of a relationship between arts and learning (Prince, 2020). However, with art losing its original significance due to which it was relevant to the life of people, the hesitation or stereotypes with respect to the implementation of art-integrated learning are often evident among teachers. While they not only lack in having formal training in art, they have only experienced it as a mere leisure activity, coming out to be only an unnecessary burden to them, highlighting their unpreparedness for implementing

art-integrated learning as a formal and effective way of teaching. Consequently, they lack the essential skills and strategies required for the effective implementation of art-integrated learning. This paper is an attempt to develop some of the required skills and strategies among them for the successful implementation of art-integrated learning.

Implementing Art-Integrated Learning

Art-integrated learning is regarded as a dynamic method for facilitating learners' development in different curriculum areas, which fosters comprehensive and diverse learning experiences for learners by allowing them to interact with various concepts throughout the curriculum (Lakhyani & Luthra, 2025). This approach integrates art with other subjects as a two-way process. This is done by integrating art with social sciences, languages, sciences, and mathematics in the form of content, where information on the art forms is provided to the learners; and also in the form of activities, projects, exercises, etc. As a part of the thrust on experiential learning, art-integrated education will be embedded in classroom transactions not only for creating joyful classrooms, but also for imbibing the Indian ethos through integration of Indian art and culture in the teaching and learning process at every level (NEP, 2020. p. 12). In art-integrated learning, the process is more important than the product. It is about learning by doing; there is flexibility in the approach. Not every learner learns in the same way; it is a pedagogy where the same concept can be taught in different ways. A learner gets an opportunity to exhibit his or her understanding of a particular concept or what the teacher is teaching. Here, what the student understands becomes more important than what the teacher is teaching. It makes the content interesting to understand and paves the way to move away from rote learning. It makes experiential learning possible as it helps the learner derive the meaning and understand the concept through one's own experience involving his or her own perception, observation, analysis, interpretation, exploration, or experimentation. It makes the concept or the experience more tangible and concrete, develops the value of non-verbal understanding, and allows socio-emotional learning to take place. This type of learning can focus more on socio-emotional, Cultural, mental health, etc., rather than focusing on conventional subjects only. It can be used to create

inclusive classrooms also (Gopinath, 2023). If a group activity is planned, then it goes on to develop leadership qualities, the ability to unite the group, team spirit, delegation skills, and the skills of resolving conflict.

Using Visual Arts

To begin with, there are two simple yet effective ways to initiate the process of implementing art-integrated learning using the Visual arts. While one is to engage learners in the formation of visual art, the other is the utilisation of a readily available, notably large database of visual arts to generate experiences in the lives of the learners. Let us first discuss the latter one. India has a vast history of visual arts that can be witnessed in the diverse sculptures, paintings and folk arts such as Madhubani, Pattachitra, Warli, Cave Paintings. Their incorporation in various school disciplines cannot only make learners delve into the rich historical past of India but also ensure the development of such experiences that make education holistic. For instance, historical paintings and wall paintings cannot only make learners aware of the history to appreciate the cultural heritage of India but also get them acquainted with the rich knowledge of mathematical patterns and astronomical sciences that were prominent in India. This, furthermore, adds on to their creative thinking along with long term retention of diverse concepts associated with these visual arts. The same can be done by studying various symmetrical patterns conspicuous in rangoli art, along with innumerable carvings in temples and palaces of India. Similarly, all these visual representations are remarkable in engaging learners in a dialogue where they sharpen their verbal as well as non-verbal language skills. For instance, a discussion can take place about the lives and cultures of the people who used to live in caves through the visual representations that they made on the cave walls. These discussions can further engage them in understanding the process through which early human beings used to gather colours and use them in the paintings. This can be further used to develop a sense of sustainability among the learners with respect to the environment.

Let us now discuss some famous visual arts of India. Initially, let us take one of the most prominent examples of paintings, which are indeed an amalgamation of different forms of art, combining visual arts with performing arts of music and poetry, i.e. Ragamala

Paintings, a kind of painting where one can evidently witness colours meeting diverse sounds. Notably flourished majorly during the medieval times, these paintings can happen to be a really effective tool to teach diverse educational concepts. This is because these paintings try to depict musical ragas through visual representations where ragas stand for the musical notes based on various times and moods of the day. While these paintings can be used to invoke different emotions among learners along with the development of respect towards the rich heritage of India, they can be effectively used to make learners understand how different concepts can be incorporated together in real-life scenarios. This can further enhance their 21st-century skills, such as problem-solving, creativity, innovation, etc. Furthermore, the same set of paintings can be used to develop language skills among the learners by incorporating diverse activities such as asking learners to write down their perception of the painting; try to depict the thought process involved in the development of these paintings, to compose poetry inspired or influenced by the painting, etc.

Teaching Various Disciplines through Art

Visual arts are also a source of developing social skills among the learners, such that these will not only enhance their skills in social sciences but will also develop their understanding of the real outside world. One such example is a painting by ‘Amrita Sher-Gil’ titled ‘Haldi Grinders’, where Sher-Gil (1940), shows different women have been shown as engaged in the task of grinding turmeric, a spice that is often associated with various rituals that are auspicious in nature because of the benefits attached to the use of turmeric. At a deeper level, one can observe that the different women who are engaged in the process of grinding haldi are wearing sarees, some colourful and some plain white. While a colourful saree depicts that the woman is married, the plain white or colourless saree shows that she is a widow. Notably, the participation of a widow woman on auspicious occasions is not considered as a good omen and is therefore prohibited. This very painting by Amrita Sher-Gil highlights this social issue where she shows a widow woman participating in the process of grinding turmeric along with fellow married women. Such paintings can be seen as immensely effective in discussing various social ills, taboos or challenges prevalent in society.

Figure 1 : Haldi Grinders by Amrita Sher-Gil

Yet another visual art that can be discussed is a painting by T. Murali (2019), titled Nangeli which is published in the book 'Amana - The hidden pictures of history'. The painting showcases the devastating pain of breast tax, an event of tax that goes back to the 19th century, a time when the British mainly controlled India. In travancore one of the most discriminatory practices one can ever hear of was introduced i.e. a practice where lower caste women were not allowed to cover their breasts and in case of doing so, they had to pay a hefty tax. The painting depicts the story of Nangeli, a lower caste woman who denied paying the tax for covering her breasts and eventually cut off her breasts instead of paying the tax. The painting by Murali is an attempt to glorify the act of Nangeli as an act of valour and sacrifice. Such paintings can transpire to be crucial for developing a sense of equality and respect towards others, and therefore, for ending the social evils such as the caste system prevalent in India.

Figure 2 Nangeli by T. Murali

Disciplines of the sciences can also be taught effectively using the Visual arts. For instance, think of showing learners a visual presentation of a kite flying; a set of paintings where different stages of kite flying will be shown, or asking learners to visually represent a flying kite by drawing. This can be proved to be an effective way to teach learners the geometrical aspects involved in the formation of a kite, including measurements, dimensions, ratio of sides, etc. Furthermore, it will help them understand the concept of aerodynamics, a concept noteworthy in physics and essential to learn the requirements of flying kites, where a kite being heavier than the air requires the force of wind to fly. This will also help them to eventually understand other objects that work on the concept of aerodynamics such as an aeroplane. Similarly, visual art can be an effective tool to teach biology to learners in a way that comes close to reality. For instance, a painting with the title

‘Autobiography of an Insect in the Lotus Pond’ by Ramachandran, where Ramachandran (2000) creatively integrates different stages of life with that of his living reality, represented in the forms of egg, larva, pupa and adult butterfly. The painting reflects that, similar to the stages of development of a butterfly, the life of human beings is also equipped with innumerable different experiences posing different challenges.

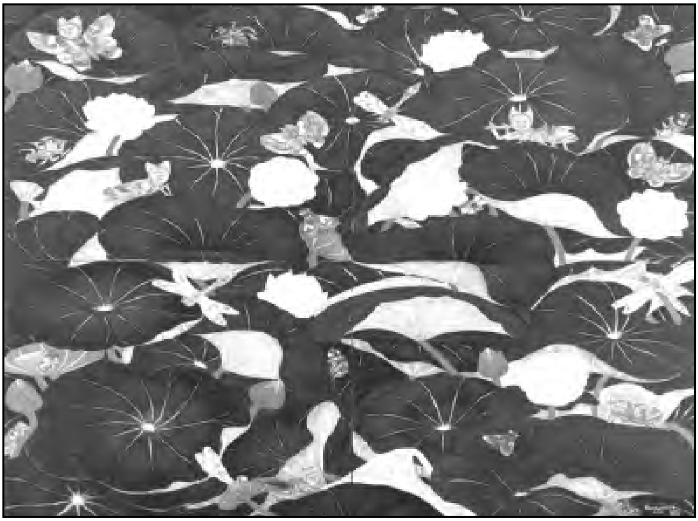

Figure 3 Autobiography Of An Insect In The Lotus Pond by A. Ramachandran

Implementation of Art-integrated Learning

Something that is more relevant than strategically giving instruction while using art-integrated learning is to keep in mind the individuality of learners. This involves their motivation level, the appreciation that they get for their participation, positive reinforcement, etc. From the teachers’ front, it is essential to provide learners a non-judgmental, non-competitive and collaborative environment where they refrain from comparing themselves with each other while developing a fearless attitude in terms of expressing themselves. Furthermore, one crucial aspect of art-integrated learning is assessment, where assessment must not occur on the basis of parameters of art, i.e. principles and elements of art. Instead NCERT (2023) in its guidelines states, it should be ‘assessment for learning’

where the teacher focuses on the level of knowledge learners already have (and accordingly plan further); and the intensity with which learners participate in the process as art-integrated learning is about teaching a different subject using art and not art itself. Moreover, it is necessary to make art a significant aspect of everyday school life, which can be done by using art on different occasions such as 'mask making' during Dusshehra, 'diya painting' during Diwali, 'kite making' during Independence Day, greeting cards or display board decoration on different day to day events in school etc. This way, art will become an inseparable part of the lives of learners, making them value it and live with a stand-alone spirit.

Conclusion

Once a hub of art, India witnessed a steep decline in the number of people participating in different art forms on their daily life basis because of increased emphasis on scientific innovations. Nonetheless, art, in contrast to the perception of being just a leisure activity, has the potential to get integrated among diverse learning environments, making learning effective. It not only fosters critical thinking and creativity but also creates opportunities for the learners to connect with their cultural heritage. Art-integrated Learning, being a dynamic and holistic approach, provides learners an experience that resonates on multiple levels, encouraging understanding of diverse subjects such as science, mathematics, social science and language at deeper levels while promoting social awareness and personal expression. Art-integrated Learning, as it provides a non-judgmental, collaborative environment along with holistic assessment strategies, ensures the development of learners as individuals as well as collective beings of contemporary India, where they develop a stand-alone spirit through art.

References:

Coomaraswamy, A. (1935). Understanding the Art of India. Blackfriars, 16(181), 247–252. doi:10.1111/j.1741-2005.1935.tb05757.x

Ganguly, A. B. (1979). Fine arts in ancient India. Abhinav Publications.

Garg, R. (2021). Education of art in ancient India. Contemporary Social Sciences, 30(2), 77-82.

Gopinath, S. (2023). Art integrated learning pedagogy in a constructivist classroom. Journal of Education, 11(2). 46-51.

Lakhyani, S., & Luthra, S. (2025). Exploring Integration among Different Art Forms: An Essential for Art-Integrated Learning. National Journal of Education. 23, 401-409.

Murali, T. (2019). Nangeli [Painting]. In Amana: Charithrathilillatha Chithrangal (2nd ed.), . AmanaBooks.

NCERT. (2023). Art Integrated Learning: Guidelines for Secondary stage. New Delhi: National Council of Educational Research and Training.

NEP (2020). Policy document released by the Government of India. Retrieved from

https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English.pd

on 10 May 2021; 22.20 hrs.

Pathak, H. (2023). Arts integrated learning (Ail): An emerging Approach for fostering holistic development in School students. International Education & Research Journal. 9 (9), 05-08.

Prince, C. P. (2020). Practical Implication of Art Integration in a CBSE School: A Qualitative Study. Pearl, 6(1), 55-77.

Ramachandran, A. (2000). Autobiography of an Insect in the Lotus Pond [Painting]. Oil on canvas, 112.25 x 106 inches (285 x 269 cm). Auctioned in Evening Sale: Modern Art on September 16, 2023, by Saffronart, Mumbai. https://www.saffronart.com/auctions/DefaultController.aspx?eid=4675&pt=2&sf=QXJ0aXN0SWQ9MTM5-EX70U3%2FHba4%3D

Sher-Gil, A. (1940). Haldi grinders [Painting]. National Gallery of Modern Art, New Delhi. https://artsandculture.google.com/asset/haldi-grinders-amrita-sher-gil/4gEWMfC1UAEwuQ

Susmita Lakhyani
Professor
Department of Education
University of Delhi
susmitalakhyani@gmail.com

Shivam Luthra
Lecturer
Directorate of Education
Govt. of NCT of Delhi
shivamluthra10021995@gmail.com

❑ ❑ ❑

Basic Elements of Principles of Natural Justice

Bidhan Chandra Patra • Dr. K.B. Asthana

Principles of natural justice are those rules which have been laid down by the Courts as being the minimum protection of the rights of the individual against the arbitrary procedure that may be adopted by a judicial, quasi judicial and administrative authority while making an order affecting those rights. These rules are intended to prevent such authority from doing injustice.[1]

In this article the basic elements of principles of natural justice will be discussed.

Key Words and expressions : *Natural justice, audi alteram partem, nemo judex in causa sua, tribunal, administrative, proceedings, quasi-judicial, appeal, review.*

Introduction :

The principle of natural justice has been applied from more than thousand years and over the period the term has expanded and presently the term denotes, basic principles relating to judicial, quasi judicial and administrative decisions. According to Justice Krishna Iyer, principle of natural justice is the 'Bone of healthy government administration'. The concept has gained significance and shades with time. When the historic document was made at Runnymede in 1215, the first statutory recognition of this principle found its way into the "Magna Carta". The classic exposition of Sir Edward Coke of natural justice requires to "vacate interrogate and adjudicate". In the celebrated case of **Cooper v. Wandsworth Board of Works**[2], the principle was thus stated:

Even God did not pass a sentence upon Adam, before he was called upon to make his defence. "Adam" says God, "where art

thou has thou not eaten of the tree whereof I commanded thee that though should not eat".

Since then the principle has been chiselled, honed and refined, enriching its content. Judicial treatment has added light and luminosity to the concept, like polishing of a diamond.

The Supreme Court of India have made substantial contribution to the development of the jurisprudence of natural justice. The Art. 14 of the Constitution of India gives a citizen right of equality before the law and the court has expounded this right within the ambit of natural justice. The Art. 21 of its Constitution gives right to an individual that he shall not be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law. This provision compares with the 'due process of law' as in the Constitution of the United States of America.[3]

Definition:

The principles of natural justice are not defined in any statute, yet, they are accepted and enforced.

Principles of natural justice are those rules which have been laid down by the Courts as being the minimum protection of the rights of the individual against the arbitrary procedure that may be adopted by a judicial, quasi judicial and administrative authority while making an order affecting those rights. These rules are intended to prevent such authority from doing injustice.[4]

It is well established that rules of natural justice are not rigid rules, they are flexible and their application depends upon the setting and the back-ground of statutory provision, nature of the right which may be effected and the consequences which may entail, its application depends upon the facts and circumstances of each case.[5]

They find express mention in Art. 311 of Constitution of India. They have been implied in Arts. 14, 19 & 21 as essential part of procedural fairness against the states action.

Basic elements of the principles of natural justice:

The expression "principle of natural justice" has its roots in two Latin maxims: "Audi alteram partem" and "nemo judex in causa sua". The first one translated into English means that a person

who has been charged, must be heard before any decision is taken and the second maxim means that a person will not judge a matter in which he is interested.

According the Lord Halrdene in case of **Ridge v. Baldwin,** natural justice possesses the following three features:-

(i) the right to be heard by an unbiased tribunal,

(ii) the right to have notice of charge of misconduct, and

(iii) the right to be heard in answer to those charges.[6]

In practical terms, the essential principles of natural justice are the following:

All decisions passed by the disciplinary committee should follow the principles of natural justice:

(i) Nemo debetesse judex in propria causa (No man should be judge in his own case) – A man cannot judge his relatives or any person related to him in legal and he cannot be a judge in a case in which he is involved.

(ii) Audi altrem partem (Everyone should be given a right to be heard) – No decision can be taken without hearing both sides, decision must not be given by just hearing one side in the case according to Natural Justice.

(iii) Findings should be based on evidence and reason.

(i) Nemo debetesse judex in propria causa (Rule of Bias)

The principle that no one can be a judge in his own case is also known as the rule of bias. In essence, it implies that an interested party shall not play a role in decision making. General rule that Inquiry Officer should not be a witness in the proceedings is a corollary of this rule. In this connection, it is interesting to note the following observation of Justice Das in **State of Uttar Pradesh v. Mohammad Nooh:**

......the spectacle of a judge hopping on and off the bench to act first as judge, then as witness, then as judge again to determine whether he should believe himself in preference to another witness, is startling to say the least.

(ii) Audi Alteram Partem (Right to be heard)

The audi alteram partem rule ensures that no one should be

condemned unheard. It is the first principle of civilised jurisprudence that a person against whom any action is sought to be taken, or whose right or interest is being affected, should be given a reasonable opportunity to defend himself. Hearing means a 'fair hearing'.[8]

Audi Alteram Patem, which is basically a protection against arbitrary administrative action, comprises within itself a number of rights. This rule implies that the accused has a right to :

(a) know the charge,

(b) inspect documents,

(c) know the evidence,

(d) cross examine witnesses, and

(e) lead evidence.

The Hon'ble Supreme Court of India in **State Bank of Patiala & Ors. v. S.K. Sharma,** has explained the principle of audi alteram partem as under:

(1) An order passed imposing a punishment on an employee consequent upon a disciplinary/ departmental enquiry in violation of the rules/ regulations/ statutory provisions governing such enquiries should not be set aside automatically. The Court or the Tribunal should enquire whether (a) the provision violated is of a substantive nature or (b) whether it is procedural in character.

(2) A substantive provision has normally to be complied with as explained hereinbefore and the theory of substantial compliance or the test of prejudice would not be applicable in such a case.

(3) In the case of violation of a procedural provision, the position is this: procedural provisions are generally meant for affording a reasonable and adequate opportunity to the delinquent officer/ employee. They are, generally speaking, conceived in his interest. Violation of any and every procedural provision cannot be said to automatically vitiate the enquiry held or order passed. Except cases falling under 'no notice', 'no opportunity' and 'no hearing' categories, the complaint of violation of procedural provision should be examined from the point of view of prejudice, viz., whether such violation

has prejudiced the delinquent officer/ employee in defending himself properly and effectively. If it is found that he has been so prejudiced, appropriate orders have to be made to repair and remedy the prejudicate, including setting aside the enquiry and/ or the order of punishment. If no prejudice is established to have resulted therefrom, it is obvious, no interference is called for. In this connection, it may be remembered that there may be certain procedural provisions which are of a fundamental character, whose violation is by itself proof of prejudice. The Court may not insist on proof of prejudice in such cases. As explained in the body of the judgment, take a case where there is a provision expressly providing that after the evidence of the employer/ government is over, the employee shall be given an opportunity to lead defence in his evidence, and in a given case, the enquiry officer does not give that opportunity inspite of the delinquent officer/ employee asking for it. The prejudice is self evident. No proof of prejudice as such need be called for in such a case. To repeat, the test is one of prejudice, i.e., whether the person has received a fair hearing considering all things. Now, this very aspect can also be looked at from the point of view of directory and mandatory provisions, if one is so inclined. The principle stated under (4) hereinbelow is only another way of looking at the same aspect as is dealt with herein and not a different or distinct principle.

(4) (a) In the case of a procedural provision which is not of a mandatory characters the complaint of violation has to be examined from the standpoint of substantial compliance. Be that as it may, the order passed in violation of such a provision can be set aside only where such violation has occasioned prejudice to the delinquent employee.

(b) In the case of violation of a procedural provision which is of a mandatory character, it has to be ascertained whether the provision is conceived in the interest of the person proceeded against or in public interest. If it is found to be the former, then it must be seen whether the delinquent officer has waived the said requirements either expressly or by his conduct. If he is found to have waived it then the order of punishment cannot be set aside on the ground of said violation. If, on the other

hand, it is found that the delinquent officer/ employee has not waived it or that the provision could not be waived by him, then the Court or Tribunal should make appropriate directions [include the setting aside of the order of punishment], keeping in mind the approach adopted by the Constitution Bench in **B. Karunkar.**[9] The ultimate test is always the same, viz., test of prejudice or the test of fair hearing, as it may be called.

(5) Where the enquiry is not governed by any rules/ regulations/ statutory provisions and the only obligation is to observe the principles of natural justice or, for that matter, wherever such principles are held to be implied by the very nature and impact of the order/ action, the Court or the Tribunal should make a distinction between a total violation of natural justice [rule of audi alteram] and violation of a facet of the said rule, as explained in the body of the judgment. In other words, a distinction must be made between "no opportunity" and "no adequate opportunity", i.e., between "no notice"/ "no hearing"/ "no fair hearing".

(a) In the case of former, the order passed would undoubtedly be invalid [one may call it "void" or a nullity if one chooses to]. In such cases, normally, liberty will be reserved for the Authority to take proceedings afresh according to law, i.e., in accordance with the said rule [audi alteram partem].

(b) But in the latter case, the effect of violation [of a facet of the rule of audi alteram] has to be examined from the standpoint of prejudice; in other words, what the Court or Tribunal has to see is whether in the totality of the circumstances, the delinquent officer/ employee did or did not have a fair hearing and the orders to be made shall depend upon the answer to the said query. [It is made clear that this principle [No.5] does not apply in the case of rule against bias, the test in which behalf are laid down elsewhere.]

(6) While applying the rule of audi alteram partem [the primary principle of natural justice] the Court/ Tribunal/ Authority must always bear in mind the ultimate and overriding objective underlying the said rule, viz., to ensure a fair hearing and to ensure that there is no failure of justice. It is this objective which should guide them in applying the rule to varying situations that arise before them.

(7) There may be situations where the interests of state or public interest may call for a curtailing of the rule of audi alteram partem. In such situations, the Court may have to balance public/ State interest with the requirement of natural justice and arrive at an appropriate decision.[10]

(iii) Findings must be based on evidence

The rule of natural justice is crucial in the legal system. They ensure that decisions are based on evidence and facts, not on biases or personal opinions.[11] The adjudicatory authority should afford reasonable opportunity to the party to present his/ her case. This can be done through writing or orally at the discretion of the authority unless the statute under which the authority is functioning directs otherwise.[12]

The Central Administrative Tribunal- Delhi in **Ravinder Singh v. Govt. of Nct of Delhi And Ors.**[13] , has held as under:

35. As regards the conclusion drawn by the Enquiry Officer, we find that in a departmental enquiry, as held by the Apex Court in **Union of India v. H.C. Goel**[14], as well as in **Nand Kishore v. State of Bihar**[15] and also in **Kuldeep Singh's**[16] (supra), if the conclusion arrived at is based on suspicion and conjectures, the finding is perverse and does not pass the test of a common reasonable prudent man and the same cannot sustain in law and is open to be challenged and set aside in a judicial review. In this manner, this Tribunal is neither re-appreciating the evidence nor substituting its own views but even applying the standard of preponderance of probabilities the conclusion, based of suspicion and 'no evidence', cannot sustain in law. We cannot adjudicate on the quality and quantity of evidence but it is to be established that the evidence adduced in the enquiry must link officer with alleged misconduct and mere statement that an evidence adduced is proof of the charge will not be sufficient as held by the Apex Court in **Sher Bahadur v. Union of India.**[17]

In **Sher Bahadur v. Union of India & Ors.,** the Hon'ble Supreme Court of India held as under:

It may be observed that the expression "sufficiency of evidence" postulates existence of some evidence which links the charged officer with the misconduct alleged against him. Evidence, however, voluminous it may be, which is neither relevant in a broad

sense nor establishes any nexus between the alleged misconduct and the charged officer, is no evidence in law. The mere fact that the enquiry officer has noted in his report, “in view of oral, documentary and circumstantial evidence as adduced in the enquiry”, would not in principle satisfy the rule of sufficiency of evidence.

Conclusion:

It is true that all actions against a party which involve penal or adverse consequences must be in accordance with the principles of natural justice but whether any particular principle of natural justice would be applicable to a particular situation or the question whether there has been any infraction of the application of that principle, has to be judged, in the light of facts and circumstances of each particular case. The basic requirement is that there must be fair play in action and the decision must be arrived at in a just and objective manner with regard to the relevance of the materials and reasons. An enquiry must be conducted in accordance with the principles of natural justice. But those principles are not embodied principles. What principle of natural justice should be applied in a particular case depends on the facts and circumstances of that case. All that the courts have to see is whether the non-observance of any of those principles in a given case is likely to have resulted in deflecting the course of justice.

References:

1. Canara Bank And Ors. v. Shri Debasis Das And Ors. {Appeal (Civil) 7539 of 1999, on 12 March, 2003}.
2. The Court of Common Pleas and Exchequer Chamber (England and Wales) in Cooper v. Wandsworth Board of Works {1963 (143) ER 414}.
3. Natural Justice (Principle and Practice) by N. Kumar (1st Edition), Kanuni Salah Kendra (Regd), 1997, p. 13.
4. Canara Bank And Ors. v. Shri Debasis Das And Ors. {Appeal (Civil) 7539 of 1999, on 12 March, 2003}.
5. Supreme Court of India in R.S. Dass Etc. Etc. v. Union Of 'India & Ors {on 11 December, 1986, 1987 AIR 593, 1987 SCR (1) 527}.
6. House of Lords in Ridge v. Baldwin {(1964) AC 40}.

7. Supreme Court in State of Uttar Pradesh v. Mohammad Nooh {1958 AIR 86, 1958 SCR 595}.
8. Principles of Administrative Law by M.P. Jain & S.N. Jain (Fifth Edition), Wadhwa and Company Nagpur, 2007, p. 271.
9. Supreme Court of India in Managing Director ECIL Hyderabad Etc. ... v. B. Karunakar Etc. Etc. {1993 (4) SCC 727, 1994 AIR SCW 1050}.
10. Supreme Court in State Bank of Patiala & Ors. v. S.K. Sharma (1996 AIR 1669).
11. https://testbook.com/ias-preparation/principles-of-natural-justice
12. https://nios.ac.in/media/documents/SrSec338New/338_Introduction_To_Law_Eng/338_Introduction_To_Law_Eng_L6.pdf
13. Central Administrative Tribunal- Delhi in Ravinder Singh v. Govt. of Nct of Delhi And Ors. {2005 (2) SLJ 134 CAT, on 15 October, 2004}.
14. Supreme Court in Union of India v. H.C. Goel {AIR 1964 (SC) 364}.
15. Supreme Court in Nand Kishore v. State of Bihar (AIR 1978 SC 1277).
16. Supreme Court in Kuldeep Singh v. Commissioner of Police and Ors. {JT 1998 (8) SC 603, 1999 (3) SLJ 111 (SC)}.
17. Supreme Court in Sher Bahadur v. Union of India & Ors. {Appeal (Civil) 5055 of 2002, on 16 August, 2002}.

Co-author

Bidhan Chandra Patra
Research Scholar
email:bcpatracrpf@yahoo.com
M. 7980159039

Dr. K.B. Asthana
Dean, Faculty of Law
email:kbasthana001@gmail.com
M. 9289460910

Maharishi School of Law
Maharishi University of Information Technology
NOIDA, India

❑ ❑ ❑

Recruitment of Children for Hostile Activities : Analysis of Amendments in Indian Criminal Laws through Criminal Law Amendment Bills, 2023 vis-à-vis various United Nations Guidelines.

Shivanshu Tiwari • Shri K.B. Asthana

1. Introduction

A Bill namely Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023 was introduced in the Lok sabha along with two other Bills i.e., Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita Bill, 2023 and "Bhartiya Sakshya Bill, 2023" on 10th November, 2023. The Department-related Parliamentary Standing Committee on Home Affairs had evaluated and submitted its recommendations on the Bharatiya Nyaya Sanhita, the Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita and the Bharatiya Sakshya Adhiniyam, on 10.11.2023, vide Report No. 246th, 247th and 248th respectively.

The recommendations of the Committee were considered by the Government and revised Bills namely The Bharatiya Nyaya (Second) Sanhita Bill, 2023, "The Bhartiya Nagrik Suraksha (Second) Sanhita Bill, 2023" and The Bhartiya Sakshya (Second) Bill, 2023" were again introduced in Lok Sabha on 19th December, 2023. The Bills were passed in the Lok Sabha on 20th December, 2023 and subsequently in the Rajya Sabha on 21st December, 2023 with the full majority. Finally, these Bills had received assent of the Hon'ble President of India on 25th December, 2023 and were published in the official gazette (Extraordinary) on the same day.

2. Important Provisions of Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023

In the context of subject issue, few inclusions have been made in the Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023 (herein after called as "BNS, 2023"), that too provisions under Section 2(3), 113 and 95 OF "BNS, 2023" are noteworthy to understand the new legal frame work on this issue.

1. Section 2 (3) of The BNS, 2023: Introduced the definition of "Child"
2. Section 95 of The BNS, 2023: Introduced an offence of hiring, employing or engaging a child to commit an offence and,
3. Section 113 of The BNS, 2023: Introduced the definition of "Terrorist Act".

3. Convention on the Rights of the Child (CRC)

The Convention on the Rights of the Child (CRC) was approved by the General Assembly of the United Nations on 20 November 1989. The Convention was formally opened for ratification on 26 January,1990 the Government of India ratified the CRC on 11 December, 1992. It, however, has signed the Convention, thereby indicating general support for its principles and an intention not to take actions that would actively undermine those principles. The CRC is the most complete statement of child rights ever made. It takes the ten principles of the 1959 Declaration of the Rights of the Child, and expands them to 54 articles, of which 41 relate specifically to the rights of children, covering almost every aspect of a child's life.

Declaration of **"Convention on the Rights of the Child"** discusses that;

> *"the child, by reason of his physical and mental immaturity, needs special safeguards and care, including appropriate legal protection, before as well as after birth"*
>
> *CRC also emphasizes "to take all necessary measures to protect children from any form of injury, physical and mental violence or abuse, neglect, maltreatment or exploitation and prohibition recruitment of children under 15 years of age in Armed Forces [Article 19 and 38 (2) of the Convention].*

4. Other Important Conventions and Protocols

Guidelines issued by the following Conventions and Protocols are also very useful to understand the international concern and global efforts to curtail the rising trend of recruitment of Children by terrorist groups.

(i) The Paris Principles recommends to take all out efforts to protect the children, who are associated with Armed Forces or armed Groups. These guidelines were formulated in year 2007 by the Unicef. According, to the definition given in Paris Principles, 'child soldiers' means active combatants, who take part in direct hostilities; including "any person below 18 years of age who is or who has been recruited or used by an armed force or armed group in any capacity, including but not limited to children, boys and girls, used as fighters, cooks, porters, messengers, spies or for sexual purposes."

(ii) Enlisting children under the age of 15 in Armed Forces or in hostilities has been declared as 'war crime' by The Rome Statute of the International Criminal Court (ICC).

(iii) In 87th Session General Conference of the International Labour Organization, at Geneva on 1 June 1999 [Worst Forms of Child Labour Convention (ILO Convention)] it was established that the worst forms of the child labour comprises, "slavery and practices similar to slavery, including forced or compulsory recruitment of children for use in Armed Conflict [article 3(a)] and the use, procuring or offering of a child for illicit activities, in particular for the production and trafficking of drugs as defined in the relevant international treaties; [article 3(c)].

(iv) Protocol to prevent, suppress and punish trafficking in persons, especially Women and Children, supplementing the United Nations Convention against Transnational Organized Crime has been adopted by the United Nations General Assembly, on 15 November 2000, vide its resolution no. 55/25. The Protocol also established the first common international definition of "trafficking in persons"to Prevent, Suppress and Punish Trafficking in Persons, Especially Women and Children, supplementing the United Nations Convention against Transnational Organized Crime.

(v) A resolution on Universal Legal Framework against Terrorism, Resolution, 1373 (2001) has been adopted by the Security Council on 28 September 2001. On 01 July 2016 a review on the Global Counter-Terrorism Strategy was carried out by the Council, whereby, the United Nations General Assembly strongly condemned-

"the systematic recruitment and use of children in terrorist attacks, as well as the violations and abuses committed by terrorist Groups against children, including killing and maiming, abduction and rape and other forms of sexual violence. It was noted that such violations and abuses may amount to war crimes or crimes against humanity, and called upon all Member States, in accordance with their obligations under international law, to cooperate in efforts to address the threat, including preventing the radicalization to terrorism and recruitment of foreign terrorist fighters, including children. Assembly encouraged all Member States to develop effective strategies to deal with returnees, in accordance with relevant international obligations and national law;

(vi) Resolution adopted by the General Assembly 69/194 on 18 December 2014 [on the Report of the Third Committee (A/69/489)]:United Nations Model Strategies and Practical Measures on the Elimination of Violence against Children in the Field of Crime Prevention and Criminal Justice.

General Assembly discussed upon the many forms of violence of serious nature against children. Also, recommended to criminalize slavery or practices similar to slavery, debt bondage and forced labour including forced deployment of children in armed conflicts. General Assembly also convinced on the fact that violence against children is never justifiable and that it is the duty of States to protect children, from violations of human rights, violence against children and to exercise due diligence to prohibit, prevent and investigate acts of violence against children, eliminate impunity and provide assistance to the victims, including prevention of re-victimization.

Assembly acknowledged the value of the joint report of the Office of the United Nations High Commissioner for Human Rights, the United Nations Office on Drugs and Crime and the Special Representative of the Secretary-General on Violence against Children on prevention of and responses to violence

against children within the juvenile justice system, Emphasizing that children, by reason of their physical and mental development, face particular vulnerabilities and need special safeguards and care, including appropriate legal protection. Assembly also emphasized upon the complementary roles of crime prevention, the criminal justice system, child protection agencies and the health, education and social sectors, as well as civil society, in creating a protective environment.

5. Gaps between amended Criminal Laws in India and United Nations Guidelines

In view of above mentioned United Nations guidelines, it is clear that however, recruitment of Children for hostile activities by the terrorist groups is in violation of existing international humanitarian law but even then this trend is rampant in many countries infested with terrorist activities. United Nations Convections and Protocols profoundly formulated the international guidelines to prevent the recruitment of Children as soldiers, cooks, porters, messengers, spies or for sexual purposes, in such hostile scenarios but the insufficient implementation of United Nations guidelines by the countries is the main reason for not yielding the desired results.

Whereas, the International Criminal Court referred the offence i.e., recruiting children by the extremist groups as a war crime. In the case titled "The Prosecutor v. Thomas Lubanga Dyilo" on 14 March 2012, the respondent was found guilty of the war crimes of enlisting and conscripting of children under the age of 15 years in hostilities. The respondent was sentenced to a total of 14 years of imprisonment. Mr Luis Moreno Ocampo, who worked as prosecutor in ICC in the mentioned case, on May, 2010 at Rome Statue Review conference in Kampala, had stated that,

"regardless of any final decision in the Lubanga case, Militias in Nepal, a non state party, have released three thousand child soldiers. And, most importantly, in terms of prevention of crimes, Armies all over the world are adjusting their operational standard, training and rules of engagement in accordance to the Rome Statute. This is the way to control violence; the law makes the difference between a soldier and a terrorist.

Moreover, International humanitarian law (IHL) covers wide

aspects of warfare. IHL provides a large range of provisions to protect the victims of war and limiting means and methods of war. Major part of international humanitarian law is contained in the four Geneva Conventions of 1949 and their Additional Protocols of 1977 provide an extensive regime for the protection of persons who do not or no longer participate in armed conflict. The regulation of the means and methods of warfare in treaty law goes back to the 1868 St. Petersburg Declaration, the 1899 and 1907 Hague Conventions and the 1925 Geneva Gas Protocol and has most recently been addressed in the 1972 Biological Weapons Convention, the 1977 Additional Protocols, the 1980 Convention on Certain Conventional Weapons and its five Protocols, the 1993 Chemical Weapons Convention and the 1997 Ottawa Convention banning anti-personnel landmines. The protection of cultural property in the event of armed conflict is regulated in detail in the 1954 Hague Convention and its two Protocols. The 1998 Statute of the International Criminal Court contains a list of war crimes subject to its jurisdiction.

The Statute of the International Criminal Court defines war crimes as, inter alia, "serious violations of the laws and customs applicable in international armed conflict" and "serious violations of the laws and customs applicable in an armed conflict not of an international character."

Furthermore, Rule 136 of IHL provides that children must not be recruited into armed forces or armed groups and Rule 157 speaks that States have the right to vest universal jurisdiction in their national courts over war crimes

In India, after Burhan Wani incident, the terrorist groups had started encouraging the young boys and girls extensively to participate in protests against the Government. Children are being used as frontline protesters in the garb of resistance against the Government machinery.

On evaluating and comparing the Indian Legal framework, new amendments introduced through Bhartiya Nyaya Sanhita Bill, 2023, the provisions of the Juvenile Justice (Care and Protection Of Children) Act, 2015 and various guidelines of United Nations Protocols and Conventions, it is found that Indian legal system is not very stringent against the offence of recruiting children by the terrorist groups for carry out terrorist and other relating activities, including sex slavery.

Section 83 of Juvenile Justice (Care and Protection Of Children) Act, 2015 provides that,

(1) Any non-State, self-styled militant group or outfit declared as such by the Central Government, if recruits or uses any child for any purpose, shall be liable for rigorous imprisonment for a term which may extend to seven years and shall also be liable to fine of five lakh rupees.

(2) Any adult or an adult group uses children for illegal activities either individually or as a gang shall be liable for rigorous imprisonment for a term which may extend to seven years and shall also be liable to fine of five lakh Similarly, section 113 of The BNS, 2023, introduces the definition of "Terrorist Act". Subsection (4) of this section exclusively provides that,

" Whoever organises or causes to be organised any camp or camps for imparting training in terrorist act, or recruits or causes to be recruited any person or persons for commission of a terrorist act, shall be punished with imprisonment for a term which shall not be less than five years but which may extend to imprisonment for life, and shall also be liable to fine".

Hence, the enacted legal frame work and also the amended Criminal Laws, introduced in year 2023 are insufficient to make a deterrent impact on the offenders, involved in recruiting children for terrorist or relating activities in Indian scenario.

6. Conclusion

In view of above discussion it may be deduced that on international forum recruitment of children for terrorist activities has been referred as a very serious offence against the children. Recruiting children for hostile activities hinders fostering a healthy atmosphere for mental and physical development of children. Radicalisation of children for using them in armed hostilities is declared as a heinous crime in various above mentioned United Nations Conventions and Protocols. Since, India has already ratified the United Nations Conventions on the rights of the Children but the effective implementation of laws and policies has not yet been ensured.

For fruitful implementation of United Nations guidelines to protect the children to be used in hostile activities, comparative

studies of United Nations Conventions, judgments of International Criminal Court and legal Schemes in India, dealing with the rights of Children are required to be carried out on massive scale. The gaps as indentified above should be filled by amending and including provisions, as per the recommendations given in the United Nations Conventions and Protocols.

Hence, as recruiting children for hostile activities has been referred as war crime, it is recommended that the punishment awardable under Section 83 of Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 i.e., rigorous imprisonment for a term which may extend to seven years and fine of five lakh rupees and also the punishment awardable under section 113 of the BNS, 2023, i.e., imprisonment not less than five years but which may extend to imprisonment for life, and fine" shall be replaced with the imprisonment not less the life imprisonment and fine, calculated on the basis of mental agony, physical harassment and social damage caused to the child and his family.

Analysis of gaps in the legal frameworks of amended criminal laws in India reveals that the provisions lack child sensitive approach and significant impact on recruitment of children for terrorist activities. it is also inadequate in regard to punitive measures for violation of rights of children. The amendments are silent on the rehabilitation and reintergation of radicalised children and insufficient in addressing issues requiring comprehensive reforma thereof. There shall be child sensitive provisions and guidelines ensuring due process, fair trial and rehabilitation programs for radicalised children. Revisiting the current amendments in view of suggested reforms will provide cutting edge for effective combat against the terrorism, insuring the rights of the children in agreement with the international guidelines.

References:

[1] INTRODUCTION: The United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC) & Indian Legislations, Judgements & Schemes: A Comparative Study by NHRC, 2019

[2] https://www.ohchr.org/en/instruments-mechanisms/instruments/convention-rights-child.

[3] The Paris Principles, United Nations Children's Fund, 2007.

[4] Article 8 (2) (b) (xxvi) and (e) (vii) of Rome Statute of the International Criminal Court: Rome Statute of the International Criminal Court, in forced on 1 July 2002, United Nations, Treaty Series, vol. 2187, No. 38544, Depositary: Secretary-General of the United Nations, http://treaties.un.orgz.

[5] "Facts About Child Soldiers", Human Rights Watch, 17April2015,https://www.hrw.org/news/2008/12/03/facts-about-child-soldiers.

[6] https://www.unodc.org/documents/treaties/Special/2000_Protocol_to_Prevent_2C_Suppress_and_Punish_Trafficking_in_Persons.pdf.

[7] General Assembly resolution 69/194; file:///C:/Users/djag/Downloads/A_RES_69_194-EN.pdf

[8] file:///C:/Users/djag/Downloads/A_RES_70_291-EN.pdf.

[9] Review conference General Debate on 31 May, 2010, https://asp.icccpi.int/iccdocs/asp_docs/RC2010/statements/ICC-RC-Statements-LuisMorenoO campo-ENG.pdf

[10] https://www.icrc.org/en/doc/assets/files/other/what_is_ihl.pdf

[11] https://ihl-databases.icrc.org/en/customary-ihl/v1/rule156 and ICC Statute, Article 8 (cited in Vol.II, Ch.44).

[12] https://ihl-databases.icrc.org/en/customary-ihl/v1/rule136

[13] https://ihl-databases.icrc.org/en/customary-ihl/v1/rule157

[14] The Gazette of India, PART II ,NEW DELHI, FRIDAY, JANUARY 1, 2016/PAUSHA 11, 1937 (SAKA)

[15] The Gazette of India, PART II ,NEW DELHI, FRIDAY, JANUARY 1, 2016/PAUSHA 11, 1937 (SAKA)

Shivanshu Tiwari
Research Scholar
Maharishi School of Law
Maharishi University of
Information Technology
Noida, India
shivsachin82@gmail.com
9774830393

Co-author
Shri K.B. Asthana
kbasthana001@gmail.com
9289460910

❑ ❑ ❑

Significance of Communication as a Tool to Boost Organizational Work Efficiency

• **Dr. Bhawana Bardia**

Communication serves as a vital management instrument that organizations can leverage to cultivate teams and enhance performance. It works alongside management, both being essential for success. While managerial competencies are valuable, the skills related to communication and how effectively a manager engages with their team are equally important. A manager's responsibilities encompass not only overseeing business functions but also orchestrating a team, exhibiting leadership, and crucially, communicating effectively. The goal of this research is to explore the relationship between organizational structure and the effectiveness of communication. The research findings indicated that organizational structure is directly and positively linked to ineffective communication.

Keywords : *Business Communication, Corporate Communication, Management, Organizational Communication*

1. Introduction

Communication is a vital and important factor in an organization, essential for promoting cooperation within the workplace, which influences organizational effectiveness and decision-making. In today's complex landscape, marked by technological progress and globalization, adaptable management structures are essential (Reidhead, 2021). For an organization to thrive within its societal framework, it must start with a well-articulated management strategy. Though communication may appear simple, studies have demonstrated

that it can either reinforce or jeopardize an organization's survival. Thus, a robust communication strategy is vital for a business to thrive. Communication functions as a bridge between decision-makers and all employees. When executed poorly, it can result in interpersonal conflicts within organizations. Individuals' perceptions are heavily shaped by their experiences and backgrounds. People often hold preconceived notions about what others might say, and if these expectations don't align with their own viewpoints, they modify their understanding to accommodate them (Baskin et al., 1997). In today's intricate environment, characterized by technological advancements and globalization, flexible management structures are imperative (Bodie & Crick, 2014).

Heron (1942) pinpointed essential components for effective communication. His work emphasized aims, attitudes, and benchmarks for successful communication. He is credited with highlighting the significance of reciprocal communication between employees and management in the existing literature on organizational communication. In a corporate environment, effective communication is essential for attaining both personal and organizational aims. It promotes the coordination of internal activities and boosts overall performance. Conversely, ineffective communication can obstruct organizational efficiency and effectiveness (Robbins & Judge, 2019).

Internal Communication Procedures within Corporations

Management must prioritize its workforce. Engaging employees in their responsibilities seeks to enhance productivity, especially as effective management depends on collaboration. Involving employees in their tasks aims to boost efficiency, particularly since management relies on teamwork. Management encompasses coordinating activities, establishing goals, organizing objectives, managing budgets, and assessing outcomes, all contributing to the organization's health. Employees, as the labor force, are the first to feel the impacts of these strategies as they perform the necessary functions to achieve goals (Ugoani, 2023).

From a management perspective, communication is the process through which individuals are informed and directed to attain optimal outcomes (Neely & Mosley, 2018). Thus, a manager

must utilize communication processes to effectively coordinate business activities, make decisions, and establish partnerships. From a management standpoint, communication is the vehicle through which individuals are informed and directed towards optimal results. Effective communication requires not just organizing and articulating thoughts clearly but also captivating the audience's interest (Beattie & Ellis, 2014).

Communication facilitates interactions among team members. A manager should be the primary person to create connections among organizational members through thoughtful and effective communication. Adequate communication ensures that organizational operations run smoothly. A skilled manager will employ communication to clearly express their message and solicit the desired feedback from the outset of the communication process. These elements form the foundation of communication processes, allowing individuals within the organization to forge interpersonal relationships, which are essential for effective management both internally and externally.

As a management tool, communication seeks to cultivate positive interpersonal relationships that are collaborative and centered on achieving shared goals: enhancing skills, mobilizing employees towards evolving objectives, and maximizing their potential in changing production methods (Burnside-Lawry, 2011). This illustrates some of the factors underscoring the significance of communication.

Only effective communication can fulfil the requirements necessary for managing an organization. Some scholars assert that communication management acts as a form of interpersonal leadership, enabling managers to exercise specific authorities: forecasting, training, organizing, coordinating, controlling, and evaluating (Greenbaum, 1972). Within the context of communication management, a manager can organize tasks more efficiently, communicate with employees more effortlessly, and lay a robust foundation for decision-making (Kandlousi et al., 2010). Managerial communication is crucial for the exchange of knowledge within an organization. It is essential for managers to convey information to their subordinates in order to share their insights and expertise. A novel idea holds little value if it remains unshared. Managers

require effective channels to interact with their immediate team members, facilitating a two-way dialogue (Albers Mohrman & Lawler, 1988). This is where the significance of efficient managerial communication comes into play. Clear communication helps managers set expectations for their team members, ensuring they understand their roles and responsibilities (Xavier, 2002).

Moreover, managerial communication encompasses the following pivotal roles:

(i) Enhancing Task Completion Through Team Collaboration

Additionally, effective managerial communication is vital for completing tasks well ahead of deadlines. Collaboration within teams accelerates project completion. Engaging in discussions about ideas and assessing the advantages and disadvantages of various strategies is essential for identifying solutions that benefit both employees and the organization as a whole. Before implementing any new policy, managers should consult with their team members to gather their insights; one might be surprised by the valuable suggestions that could arise.

(ii) Fostering Transparency and Reducing Stress

Transparent communication fosters openness among team members. Employees who fail to communicate often experience heightened stress and anxiety. Managerial communication allows managers to delegate roles and responsibilities based on employees' interests while providing them the opportunity to seek clarification on any uncertainties. This type of communication also enables managers to stay informed about their team's progress, preventing redundant efforts.

(iii) Motivating Employees Through Regular Interaction

Moreover, effective managerial communication serves as a powerful motivator for employees. Regular interaction between managers and team members cultivates a sense of loyalty toward both their work and the organization. It is important to address issues early on, as neglecting them can lead to more significant problems later. Employees should feel comfortable discussing their concerns with their team leaders. Open communication can help resolve conflicts in a constructive manner.

(iv) The Role of Communication in Crisis Management

In times of crisis or critical decision-making, managerial communication becomes even more significant. Managers must maintain consistent contact with their employees to ensure optimal performance. In essence, effective managerial communication provides employees with a sense of security.

(v) The Need for Social Interaction at Work

Human beings are not machines that can work continuously without breaks. We need the companionship of others to discuss various topics beyond routine tasks. Without communication, one remains unaware of the happenings around them. Individuals working in isolation often perceive their tasks as burdensome. Regular communication keeps individuals informed about the latest developments in the workplace, fostering a more engaged and motivated workforce.

Examining these three roles underscores the importance of communication within an organization, without which operations may falter. Employees are the organization's most significant resource, and their enthusiastic engagement in pursuing the company's strategic objectives is vital for satisfying the performance expectations set by management (Mukerjee, 2014).

Their active involvement not only enhances productivity but also fosters a sense of ownership and commitment to the organization's success, ultimately playing a crucial role in achieving the desired outcomes. Employees are the organization's most valuable asset, and their active involvement in achieving the company's strategic goals is essential for fulfilling management's performance expectations (Kandlousi et al., 2010).

Management of the Communication System

Employers often regard motivated and dedicated employees as the gold standard within any organization (Delaney & Royal, 2017). Such individuals not only enhance overall productivity but also contribute significantly to cultivating a positive and collaborative work atmosphere. Their enthusiasm and commitment create a ripple effect that encourages teamwork, innovation, and shared goals among colleagues. Furthermore, these employees tend to demonstrate a

high level of loyalty to the organization, which can translate into lower turnover rates and a stronger sense of community within the workplace. This loyalty fosters a stable environment where team members feel valued and appreciated, ultimately driving the organization toward long-term success. In essence, having employees who are both motivated and dedicated is crucial for any employer aiming to achieve exceptional performance and create a thriving organizational culture. Essentially, they contribute to the organization’s long-term success (Frandsen, Johansen, & Pang, 2013).

However, motivating employees poses a significant challenge. Motivation, from a psychological viewpoint, underlies individual behavior in both personal and professional domains. An employee’s conduct at work is profoundly influenced by their perception of their role within the organization, how their contributions are acknowledged—both monetarily and socially—and the quality of their professional relationships.

Beyond human resource policies concerning compensation, career advancement, training, and professional development, internal communication initiatives play a critical role in enhancing employee motivation. Research reveals that non-financial factors, such as work-life balance and positive interpersonal relationships, are highly valued globally (Miller, 2012). Consequently, internal communication programs increasingly integrate these non-financial motivators. In recent years, internal professional communication has shifted from merely relaying information to implementing programs aimed at engaging and motivating employees.

Advantages of having an environment of healthy communication within a company:

Fosters Job Satisfaction: Organizations that encourage information sharing between leaders and subordinates, as well as among peers, experience heightened job satisfaction. Effective feedback enhances motivation and fosters a sense of worth among employees, while open communication can prevent conflicts and facilitate quicker resolutions. Resolving disputes through dialogue promotes mutual respect, contributing to both personal and professional development.

Boosts Productivity: Effective communication in the workplace is essential for organizational success. Managers must clearly delineate objectives and communicate employees' responsibilities. Clarity in direction enables employees to focus on their tasks, leading to increased productivity.

Optimizes Resource Utilization: Poor communication can result in unnecessary delays during conflicts or crises, leading to wasted resources and diminished overall productivity. Ineffective communication can lead to avoidable delays during conflicts or crises, resulting in squandered resources and a decline in overall productivity.

As a leader or manager, it is crucial to ensure that information is conveyed clearly and reaches its intended audience promptly; failing to do so can create organizational difficulties. Effective communication entails articulating both content and intent, ensuring that the receiver comprehends the message, even amid differences. It is ineffective to rely solely on logic; emotional factors also significantly influence decision-making (Ruck & Welch, 2012).

Cultivating such an open environment is not an inherent ability but requires training for those in leadership roles. Numerous communication issues arise from credibility challenges; each individual perceives the world through their unique lens shaped by emotions, beliefs, and behaviors. Often, credibility problems can be addressed if at least one party acknowledges that the underlying issue is merely a matter of perception and takes steps to understand the other side (King, 2015).

If employees lack harmonious relationships, emotional barriers may emerge. Communication fundamentally involves trust and the acceptance of diverse ideas and feelings (Reidhead, 2021). By setting aside adversarial attitudes and emphasizing collaboration, organizations can conserve time and energy. Many decisions within organizations depend on teamwork, necessitating the acquisition of essential information crucial for effective management.

In this regard, effective team dynamics depend on ensuring open communication among participants. The responsibility for facilitating this communication largely falls on the group leader, who must accurately inform team members and create an environment where everyone can freely express their views (Ledbetter, 2014).

An open-minded approach to group discussions involves not stifling dissenting opinions and allowing for constructive dialogue.

Verbal communication is crucial in daily life and within organizational relationships. It constitutes a fundamental part of individual responsibility towards others. Language includes both natural and artificial forms, such as sign language for the hearing impaired or computer programming languages (Alm, 2006).

Spoken language facilitates communication in various contexts: family, education, friendships, and workplaces. The effectiveness of language usage distinguishes proficient communicators. In relationships, communication holds particular significance, as it directly impacts how the organization's mission is conveyed and how career success is attained. Regardless of the work environment or professional role, effective communication is vital for decision-making, sharing ideas, and feeling understood and valued.

To articulate thoughts or emotions, we rely on sounds and symbols commonly recognized as words. Proficient communication necessitates skills that develop through practice. The aim is to convey both content and intent, merging logic and emotion, with the latter being significantly more impactful and motivating. We often perceive messages with our eyes and hearts before our ears. Striving to grasp the intention behind communication, free from bias, and allowing time and patience to express authentic feelings helps cultivate mutual understanding.

Ultimately, communication revolves around trust and the acceptance of differing ideas and feelings, all stemming from shared intellectual capacities. From a theoretical standpoint, motivation and performance are distinct concepts. Managers primarily focus on aiding employees in attaining the organization's key professional objectives, emphasizing tangible results, quality, and cost-effectiveness (Kraut, Pedigo, McKenna, & Dunnette, 1989). Successfully achieving these targets depends on various factors, including effort, time, and active participation from personnel.

The effectiveness of decisions is contingent upon the commitment and quality of the workforce, which can be realized through dedication and involvement. The change process allows for the allocation of energy to diminish inhibiting forces while promoting growth. Since each situation is unique, it's essential to

evaluate restrictive forces and convert as many of them as possible into driving forces. Involving employees can tap into existing motivational drivers, leading to a team that collaboratively addresses challenges.

Culture and Communication within the Organization

A culture that nurtures trust is fostered by principled individuals who keep their promises, engage maturely, and possess an abundance mentality, believing in sufficient resources for all and valuing diverse solutions. Such character-driven individuals can engage in genuine synergy and creativity, even in cultures characterized by low trust.

For team members to operate effectively, they must possess fundamental communication skills (understanding and being understood), organizational abilities (planning and execution), and the capacity to collaboratively resolve problems (finding mutually beneficial solutions) (Skinner, 2000). Furthermore, recognizing emotional barriers and facilitating conversations that promote understanding and prevent misunderstandings is critical for effective teamwork.

Nurturing a workplace environment that encourages open dialogue and values diverse contributions strengthens the fabric of the organization. This involves creating a culture of confidence where every voice matters.

Robust team dynamics emerge from transparent communication among participants. If unresolved issues linger between team members, collective effort suffers. Conflicts may arise from an unwillingness to listen or misunderstandings regarding differing viewpoints. Communication comprises three essential elements: what is conveyed (content), how it is expressed (tone), and body language (non-verbal cues). When these components are misaligned, miscommunication occurs. Thus, establishing trust is paramount for clear message delivery.

Internal communication must also be proactive in identifying potential issues and addressing them promptly. In case of conflicts, prioritizing open discussions and collaborative problem-solving is essential. The group leader plays a pivotal role in creating an atmosphere conducive to honest dialogue, ensuring everyone feels

heard and promoting cooperation. By incorporating feedback mechanisms into team processes, organizations can pinpoint areas for enhancement and boost productivity.

Conclusion

Effective communication is crucial for organizational success, influencing employee relationships, fostering teamwork, and enhancing overall performance. Managers must adopt an interpersonal approach to create connections among team members, significantly elevating employee motivation and satisfaction. Clear, consistent, and effective communication aligns organizational goals, enhances decision-making, and cultivates a supportive workplace culture. By recognizing the essential role of communication, organizations can harness its potential to achieve strategic objectives while nurturing a motivated workforce.

References :

Albers Mohrman, S., & Lawler, E. E. (1988). Participative Managerial Behavior and Organizational Change. Journal of Organizational Change Management, 1(1), 45-59.

Alm, N. (2006). Augmentative and Alternative Communication. Encyclopedia of Language & Linguistics (Second Edition), 569-574.

Baskin, O., Aronoff, C., & Lattimore, D. (1997). Public Relations—The Profession and the Practice (4th ed.). Boston, MA: McGraw-Hill.

Beattie, G. & Ellis, A. (2014). The psychology of language and communication. London: Psychology Press.

Bodie, G. & Crick, N. (2014). Theory of communicative action. Vol. 1: Reason and the rationalization of society. Boston, MA: Beacon Press.

Burnside-Lawry, J. (2011). The dark side of stakeholder communication: Stakeholder perceptions of ineffective organisational listening. Australian Journal of Communication, 38(1), 147-173, 149.

Delaney, M. L., & Royal, M. A. (2017, March). Breaking Engagement Apart: The Role of Intrinsic and Extrinsic Motivation in Engagement Strategies. Industrial and Organizational Psychology, 10(1), 127-140.

Frandsen, F., Johansen, W. & Pang, A. (2013). From management

consulting to strategic communication: studying the roles and functions of communication consulting. International Journal of Strategic Communication, 7(2), 81-83.

Greenbaum, H. H. (1972). Management's Role in Organizational Communication Analysis. The ABCA Journal of Business Communication, 10(1), 39-52.

Heron, A. R. (1942). Sharing Information with Employees. Stanford, CA: Stanford University Press.

Kandlousi, N.S.A.E., et al. (2010). Organizational citizenship behavior in concern of communication satisfaction: The role of the formal and informal communication. International Journal of Business and Management, 5(10), 51-61.

King, M. (2015). Corporate blogging and microblogging: An analysis of dialogue, interactivity and engagement in organization-public communication through social media, Corporate Blogging and Microblogging PhD Thesis. Sydney: University of Technology.

Kraut, A. I., Pedigo, P. R., McKenna, D. D., & Dunnette, M. D. (1989). The Role of the Manager: What's Really Important in Different Management Jobs. Academy of Management Perspectives, 3(4), 286-293.

Ledbetter, A.M. (2014). The past and future of technology in interpersonal communication theory and research. Communication Studies, 65(4), 456-459.

Miller, K. (2012). Organizational Communication: Approaches and Processes (6th ed.). Belmont, CA: Thomson-Wadsworth.

Mukerjee, K. (2014). Fostering employee engagement in organisations: a conceptual framework. International Journal of Management Practice, 7(2), 160-176.

Neely, P. R., & Mosley, M. (2018). Communication Problems in Management. International Journal of Research- Granthaalayah, 6(9), 34-40.

Reidhead, C. (2021). Effective Communication as a Tool for Achieving Organizational Goals and Objectives. Journal of Economics, Finance and Management Studies, 265-273.

Robbins, S. P., & Judge, T. A. (2019). Organizational behavior. Pearson.

Ruck, K. & Welch, M. (2012). Valuing Internal Communication; Management and Employees Perspectives. Public Relations Review, 38, 294-302.

Skinner, M. (2000). Training Managers To Be Better Communicators. Employment Relations Today.

Ugoani, J. N. (2023). Taxonomy of Organizational Design Models and Organizational Performance. Business, Management and Economics Research, 9(1), 1-12.

Xavier, S. (2002). Clear Communications and Feedback Can Improve Manager and Employee Effectiveness. Empl. Rel. Today, 33-41.

Dr. Bhawana Bardia
Assistant Professor
Department of Business Administration
University of Science and Technology, Meghalaya

❑ ❑ ❑

Structural Changes In Occupational Pattern of Workforce In India

● Dr. Bhupinder

In the production process, various factors as land, labour, capital and entrepreneur play important role. Labour is the most important factor of economic development. India is an over populated country. So it is the cheaper factor of production as compared to other factors in our country. Due to excess labour in our country, labour is more used in the production process as compared to other factors.So it is called a labour intensive country. Labour is a primary factor of production in our country. But this labour force is working in different activities of different sectors. These three sectors are primary sector, secondary sector and service sector. These three sectors are very important for the economic development of an economy. All economic activities are divided among these three sectors.

According to the 2011 Census ", 48.9% of the main workers labour force was employed in the agriculture sector and allied activities. Obviously, this reflects the predominance of agriculture in the economy." This shows that agriculture is the main occupation in our country. But more workforce engaged in agriculture and allied activities is the indicator of backwardness for a country. If more workforce is engaged in agriculture and allied activities and less in industrial and tertiary sectors, such countries are called underdeveloped countries. So there is a need to change the structural pattern of workforce in India. The present study evaluates the structural changes in occupational pattern of workforce in India.

Keywords : *Workforce, occupational pattern, structural Changes,different sectors*

Introduction

Different people work in different type of activities for earning their livelihood. There are many economic activities i.e. agriculture, industry, transportation, health, education, banking, insurance, communication, hotel, etc. All these economic activities are mainly divided into three major groups on the basis of their common features. These major groups are called as sectors of the economy. These three sectors are primary sector, secondary sector and tertiary sector. These sectors play important role in the economic development of a country. The labour force of our country is working in these different three sectors. The sectors provide employment to the people.

In the primary sector, various economic activities i.e. agriculture, animal husbandry, fishing poultry farming, mining, forestry etc. These economic activities depend on natural factors as climate conditions, rainfall, soil etc. In the secondary sector, various activities as large-scale industries, small- scale industries, cottage industries etc. are included. While in the service sector or tertiary sector, various activities as banking,insurance, education, transportation, trade, communication, legal services, technology,advertising agency, marketing etc.are included.

In the development process, all these three sectors are important. Service sector is not directly linked with the production process. But it is very essential for development process. It is observed that with the passage of time occupational structure changes in our country. As soon as there is increase in the level of economic development, some structural shifts take place in the economy. These changes take place in occupational distribution of population. Occupational distribution of workforce means the percentage contribution of various sectors in occupation of people. It means that how much percentage of working population is engaged in tertiary sector, secondary sector and primary sector. As the process of economic development goes on, the percentage contribution of working population in agriculture sector decreases and the percentage contribution of working population in secondary sector and tertiary sector increases. In developed nations, percentage contribution of tertiary and secondary sector in occupational structure of the working population is very high as compared to developing nations. In India more percentage of working population is engaged in agriculture sector as compared to tertiary sector and primary sector. But with

the passage of time, as the development process goes on, in India the percentage of working population in primary sector decreases and this percentage in secondary sector and tertiary sector increases.

Review of literature

In various studies , it is revealed that as the development process goes on, the percentage contribution of secondary and tertiary sectors also incrrases.

According to Collin Clark ", engagement of large proportion of population in secondary and tertiary sectors instead of primary sector, is an index of economic development. " According to Keynes ", Development in a country without population growth will cause problems." Keynes further states ", Growth of Population will cause a strong demand for goods that will make it possible to establish a good market as well as increase the demand for capitals."

Lewis is also of the view that ", Growth is the result of human efforts. " Mason (1988) and Williamson (1997) have revealed ", the shift in age distribution pattern have had a significant impact on economic growth through savings and investments." Arthur Lewis (1954) and Jorgenson (1961) declaredb", Population growth will speed up economic development. " According to Bloom and Canning (1989) ", There is strong evidence that demographic change has a major impact on the course of economic growth . For example, they say rising life expectancy tends to increase saving and education level, increasing the investment and human capital. "

Research Methodology

In order to achieve the objective of the present study, time series data on the relevant variables have been collected for the period from 1901 to 2020-21. The secondary data have been collected from census report, NSSO survey reports. Besides, journals, magazines and periodicals relevant to the study have also been consulted.

Results and Discussions

In the study, we analyse the structural changes in the distribution of workforce in India since 1901 to 2015.-16. Different people are engaged in different economic activities for earning their livelihood. According to Collin Clark ",engagement of large

proportion of workforce in secondary and tertiary sectors instead of primary sector,is an index of economic development. " So it can be said that if more people are working in agriculture sector, it means that it is less developed countries. If more people are engaged in tertiary sector and secondary sector, it means that this is developed country. It is so because agriculture is a risky business which totally depends on nature.As it is more affected by rainfall , climate etc. While activities related to service sector or secondar sector are very less affected by nature. So agricultural productivity is more affected by nature. While the productivity of tertiary or secondary sector is less affected. It is also observed that there is more variations in agricultural productivity as compared to other sectors.

The table-1 shows the occupational distribution of workforce in India since 1901 to 2015-16. It is revealed from the table that in 1901, people engaged in agriculture and allied activities is 71.7 %. But after independence , in 1951 it increses to 72.1% .The workforce engaged in this sector decreases to 44.08 % in 2020-21. Before independence, during the period from 1901 to 1951, the percentage of workforce working in agriculture sector remained unchanged that is around 72 %. But after independence, it also remained unchanged around 72 % during 1951 to 1971.After 1971, workforce employed in agriculture and allied activities goes on declining and in service sector and tertiary sector goes on increasing.This process of increasing percentage of workforce employed in industrial sector and service sector and declining in agriculture sector goes from 1971 to 2020-21.

These results show that the British government did not develop the industrial sector and service sector. But after independence, Indian government gave emphasis on industrialization. So during the planning period, industrializatiin process was accelerated. It is also revealed that during the post-economic reform period, 1991 to 2020-21, the percentage of workforce employed in industrial sector went on increasing from 12.7 % to 24.47 %. During pre-economic reform period 1951-1991, the percentage of workforce engaged in industrial sector remained unchanged at around 12 %.It was the most important change that was occurred in industrial sector during post-economic reform period.

During 1901, workforce engaged in industrial and tertiary sectors were 12.6.6 % and 15.7% respectively. But in 1951, it

Table: 1 : Occupational Distribution of workforce in India (In Percentage)

Sr. No	Occupation	1901	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011-12	2020-21
1	Agriculture & Allied Activities	71.7	72.1	71.8	72.1	68.8	66.8	56.7	48.9	44.08
2	Industry(1+2+4)	12.6	10.7	12.2	11.1	13.6	12.7	18.2	24.4	24.47
	1 Mining & quarrying	– –	.6	.5	.5	.6	.6	.6	.5	– –
	2 Manufacturing	– –	9.0	10.6	9.4	11.3	10.2	13.9	13.2	– –
	3 construction	– –	1.1	1.1	1.2	1.7	1.9	3.7	10.6	– –
3	Tertiary(4+5+6)	15.7	17.2	16.0	16.8	17.6	20.5	25.1	26.7	31.45
	4 Trade & Commerce	– –	5.2	4.0	5.6	6.3	7.5	9.4	11.4	– –
	5 Transport, Storage and Communication	– –	1.5	1.6	2.5	2.7	2.8	4.0	4.4	– –
	6 Other Sources	----	10.5	10.4	8.7	8.6	10.2	11.7	10.9	----
	Total	100	100	100	100	100	100	100	100	100

Source : Census Report; NSSO Survey Reports

was 10.7% and 17.2% respectively. In 2020-21 the percentage of workforce engaged in industrial and tertiary sectors is 24.47 % and 31.45 % respectively. We come to the conclusion that after independence during planning periods, the percentage of workforce engaged in agriculture sector goes on declining and in industrial and service sectors goes on increasing. The percentage of workforce working in agriculture sector approximately becomes half and in industrial and service sectors become double.

It is also found from the table-1 that about 44.08 % workiing population engaged in agriculture and alliedactivities. It means that today agriculture is still main occupation of India. But only 24.47 % working population engaged in manufacturing industries. It means that there is less development of industries and India is indurially backward.

It is also revealed that there is less development of tertiary activities like banking, insurance, education, services ,telecommunication etc.If there is increase in service sector, it is an index of economic development.

Table: 2 Share of Employment in Agriculture and Non-Agriculture sector (%)

Year	Employment				Shift in labor force away from agriculture
		Non-Agriculture			
	Agriculture	Industry	Service	Total	
1901	71.7	12.6	15.7	28.3	-
1951	72.1	10.7	17.2	27.9	-0.4
1961	71.8	12.2	16.0	28.2	0.3
1971	72.1	11.1	16.8	27.9	-0.3
1981	68.8	13.6	17.6	31.2	3.3
1991	66.8	12.7	20.5	33.2	2.0
2001	56.7	18.2	25.1	43.3	10.1
2011-12	48.9	24.4	26.7	51.1	7.8
2020-21	44.08	24.47	31.45	55.92	4.82

Source : Computed from various rounds of NSS reports and various issues of NAS.

Table 2 : shows the employment generation by agriculture and non-agriculture.The employment generation by agriculture in 1901 is 71.7 % .While by total employment generation by non-agriculture (industrial sector and service sector) is 28.3 % .In 1951, employment generation by agriculture is 72.1 and by non-agriculture is 27.9 %. But in 2020-21, employment generation by agriculture decreases to 44.08% and in non-agriculture, it increases by 55.92%. During the period from 1901 to 1951, shift in labour force away from agriculture is -.4%. The highest shift of labour force away from agriculture is 10.1% during 1991-2001 and 7.8% during 2001 to 2011-12. It is 4.82 % during 2011-12 to 2020-21. This shift of labour force is due to the effects of economic reforms started from 1991.These results show that important changes came in structural changes in occupational pattern of workforce in India since 1991, that was the post-economic reform period. Before 1991, two- third of workforce was employed in agriculture and allied activities. But after 1991, less than half of workforce is engaged in this sector. It was so because of massive growth in the fields of banking, trade, commerce, transport, industries , etc.More employment generation came in industrial and tertiary sectors during post- reform period.

It is revealed from the table-2 that the trends of employment generation by non-agriculture is increasing continuously in India. On the other hand, this trends of employment generation by agriculture and allied activities is declining.The rate of increase in employment generation by non-agriculture is much less than the decline in the employment generation by agriculture. So today there is the requirement of creating employment opportunities even in rural areas so that the dependency on agriculture decreases. It is only possible if there is high growth of employment generation in non-agriculture activities in ruralareas. As majority of population are living in rural areas.

This study of occupational distribution of workforce reveals that despite growth of industrial and service sectors, there has not been much change in occupational pattern of workforce in India. These two sectors i.e. indusrial and tertiary have not generated more employment opportunities. More workforce engaged in agriculture and allied activities means more disguised unemployment in primary sector. The above results prove that a substantial part of working population still depends on agriculture and allied activities.

Factors affecting occupational structure

It is observed that there are some factors that affect the occupational pattern of workforce in developing and developed nations. The occupational structure depends on various geographical, economic, natural, technological and caste factors. 5

First of all, we dicuss geographical factors. The occupational structure is affected by the geographical conditions of a nation. These may be called natural factors. These geographical factors are concerned with the weather, climate, fertility of soil and availability of minerals and some other natural resources. These factors affect the occupational pattern of the workforce. The workforce has to select the occupation within the given natural resources.

Secondly, productive forces also determine the occupational structure of a country. So there is a need to develop the productive forces. To increase the productive forces , latest technology is required to develop. . If moden technology is adopted, then productivity of workforce can be increased. As a result of it, large number of working population is engaged in the production of goods and services. There is limited choice for workforce to select better opportunities for job snd lastly they have to engage in agriculture and allied activities. If productive forces are developed, then more and more workforce are absorbed in industrial and tertiary sectors that are displaced from agriculture sectors.

Thirdly, division of labour force and specialization also determine the structural changes in occupational pattern of workforce. The efficient and skilled workforce have more opportunities to engage in industrial and tertiary sectors. But unskilled and inefficient labour force have limited choice and ultimately they have to engage in agriculture and allied activities. The labour productivity increases due to division of labour and specialization. More the productivity of labour, more the workforce are transferred from agriculture sector to non-agricultural activities. So division of labour force is required for the structural changes in occupational pattern of workforce in India.

Fourthly, the level of per capita income also determine the occupational structure. If the level of per capita income is low, more will be the demand of agricultural products.On the other hand, if higher the per capita income , higher will be the demand of industrial products. So if the level of per capita income is achieved high, then the industrial sector goes on rising

An important factor that affect the occupational structure is the caste system in India. Indian society and its occupational structure are divided on the basis of caste, religion and class.Normally it is observed that the children of the farmers become farmers. These occupation patterns go from one generation to the next generation. It becomes difficult to change the occupational pattern.

In the Indian society, it is also observed that there is gender based discrimination as well as caste based. Generally the women workforce belonging to rural areas are not allowed to go outside their villages.So they have limited choice and lastly they have to work either at their homes or in their farms.

Suggestions for desired shift of occupational pattern

It is revealed from the study that a large number of working population still depends on agriculture and allied activities. So there is a need for the structural changes in the occupational pattern of workforce in India. So the government should give more importance to basic and heavy industries.

So the government should develop both industrial and service sectors. There is the need to develop small and cottage industries in rural areas. Such industries may absorb more workforce. The activities as transport, banking, tourism, food processing, hotel, etc belonging to tertiary sector should be more developed so that the workforce may engage in these activities Occupational Pattern is very much affected by economic development. So in order to change the occupational pattern, growth rate of per capita income should be boosted.we should adopt labour intensive technique. It will change the occupational structure.

Conclusion

We come to the conclusion on the basis of results of the study that despite growth of industrial and service sectors, there has not been much change in occupational pattern of workforce in India. These two sectors i.e. indusrial and tertiary have not generated more employment opportunities.The above results show that a substantial part of working population still depends on agriculture and allied activities. This study clear that there is slow change in occupational pattern of workforce in India. So there is a need to develop the industrial and tertiary sectors in india. As a result of it more workforce will absorb in these two sectors that are engaged in agriculture sector.

References

1. Ahluwalia, M. 1999, 'India economic reforms', in Sachs, J., Varshney, A. and Bajpai, N. (eds), India in the Era of Economic Reforms, Oxford University Press, New Delhi, pp. 26-79.
2. Birthal P. and Parthasarathy Rao, P. (eds) 2002, Technology Options for Sustainable Live- stock Production in India, Proceedings of the Workshop on Documentation, Adoption, and Impact of Livestock Technologies in India, 18-19 January 2001, ICRISAT-Patancheru, India.
3. Chadra, R. 2001, Trade and balance of payments' in Economic and Policy Reforms in India, National Council of Applied Economic Research, New Delhi, pp. 89-128.
4. Desai, A. 2004, Problems and prospects', in The Hindu Survey of Indian Agriculture 2004, Chennai, India.
5. P.N.M.Bhat (2001), quoted in K. Navaneetham", Demographic Dividend " in Kaushik Basu and Annemie Meertens (ed.), The New Oxford Companionto Economics in India(New Delhi,2017), p.33.
6. C.P. Chandrasekhar (2006), ", Does Demography Advantage India", Frontline, January 14-27, p.105
7. J. Krishnamurthy, "The Occupational structure" in Dharma Kumar(ed), The Cambridge Economic History of India, Vol.2, C 1757-C 1970 (Hyderabad, 1984), p. 548.
8. Government of India, Planning Commission, Approach to the Fifth Plan 1974- 79 (Delhi,1973), p.5.
9. Census of India, Paper 1 of 1971 Supplement, p.34.
10. Government of India, Agricultural Statistics at a glance 2014 (Delhi, 2015), Tables 2.3 (b) and 2.3 (c).

Postal Address :

Dr. Bhupinder

H.No. 46,Gali No-1,
Friends Colony, Extension-9
Behind Nakastra Property,
Near Omaxe City Gate
Delhi Road,
Rohtak Pin-124001, Haryana
M.9812138717

Dr. Bhupinder

Assistant Professor,
Department of Economics
Government P.G College
for Women, Rohtak
bhupinderahlawat1981@gmail.com

❑ ❑ ❑

Adolescent Reproductive Health Education for Sustainable Development

Paramita Mukherjee • Minara Yeasmin

Adolescence is very crucial from the point of view of reproductive health as safe transition to adulthood is only possible when reproductive health at adolescence is understood and well managed. Lack of guidance from parental and teaches, irresponsible acts of media make it difficult by blocking opportunities to know about reproductive developments in adolescence from reliable source. Resultant unscientific notion make adolescents vulnerable to unwanted hazards of various magnitude affecting their academic engagements. The current work discusses the necessity of Adolescent Reproductive Health Education through trained teachers in formal set up so that no room is left for misunderstanding. Simultaneously it analyses the initiatives taken by our state and central govt. to handle the serious issues and ways forward to successful implementation of Reproductive Health Education with comprehensive coverage. Employing Focus Group Discussion on Reproductive Health Awareness with engagements of selected students from various schools across Kolkata the study presents a qualitative analysis on reproductive health awareness of adolescents, its effects on their psychological, academic, social and physical aspects of life and teachers' attitude regarding Reproductive Health Education. The questions asked and issues discussed during the FGD are inspired by NCERT made AEP (2013) guidelines and validated by a subject expert. The information gathered is qualitatively represented and the answers to the research questions are critically discussed. There remains no substitute to school based reproductive health education and involvement of community at large to ease out conversation on wrongly perceived notions. Helping adolescents think critically and take informed decisions would protect their

human right and their safe journey to adulthood would then help realising Sustainable Development Goals.

Keywords : *Reproductive Health, Adolescence, Awareness, Access to Information, HIV/AIDS, Reproductive Health Education.*

Introduction :

Adolescent population includes the age group of 10 to 19 years; this phase is important as puberty is attained. Biological changes along with psychological changes make them vulnerable to reproductive health risks (Majer et.al 1992). Adolescents are especially vulnerable because of their inclined to experiment nature that turns them impulsive, reckless and curious. The obvious change in hormonal play and resultant mental and physical stress culminates into health challenges which intensify with unavailability of infrastructure both at school and home. Such botheration might prevent them from spontaneous participation in school activities. They feel embarrassed to communicate their needs in social sphere. Lack of knowledge of management makes them vulnerable. PCOS is one such examples of lifestyle driven diseases posing serious threat to reproductive health of the adolescents across the globe. Lack of adequate knowledge and skill leads to unwanted pregnancy, unsafe abortion, sexually transmitted infection, maternal mortality, infant mortality and long term morbidity (Duby et.al 2021). They suffer from reproductive health issues in silence. Reproductive health concerns are stigmatized in an underdeveloped country like India (Ahmed et.al, 2020). Cultural and religious factors create inhibitive environment for open discussions on reproductive health, gender norms create barriers to access reproductive information and services and negative social consequences lead to school dropout reducing employability with long term economic implications (Alemu et al, 2017). International Conference on Population Development, 1994 puts stress on preventing poor reproductive outcomes among adolescents in developing countries.

Adolescents are curious and their innocent queries are often answered with myths, half-truths. Parents, elders often dissuade youth from knowing the truth creating unnecessary confusion and mystery through their irrational, illogical, irresponsible behaviour. When adolescents see so much of hide and seek surrounding the

topic their curiosity grow thousand fold and in the absence of answers from reliable sources adolescents seek their answers from their friends, siblings of contemporary age, who themselves are confused; being unreliable sources these friends give rise to utter misconception about the issue. On the other hand as adults act in unreliable manner, students become doubtful of the honesty of their parents and lack of trust tends to poison the environment. Adolescent students must have complete, factual information about their reproductive health (Dinaj-koci et.al, 2015). Scientifically right answers foster trust, equip them with knowledge. Otherwise misinformation make them feel ashamed of themselves, embarrassed to express curiosity and instill into a sense of taboo about it. Parents should bring up the topic for open discussion. It can erase the misunderstanding. School based learning always does not equip the youth to understand about reproduction, contraception, consenting adults and emotional aspects of relationship. The teachers are shy and lack effective training to enhance management skills of their students. Adolescent students fail to get satisfactory knowledge from school teachers too. Available information in the social media is abundant but not all are reliable. The problem is, being novice, adolescent boys and girls are unable to sort from the huge data, they fail to discriminate between false and authentic information which often invite dangerous consequences (Gise et.al, 2012). Though a few movies, online platforms deal with this issue but they remain mostly out of knowledge of the targeted community. Imparting knowledge through reliable and truthful source is crucial.

HIV/AIDS is a fast spreading sexual diseases where the overall immunity is compromised. Worldwide spread of HIV AIDS is attributed to unsafe sex and absence of concrete information about how it spreads (Catalano et.al, 2010). Adolescents are prone to fall prey as they lack awareness as our societal norms do not allow free discussion but at the same time with globalization, urbanization and modernization male female interactions have become more frequent and intimate which often trigger situations that bear unfortunate consequences. So, to avoid all these discomforts effective knowledge of reproductive health is of prime importance (Bearinger.et.al, 2007).

Adolescent reproductive health is still a matter of concern in our country. Inadequate research in this issue fails to address all aspects

of reproductive health. NFHS reveals that percentage of adolescents experiencing first pregnancy is increasing and most of the times they are associated with lower education level, poor living conditions and limited access to healthcare. Educational status, residence, religion, caste and household wealth everything as factors intervene into determining adolescent reproductive health wellbeing. Still we come across adverse pregnancy outcomes in adolescents. Rapid childbirth is caused by social pressure and also because adolescents confuse relationship with material gains. In absence of adequate experience sex within the context of material relationships lead to unsafe abortions outside medical facilities besides early pregnancy leads to maternal and infant mortality. Hopefully the proportion of women using hygienic method has increased and so has percentage of adolescent girls using contraceptives. Nationwide there is unmet needs of contraception. Situations turn miserable as the needs of adolescents are poorly understood and hardly the system caters to the needs of adolescent friendly health clinics (Woog.et.al. 2015).

For adolescent girls reproductive health is even more important than boys as they undergo vivid changes and the cultural norms have really been unkind to them by burdening them with unjustified practices and overwhelming restrictions. According to MHRD 23 million girls in India leave school because of menstruation at secondary level. Average annual dropout rate for girls at secondary level is 17.3% and at 17.7% West Bengal scores more than national average (UDISE). Most of these dropout cases occur due to prevalence of child marriage. IIPS, 2023 is of the opinion that child marriage increases the risk of HIV/AIDS and also increases the chances of dying during pregnancy and childbirth. NFHS depicts that 28% adolescent girls get married and dropout from school because of HIV/AIDS infection, early pregnancy and meet fatal consequences. WHO, 2018 reveals that Adolescent Birth Rate per 1000 women in India is between 10-30. All these tragic events call for one common solution i.e. generation of awareness through holistic education. Knowledge of reproductive health management is able to support adolescent girls in their successful journey to adulthood. SDG3 advocates for good health and wellbeing which demands universal access to information and education.

Proper management of reproductive health will help in realization of Millennium Development Goals like achieving

Universal Education, promotion of Gender Equality, Women Empowerment, improve Maternal Health, and reduce Child Mortality, combat HIV/AIDS and eradicate poverty (Cherenak et.al, 2021). Even if uncomfortable we must acknowledge reproductive health needs of adolescents and respond to them (Shepherd et.al 2010 and Norton et.al. 2017). Education is considered to be a major tool for promoting sexual and reproductive health wellbeing (Gain et.al, 2010 and Alekhya et.al, 2023). Our National Education Policy, 2020 also recognizes the long pending need of reproductive health education. It has proposed initiation of teaching learning on wellbeing of reproductive health, even CBSE already has been teaching different socio-cultural aspects of the adolescent reproductive health. CBSE has published Teachers' Workbook for Student Activities under Adolescent Education Programme which is a reference material for teachers and heads of schools. Government of India in collaboration with UNFPA, 2015 has drawn up a national action plan for introduction of adolescent reproductive and sexual health education (ARSH) to facilitate understanding of changes in adolescence, initiate a sense of awareness, help them manage problems with social skills and ultimately help them avoid vulnerability (Sahin e.al,2018). The aims of these initiatives are empowering adolescents and enabling informed decision making.

Sustainable Development Goals call for realization of human rights and gender equity. In the same line UNESCO (Schalet, 2014) has always advocated for recognition of sexuality as natural part of human development (Engel et.al 2019) and is in favour of a structured learning environment in school for comprehensive sexual education coupled with curriculum based, age appropriate and culturally responsive content (UNESCO, 2018). Knowledge of reproductive health management firmly supports the adolescent boys and girls in their successful journey to adulthood. By and large it is considered as human right of the adolescents to receive age appropriate culturally responsive reproductive health education (WHO, 2017 and 2018). Promotion of adolescent reproductive health empowers adolescents to make informed decisions (UNESCO, 2018). The present article is an attempt to study knowledge on reproductive health, its impact and the problems that crop out to arrive at solution that best serve the wellbeing of adolescent reproductive health.

Literature Review :

Critical observation: Reproductive health related physiological processes cause physical discomfort as well as psychological stress among the adolescents. Physiological and mental adjustments subsequent to attainment of puberty sometimes take a toll on their academic lifestyle. A lot of social stigma is shrouded around puberty. Poor knowledge, lack of scientific information complicates the situation further (Kotecha et.al, 2012). Neither parents nor family members in close circle feel easy to talk about causes and effects of these changes to them. Teachers are reluctant to discuss such issues in school. They are also not enough equipped with appropriate knowledge and skills to intervene into such situation. Mass media contribute to their knowledge base both positively and negatively. Lack of adequate knowledge and skill make the adolescents suffer from to unwanted pregnancy, unsafe abortion, sexually transmitted infection, maternal mortality, long term morbidity and also contribute to infant mortality (Hall et.al, 2018). Lack of privacy, judgmental attitude, barriers to spontaneous communication and limited access to services needed for efficient management of adolescent reproductive health make realization of millennium development goals a distant dream.

Involvement of parents, teachers and peers are important for helping the adolescents understand sexual development. Water, sanitation and other youth friendly services are absolutely necessary to manage the emergencies. Misconception eliminating preventive policies, awareness through intervention, Community participation, and organization can empower adolescents with knowledge and guide them in decision making for them. Age appropriate dimension of such holistic approach can bring about positive change to a distressed situation (Masood & Alsonini,2017).

Significance: Researches so far have been conducted on adolescent reproductive health purely belongs to medical field, with much concern on assessing awareness about adolescent reproductive health problems and availability of health services (International Centre Research and Women, 2014). A few researches tried to focus on educational perspectives, impact and management. The issue has not been dealt from the perspectives of consequences of ill management of reproductive health on academic engagements of the adolescents i.e. awkwardness created out of adolescent

reproductive health issues towards educational activities. Formal and non-formal ways of educating adolescents about the wellbeing of their reproductive health and curricular intervention in generating awareness lacked attention of the researchers in general (Rafique & Al-Sheikh, 2018). Wide research gap remains there regarding finding out relationship of gender, awareness and management of adolescent reproductive health. This is high time for innovate ways under focused attention of the schools by different boards of Education and collaborate with scientific directions developed through relevant researches. Wellbeing of adolescent reproductive health ensures and supports academic achievement and on the other hand poor outcomes of reproductive health culminates into absenteeism, stagnation, school dropout and missing out on opportunities (Every Women Every Child, 2015). This acts as barrier to human resource development having effect on employability and long term implications on economic conditions.

The present study draws its significance in various other ways. The study area Kolkata is a metro city. Here awareness level is supposed to be higher. The subjects are supposed to be smarter in answering the questions and the issue under lens no more is considered as a taboo. The prominent locations of the schools, its overall reputation ensure participation of students belonging to all section of society. It is thus possible that the result will indicate the true picture. The questionnaire survey is followed by a focus group discussion to bring out actual cause –effect relationship and understand the matter in its totality. In fact focus group discussion appears to be the most reliable tool for qualitative data collection when students are to talk about their understanding of reproductive health which they still prefer to keep confidential.

Methodology:

Objectives:

Research questions:

1. What is the importance of reproductive health in wellbeing of the adolescents?
2. Who should take responsibility to communicate/facilitate learning about management of adolescent reproductive health?

3. What is being done nationally to help adolescents with age appropriate skills for safe transition to adulthood /intervene / implement adolescent friendly educational ?
4. Why schools can be the best places for interventions for age appropriate skill building/implement national policies?

Variable:

- Knowledge of the adolescents about their reproductive health issues.
- Impact of adolescent reproductive health on different realm of their life in charge of their involvement in academics.

Population:

Adolescent girls and boys (between 15 - 19 years of age) at higher secondary level studying in govt. aided schools under WBCHSE and Government and private schools under ISC and CBSE , secondary and higher secondary level school teachers across the boards of Education and parents of the higher secondary level adolescent students in such schools.

Sample:

The sample consists of 495 adolescent students in class XI from different schools of Kolkata. Gender wise 258 of them are boys and 237 are girls, with respect to religion 377 are Hindus and 118 are Muslims and according to Board of Education 228 are from WBBSE, 82 from ICSE and 185 are from CBSE, on the day of data collection who ever in class XI were present in the school everyone participated in the study.

102 teachers from the same 10 schools (irrespective of medium of instruction and Boards of Education) have taken part in group discussions.

50 parents (either Parents- on the basis of availability) of those students who took part in FGD served as sample .

Students of class XI are chosen (XII students were unavailable because of ongoing board examinations)because they are able to place their thoughts strongly and explain the reason behind such, below this age group it is difficult to develop strong opinion about such a controversial topic considering the kind of society we live in.

The schools are randomly selected keeping in mind different strata that they represent spatial diversity and justified geographic coverage and at the same time are accessible for communication by the researchers. The schools are a good combination of Girls' schools, Boys' schools and co-educational schools as well as WBBSE, ICSE and CBSE Schools. The schools are selected according to proximity and subject to permission by authority to conduct research.

Tools :

Focus group discussion with the

- Students of class XI (who are sample) in small groups,
- small groups of teachers(who are sample) from the same schools
- Parents of those students who are selected also as sample for the study.

From each school the total sample was divided into groups of 10 and these 10 students were successively engaged in group discussions of 30 minutes duration where their perception about the issue under scanner were tried to be understood.

Questions asked during Focus group discussion are included being inspired from Training and Resource Materials, Adolescent Education Programme, NCERT, 2013. Discussions are mainly carried on role of parents, teachers as source of knowledge, role of social media and school, known information about HIV/AIDS and STI s, . Selected questions from the mentioned NCERT document are then reframed as per the title of the research work and then were sent to a subject expert for validation. On the basis of the suggestion of the expert final wording, framing of questions for FGD are finalized.

Design:

Qualitative research techniques are followed. With focus group discussion qualitative data is collected from the samples of students, teachers and parents. The data thus received is reviewed repeatedly for understanding, and then sentences and phrases are inductively coded with conventional qualitative content analysis by the author only after consulting two subject experts. Responses

from focus group discussions are refined and a pattern is identified which is then compared and analysed in the light of secondary data published by government and other literary resources of the similar genre to come to a definite conclusion through data triangulation.

Results And Discussion:

(A) Students' Knowledge from experiences and its Impact-

Adolescent students admit that their primary source of knowledge about reproductive health is their friends. Puberty and relationship facts are frequently discussed with friends. Although, irrespective of their gender they resort to their mothers whenever they are in need of care and concern about their reproductive health issues. At homes they generally do not discuss their confusion or doubts. Even if they do so, most of the time it is their mothers who help them in managing things. Siblings rarely get into worthy discussion about the topic. Fathers do not respond to such queries. So adolescence is hardly made easier to them. Teachers taught them about reproductive system in the body but not in many details which can guide them to take important decisions in reproductive life.

They go to movies but are not aware of cult movies made on reproductive health issues, so media as well as social media cannot be considered as source of knowledge in this regard.

Schools though have conducted menstrual hygiene development awareness drives that are considered insignificant as they have hardly involved adolescent males and only contributed to menstrual health centered knowledge formation of girls (Lloyd and Cynthia, 2007).

Boys are unfamiliar with visiting health facilities in case of reproductive health needs, girls pay a visit mainly due to menstrual complications. They are not aware of their right to clarify their doubts in absolute confidentiality at medical or academic platforms. They are not sure about accepting scientific knowledge, medical facts by completely discarding traditional notions. Almost everybody is aware of legal age of marriage and age of embracing parenthood.

Their knowledge about HIV/AIDS is very immature regarding how the virus is transmitted, its relation to immune system of the body and treatment and prevention. That is why they remained bothered about bodily changes, mood swings and depressions. Their attendance rate in school, participation in school activities have suffered. At times they have failed to communicate their sufferings in the immediate sphere of interaction. Physical discomfort makes their journey to adulthood difficult as

Teachers' attitude

In general found to be not comfortable with teaching adolescent reproductive health contents . Though they teach reproductive system as part of curriculum but are not much interested in talking about grooming students about transition to adulthood. They are of the opinion that teaching about reproductive health would indulge in teen negative attitude towards reproductive health education is identified here (Joseph et.al.2021). They are not concerned with implementation of curricular oaths content or extracurricular drives to aware adolescents in schools. Adolescents welcome ARH education as school based education assures them of presence of…..

Parents' role

Parents are not concerned about sources of knowledge as refrain from discussing such topics at home. Mothers as caregivers sometimes advice few things in general but about undergoing physical and psychological changes adolescents are hardly tuitioned by their parents. Parents are unaware of possible curricular interventions to help out adolescents with apparently turmoils of their life at the juncture and sometimes even oppose classroom teachings on reproductive health management.

Community involvement

The community is equally blind towards this burning issue, as everyone prefers silence about it the issues are discussed in informal settings in innumerable ways heightening chances of building misconception and mistrust. A serious issue thus turns to be a matter of joke. Absence of formal discussions leads to informally blocking scientific consciousness spreading dark misleading myths.

(B) Generating Awareness–

(i) Education as a Means to Improvement

Effectiveness of School Based Sexual and Reproductive Health

Majority of reproductive health related issues onset to students aged between 14to16, they are school going adolescents then, it indicates that school system has to be responsive to the concerns of adolescents. Education is a major tool for promoting sexual wellbeing because sexuality is a social construct. Schools are simplified, purified, better balanced society. Students spend long time in schools so long term programming opportunities are available. The curriculum for reproductive health education can be phased in relevant sequence over the years. Schools can use existing infrastructure thus can plan cost effective programmes. Schools can reach out to many in replicable and sustainable ways regulating learning environment to be protective and supportive. As social support centers schools link children, parents, families, communities.

(i) Comprehensive Sexuality Education

Teaching different aspects of sexuality to equip adolescents with knowledge, skill and attitude about their reproductive health empowers them protect their sexual rights with dignity. The educational discussions regarding this must embrace subjects like puberty, relationship, pregnancy and birth, contraception and safe abortion.

Proposed Pedagogy

Comprehensive Sexuality Education is able to address this vulnerability and work for capacity building by implementing comprehensive cum age appropriate curriculum. CSE is internationally recognized approach in this regard. In India two govt. led initiatives are operational now, i) AEP and ii) SEP. though not direct but reproductive health related aspects like menstrual health, HIV/AIDS and mental wellbeing are incomprehensively covered in these two initiatives.

CSE includes addressing diverse realities, meaningful engagement and learner centered approaches, all of which

shall ensure confidentiality. Participatory methodology, multi-component strategies including teaching, consultancy services and make consumer goods available) generates need for integrated curriculum with informal setting teaching. Such strategies inspire sharing ones problem with all, discuss one matter in group, use previous knowledge and these methods are implemented through activity based teaching , dramatization, question–answer sessions, supplementary information, comic development on the content.

The Objectives of comprehensive sexuality education are

Objectives	Curricular interventions needed
Set Clear Goals	access to knowledge resources, availability of youth friendly services,
Logical Sequence of Curriculum	age appropriate developmentally relevant knowledge
Context Orientated	relevant to local needs and situations
Develop Skills	Skills of management
Scientific Information	destroy misconceptions
Address Risk and Provide Information	involve experts, parents and community- collaboration of all the stakeholders address risk
Collaboration of all The Stakeholders	- reach out to everyone in need with best possible solution

Teachers, parents and community at large must show unique sense of responsibility in such implementation through participatory approaches so that in school and outside the school it reaches out to maximum that are in need (Population Foundation of India, 2022).

We must have to work towards stronger institution led quality education, good health and wellbeing marching in the direction of peaceful and just society towards the long awaited realization of Sustainable Development Goals.

(ii) Development of Reproductive Health Education in India and abroad

Adolescent Education Programme, 2013

AEP began its journey in 2005 under Ayushman Bharat at national level in view of curriculum based intervention in developing reproductive health knowledge of school children. Later on School Health Programme (SEP) also was started in 2018. NCERT in partnership with Ministry of Education and UNFPA had sole aim of promoting age appropriate, culturally relevant pedagogy to develop healthy attitudes and skills about managing reproductive health. Majority of reproductive health related issues reach to students aged between 14to16 so it was thought that school system has to be responsive to the concerns of adolescents. With view of holistic development AEP aimed to help in understanding growing up, developing skills, promoting menstrual hygiene, rights and responsibilities of adolescents, awareness against abuse, disseminating knowledge about basic HIV facts and developing positive attitude.

Design and implementation Understanding physical, emotional changes to break myths and misconceptions, prohibiting social menaces like early marriage, teenage pregnancy and promote safe abortion, awareness and prevention of HIV/AIDS – these primary objectives were clearly set. Then to realize the aims and objectives significant roles of teachers was identified as ways of implementation. Teacher training to conduct sessions on reproductive health education and continuous professional development of teachers in this genre were emphasized so that teachers were enabled to disseminate ways of applying life skills among adolescents in the classrooms through group discussions, small group exercises, talking in pairs, visualization in interactive participatory programmes like brainstorming, drawing, debates, role-play would help in knowing growing up better and prevention of misuse. Knowledge areas are thus linked to other themes to support growing awareness.

Age appropriate skill building – Positive effects of knowledge develop positive attitude through increased communication on gender equitable thoughts and ideas and delaying sexual initiation then follow the course. Non-judgmental attitude never put off a learner until he/she has understood various issues related to HIV/

AIDS. Effective communication has its role in decision making. Co-operation among unique stakeholders build skill for life. Role of schools, principals and facilitators are found to be very crucial.

UNESCO- Handbook for Educating Adolescent Reproductive Health

Handbook for Educating on Adolescent Reproductive and Sexual Health 1998 and international technical guidance on sexuality education advised critical analysis of demography, probe into existing problems and identifying causes of unhealthy relation. Based on the objective the implementations are also explained.

Human Right in Education:

Adolescent reproductive health rights are important human rights, conspicuous absence of which indicates discrimination and inequality. Traditions supporting unequal gender norms are needed to be countered by age appropriate education and comprehensive counseling. Assurance of care in need, guidance on ways of preventing infection, legal protection from violence and prevention of harmful traditional practices should be reinforced through strong policies. The physical and mental integrity of individuals leads to autonomy and that is why adolescent reproductive health is a comprehensive important right to life. Access to information facilitating self-awareness, acceptability, equality and non-discrimination prevent stereotypical norms. Thus constructed knowledge, skill, attitude and values contribute to making well informed choices and contribute to framing of equitable norms addressing sensitive issues in supportive environment.

Conclusion:

There is acute need of implementation of reproductive health Education in curriculum for adolescents. Their age is very crucial when they are expected to understand their biology as well as act in a prudent way but in reality often they are not ready to welcome the newly introduced changes. Resultant sufferings and inconveniences hamper human resource development as academically this is the time when new opportunities open up before them and if not mentally strong sn physically strong one miss the opportunities. AEP together with SEP are there after the recommendations and

guidelines of UNESCO and WHO but strict implementation is missing. Incomprehensive coverage of adolescent reproductive health issues, resistance in making reproductive health education mandatory for adolescents, misconception of teachers, parents and community at large about impact of reproductive health education in making adolescents desperate with their relationships both mental and physical all these should be countered with scientific vigor and the long standing demand of adolescent reproductive health education being discussed by skilled teachers in schools must be met. Only schools can explain adolescents their psycho-sexual development scientifically in a safe environment without triggering any untoward incident. Teachers have maximum responsibility in this as they are the ones through whom the training with reach the target group, so their inclination towards scientific rigor can benefit the mission of reproductive health wellbeing. Adolescents must be nourished in such a delicate manner that they are inspired to live a dignified wholesome life by the learning received in this transition period of their life.

References :

Alekhya, G., Parida, S.P., Giri, P.P. *et al.* Effectiveness of school-based sexual and reproductive health education among adolescent girls in Urban areas of Odisha, India: a cluster randomized trial. *Reprod Health* 20, 105 (2023). https://doi.org/10.1186/s12978-023-01643-7

Alemu, S.M., Habtewold, T.D.,&,Haile, Y.G. (2017). Mental and reproductive health correlates of academic performance among Dehre berhan university female students, Ethiopia: the case of premenstrual Dysphoric disorder. *Bio Med research International,* 2017, Article ID 9348159, 8 pages https://doi.org/10.1155/2017/9348159

Ahmed F, Ahmad G, Brand T, Zeeb H. (2020). Key indicators for appraising adolescent sexual and reproductive health in South Asia: international expert consensus exercise using the Delphi technique. *Global Health Action., 13* (1). doi: 10.1080/16549716.2020.1830555. PMID: 33076781; PMCID: PMC7594874.

Bearinger, L., Sieving, R.E., Ferguson, J., & Sharma, V. (2007). Global perspectives on the sexual and reproductive health of adolescents:

Patterns, prevention and potential. *The Lancet, 369*(9568), 1220-1231. https://doi.org/10.1016/s0140-6736(07)60367-5

Catalano, R. F., Gavin, L. E., & Markham, C. M. (2010). Future Directions for Positive Youth Development as a Strategy to Promote Adolescent Sexual and Reproductive Health. *Journal of Adolescent Health*, 46(3), pp.92–96. https://doi.org/10.1016/j.jadohealth.2009.12.026

Chandra-mouli, V. Vipul Patel,S. (2017). Mapping the knowledge and understanding of menarche,menstrual hygiene and menstrual health among adolescent girls in low-and middle –income countries. *Reproductive Health.* 19(14). 14-30.

Chandra-mouli,V, Parameshar , P,S. Parry, M.Lane, C. Hainsworth, G. Wong. S. et al (2017). A Never Before Opportunity to Strengthen Investment and Action on Adolescent Contraception and What We Must Do to Make Full Use of It. Reproductive health.14(1):85

Cherenack, E.M. Sikkama, K.J.(2021). Puberty and menstruation reated stressor are associated with depression, anxiety and reproductive tract infection symptoms among adolescent girls in Tanzania. International Journal of Behavioural Medicine. https://doi.org/10.1007/s12529-021-10005-1

Comprehensive sexuality education in India-a review of government and civil society –led curricula and strategies.(2022)- population foundation of India- ALT UNFOLD

Dinaj-koci,V. Deveaux, L. Wang, B. Lunn, S. Marshall, S. Li, X. Shanton, B. (2015). Adolescent sexual health education: Parents benefit too. Health Education and Behaviour.42(5), pp. 648-653. https://doi.org/10.1177/109019811456830

Duby, Z. McClintonAppollis, T. Jonas, K. Marupin, K. Dietrich, J. Lovette, A. Kuo, C. Vanleeuw, L. Mathes, C. (2021). As a young pregnant girl the challenges you face : exploring the intersection between mental health and sexual reproductive health amongst adolescent girls and young women in South Arica, Aids and Behaviour, pp.344-353 https://doi.org/10.1007/s10461-020-0294-3

Every Woman Every Child. (2015). Global Strategy for Women's, Children's And Adolescents' Health 2016-2030. Geneva.

Gise, K. Leine, D. Martins, S. Lira, A. Gaarde, J. Westmorland, W. Gilium, M. (2012). Interventions using new digital media to improve adolescent sexual health: A systematic review. Journal of Adolescent Health,51(6), pp.535-543.

Hall, K.S.Morhe, E.Manu, A.Harris, L.H. Ela,E. Loll, D. (2018).Factors associated with sexual and reproductive health stigma among adolescent girls in Ghana. PLOS ONE,13(4). Doi:10.1371/ journal.pone0195163

International Centre for Research on Women. (2014). Adolescents and Family Planning: what the evidence shows. Washington, D C.

International Institute for Population Sciences (IIPS) and ICF. (2021). National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21: India: Volume II. Mumbai: IIP.

Joseph, N., Mahato, V., Pandey, A., Mishra, S., Prakash, G., & Gandhi, R. (2021). Experiences and perception towards reproductive health education among secondary school teachers in South India. Reproductive health, 18(1), 175. https://doi.org/10.1186/ s12978-021-01224-6

Kotecha, P.V., Patel, S., Majumder, V.S., Baxi, R.K., Mishra, S., Diwanji,M., Baxi, H., Modi, E., Shah, S., Shringarpore, K. (2012). Reproductive health awareness among urban school going adolescents in Vadodara city. Indian Journal of Psychiatry, 54(4), 344-348. https://doi.org/10.4103/0019-5545.104821

Lloyd, Cynthia B. 2007. "The role of schools in promoting sexual and reproductive health among adolescents in developing countries," Poverty, Gender, and Youth Working Paper no. 6. New York: Population Council

Masood, M.S.A., Alsonini, N.A.A. (2017). Knowledge and attitude about reproductive health and family planning among Young Adults in Yemen. International Journal of Population Research. https://doi.org/10.1155/2017/1895472

NCERT. (2010) .Conceptual Framework Adolescence Education Programme.

NCERT. (2013). Adolescence Education Programme-Advocacy Manual, Role of Schools, Principals and Facilitators.

NCERT. (2013). Adolescence Education Programme-Teachers Workbook for Student Activities.

NCERT. (2013). Adolescence Education Programme-Training and Resource Materials.

NCERT. (2018). Curriculum on Health and Wellbeing of School going Adolescents - Scheme of Content Document of the School Health Programme under Ayushman Bharat .

Norton, M. Candra-mouli,V. Lane , C. (2017). Interventions for preventing unintended, rapid repeat pregnancy among adolescents: A reiew of the evidence and lessons from high-quality evaluations. Global Health scientific practices. 5(4): 547

Rafique, N., Al-Sheikh, M.H. (2018). Prevalence of menstrual problems and their association with psychological stress in young female students studying health sciences. Saudi Medical Journal, 39(1), 67-73. https://doi.org/10.15537/smj.2018.1.21438

Sahin, N. Kasap, B. Topal, Y.(2018). Assessment of anxiety depression levels and perceptions of quality of life in adolescents with dysmenorrheal.Reproductive Health,15(13).

Schatel, A.T. Santelli, J.S. Russell,S.T. Halpern, C.T. Miller,S.A. . Pickering, S.S,. Goldberg S.K. Hoeing, J.M. (2014). Invited commentary: Broadening the evidence for adolescent sexual and reproductivee health and education in the United States. Journal of Youth and Adolescence, 43(10), pp.1595-1610.

Shepherd, J. Kavanagh, J, Picot, J, Cooper,K. Harden, A. Barnett-Page,E. et.al.(2010). The effectiveness and cost-effectiveness of behavioural interventions for the prevention of sexually transmitted infections in young people aged 13-19: A systematic review and economic evaluation. Health Technol Assess. 14 (7). 1-206, iii-iv

United Nations Population Fund.(2015). The Evaluation of Comprehensive Sexuality Education Programmes: A focus on Gender and Empowerment Outcomes. New York.

United Nations Population Fund.(2015). Girlhood, not motherhood: preventing adolescent pregnancy. New York.

United Nations Population Fund.(2014). Operational Guidance for Comprehensive Sexuality Education : A Focus on Human Rights and Gender. New York.

United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. (2018).International Technical guidance on sexuality Education-An evidence informed approach. Paris: UNESCO. ISBN 978-92-3-100259-5

United Nations Population Fund. (2013). Adolescent pregnancy: a review of the evidence. New York.

Woog, V. Singh,S. Browne, A.Philbin, J. (2015). Adolescent women's need for and use of sexual and reproductive health services in

developing countries. New York: Guttmacher Institute. https://www.guttmacher.org/fact-sheet/adolescent-womens-need-and-use-sexual-and–reproductive-health

World Health Organisation. (2017). Global Accelerated Action for the Health of Adolescents (AA-HA!): Guidance to Support Country Implementation. Geneva.

World Health Organisation. (2017). Sexual Health and its Linkages to Reproductive Health: An Operational Approach. Genevaa

World Health Organisation. (2017). Reducing Early and Unintended Pregnancies Among Adolescents: Evidence Brief. Geneva.

World Health Organisation. (2018), WHO recommendations on adolescent sexual and reproductive health and rights. Geneva: World Health Organisation; License: CC BY-NC-SA B.O LGO ISBN 978-92-4-151406-6

Paramita Mukherjee
Correspondence :
Ph.D. Research Scholar,
Dept. of Education, Aliah University, Kolkata, India
paramita987@gmail.com
Orcid Id:https://orcid.org/0000-0002-2712-3970,
email-paramita987@gmail.com, Ph-9477928201
34, Panchanan Tala Lane, Behala Kolkata, 700034

Minara Yeasmin
Assistant Professor
Dept. of Education,
Aliah University, Kolkata, India
email: myeasmin047@gmail.com, minara.edu@gmail.com
Ph- 6290302757

Aliah University
Education Department,
Park Circus Campus.17, Gora Chand Road, Kolkata-14.

❑ ❑ ❑

Gender-Specific-Biases and its Impact on Stress Level, Commitment and Enthusiasm Among Working Women : A Primary Research Study

Sawitri Devi • Rajkumar

This research investigatesthe impact of gender biases on the stress levels, commitment, and enthusiasmamong working women. In this primary study by using a mixed-methods technique, gathered quantitative datasurvey of 200 women across different industries andaccompanied it with informant interviews tofurnish additionalcomprehensive information. The resultsreveala significant correlation between apprehended gender biasness and higher stress, diminished organizational commitment, and lower professional fanaticism. These resultspoint out the extensiveness of gender biases in the workplace and the dire necessity for organizational and legislative reforms in order to ensure the viability and receptive toemployment environment. Bypromoting our consciousness of workplace gender dynamics, this study offers effectiveconfirmations for exonerative the unfavourableconsequences of gender biasness on promote gender equality.

Keywords : *Gender biases, stress, organizational commitment, professional enthusiasm, Workplace inclusion.*

Introduction

Gender-based discrimination, is a key issue in the society, itinfluencesvarious areas of our life, mainly in the employment environment. It labels gender specific disparity of opportunities of human being. It leads to discriminatory practices, stereotyping, and

unequal opportunities for career. Despite of progress made toward the gender equality over year to year, gender bias remains a substantial concern for working women all across the industries. Its consequence not only effectindustrial dynamics but alsodisbalancethe mental equilibrium of working people. It alsoencirclinglevels of stress, responsibility towardstheir work, and enthusiasm concerningtheirassignments.The adverse consequence of gender-based inequality on womenemployees,are explicitly influence their stress levels, commitment and enthusiasm towards organization. In the preliminary investigation, it excavates into the challengesof women employees in different sectors, also cateringnoteworthy observations related to gender-based inequalities. Further itexhibits the psychological and emotional expenses.Further-more it also considering the associationamong gender biases with stress, commitment, and enthusiasm. It is significant in challenging the organizationalrestraintsthat prevent gender inclusivity. Earlier studies have pointed out that gender-based inequality can adversely affect theprofessional paths women like: leading to frustration, feelings of hostility, andnervous breakdown. Despite that, there are many adverse effects whichfaints the women'spsychological well-being and theirinvolvement with work.Gender bias at work palace has been a prolonged issue for decennaries. Women suffer long confronted difficultiesin earnings inequality and few possibilities forprogression compared to their male collaborators.Studies has also revealed that these biases frequentlytortuously, throughridicules or microaggressions, stereotypes, and concessional treatment. Women are frequentlyexpectant toaccommodate to heterosexual culture, which can direct to their duties being overlookedor undervalued. Gender specific inequality is also contemplated in leading positions, where women persistunappreciatedeven with their credentials and competence.The association between gender bias and stress among women in the corporate sector found that women in industries with a substantial amount of gender bias experienced extensively highest echelons of occupational mental health issues than those in more gender-inclusive condition. This stress was imputed to considerations such as being disregarded for promotions, differences in remuneration, and the incessant need to exhibit one's capabilities in macho setting (Nguyen et al. 2023). Gender specific inequality influences women in leading positions. Women in influential positions face a distinctive range of challenges, comprising

the “glass cliff” occurrence, where they are more potentially to be designated to speculative leading positions during periods of deliberate upheaval. This increasedstrain, amalgamated with gender-based discrimination, contributes to enhancedstress intensity and nervous breakdown (Walker and Taylor 2022). Gender-related discrimination significantly influenced women’s occupational gratification and commitment to their respective organizations, as they felt alienated and cloistered in their responsibilities (Patel and Singh 2021). Several researches carried out in the recent decades have brought to the fore on the ramification of gender-based discrimination, explicitly in association with stress, commitment, and enthusiasm. Gender specific inequality pony up to stress in female personnel, acknowledging that women in androcentric work atmosphere consistently met with crippling stress due to uninterrupted monitoring and thestrain tovalidate their prerogatives (Larkin et al. (2020).The results of these studies denoted that women who distinguishgender inequality in respective organization were less presumably to seek managerial positions, as they believe that their obligations would not be endorsed in exactly the same as those of their male teammates. This lack of enthusiasm to proceed in their professional activities can lead to sluggishness, both for the human being and their respective organization as an entirety. It is essentialto ruminate the responsibility of interconnectedness in understanding the impact of gender specific bias on working women. Modification refers to the interrelationship of numerouspublic personas, as gender, race, socioeconomic status and ethnicity,and these congruitiescoincide to frame subjective experiences.The emotional connection, an employee empathizes with their respective organization, which alluresttheir exposure of going on with the industry or company and working well is called Organizational commitment. Gender- specific bias has a considerable impact on staff allegianceon the female side. Investigation has shown that female employee who have gender specific bias are less plausibly to feel reliable to their respective organizations and more credibly for the solicitation possibilitiesaround somewhere.Gender inequalitiesaffect women’s instinctive impulse to be a voice for positions of influence. Research revealed that women from scapegoated individuals, such as darker skinned women or those from lower economic circumstances, has experienced the more compounded forms of inequalitiesat workstation (Smith and Brown 2022). Women with darker skin tone or colour faced

upper echelons of discrimination and bias in the workplace, which in turn increased their stress levels and negatively impacted their organizational commitment. “The intersectionality of gender bias highlights the complexity of the issue and the need for more nuanced approaches to addressing the challenges faced by working women (Williams and Collins 2021)”.Women in androcentric industries perceived less committed to their respective organizations as they did notpresume,they would have same opportunities for promotion and financial improvement.This absence of commitment can have adverse consequences for organizational attainment, as unmotivated employees are less seemingly in order to provide input their reasonable endeavours. Enthusiasm and motivation essential incentivesfor benefits and occupational gratification. However, gender specific bias can diminishmutually of these considerations in economically active women (O'Connell and Brady2020).Gender specific bias influence womenfolk enthusiasm for their commitment, mainly in hard-hitting settings. Women who confronted gender specific bias were less likely to feel more positive or enthusiastic about their duties. Theirinformedsentiment discouraged them by go unrecognized for their entitlements and persistent need to traverseprejudiced thoughts of their competencies (Johnson and Greene, 2021).Moreover, gender specific bias frequentlybrings about absence of career progression possibilities for women, whichadditionally sways their commitment to their respective organization.Women who perceived higher levels of gender-based bias in their workplace reported lower echelons of organizational commitment and were more likely tooccurrence feelings of enmity and disconnection. (Evans and Harris (2019).Theexistence of gender specific bias in the place of work can direct to amplified pressure extents, reduced enthusiasm orcrush the spirit, and diminished organizational commitment among working women. Stress is anarchetypal result of gender specific inequalities in the place of work.Working women frequentlyconfront the dual burden of executing well in their work while also navigating collective expectations of womenfolk and progenitor ship. Gender specific-inequalitiesintensifies this stress, as working women may perceive evasivefor execution more difficult than their male associates to verify conspicuous gallantry.Although gender specific bias influences all working women folks, those from scapegoated individuals may experience ancillaryrestrictions that intensify their traumatic

experience, luxation, and nervous exhaustion. Investigation conducted in previous yearshave illustrated that gender specific bias bestows to crippling stress, diminish organizational commitment, and depreciated enthusiasm pertaining to women.These breakthroughs recommend that gender specific-bias besides influences women’s professional careers but also has deleteriousconsequences on their mental and emotional eudaemonia. Addressing gender specific bias in the place of work is crucial for encouragingcircumstances where all the personnel can luxuriate and furnish their reasonable endeavours. This consideration targetsin order to constitute the extantleaflets or literature by furnishing a preliminary investigationthat explores the relationship between gender bias and stress, commitment, and enthusiasm among working women.The purpose of the study is to escalatethe awareness about these encounters byexploring gender specific biases in the place of workaffect working women's stress levels, organizational commitment, and career enthusiasm. By discerning the distinctive ways that gender-specificinequalities consequencesof working women's professional experiences, this study aspires to furnishinvestigators, business professionals, and legislative bodies with relevant information. The ultimate purpose is to determinemore commiserative and equitable workplaces where everyone who is working can prevailed. In conclusions we can say about this study will provide us thought-provoking viewpoints on the ways in which gender -specific-biases ammunitiontrauma and stress, aninadequate commitment, and a weaken in hype at their respective place of work. In addition to furnishing recommendation for future investigations, these detectingintend to be employed as a core for generatingconcentrated efforts to dwindle the devastating consequences of gender-based prejudices, essentiallyencouragingthe more reasonable and comprehensiveworking environment in the institutions.

Objectives:

- To analysing relationship between gender biases and stress levels among working women.
- To find out the impact on commitment of gender biasness on working-women in the organization.
- To explore the effect of gender biases on the enthusiasm of working women.

Hypothesis:

- There is no relationship between gender biases and stress level among working women.
- Gender biases have no negative impact on organizational commitment of working women.
- There is no effect on the professional enthusiasm of working women.

Research Methodology:

In order to collectthedata about the incidents of gender biases faced by working women atwork-place, the research project uses the quantitative as well as qualitative data. The combined quantitative surveys and qualitative interviews has been taken place. The research study intends to attract the attention about the difficultiesfaced by working women at workplace and emphasize the pressing need for organizational and legislative reforms by analysing the various impacts of gender biases.

Research Design : The study employs a mixed-methods approach, integrating methodologies for both quantitative and qualitative data gathering and analysis. Such type of method enables theinclusive investigation by the way in which gender prejudices impact working women's stress, organizational commitment, and enthusiasm.

Sampling : Goal-directed sampling is used to get the diverse sample of 200 working women from a range of professions and sectors. This selection aimed to incorporate a hugevariety of backgrounds and experiences of faced incidents of gender bias and also to ensure that the findingsof the study are universally applicable.

Data Collection : to collect the data a standardized questionnaire is developed to gather quantitativeinformation on participants' experiences with gender prejudices, stress levels, organizational dedication, and excitement for career advancement. To measure the extent of perceived gender prejudices and their effects, Likert-scale items were added to the survey.

Qualitative Data Collection : To gain a better understanding of their experiences, 40 women from the original sample were selected as a subgroup and asked to participate in semi-structured in-

depth interviews. These interviews provided firsthand accounts and contextualized the impact of gender biases on stress, commitment, and zeal.

Quantitative Data Analysis : The data was summarized using metrics such as inferential statistics, regression and correlation analyses were employed to assess the relationships between gender biases and stress, organizational commitment, and enthusiasm. Statistical software such as SPSS was used to conduct these analyses.

Ethical Considerations : Before any data was collected, Institutional Review Board (IRB) ethical approval was obtained. A thorough explanation was given of the study's purpose,methodology, and participants' freedom to stop taking part at any time without fear of consequences. Informed consent was acquired, and all collected data was anonymized to preserve participant privacy and confidentiality.

Limitations : Despite providing a comprehensive perspective, the mixed-methods approach has a number of shortcomings. Self-reported data from questionnaires and interviews may create response bias. Additionally, even though the sample is diverse, it may not be representative of all working women, which could limit the applicability of the findings of the study.

Result and Discussion

Result of the table no.1 shows the Qualitative Statistics of 200 working women from various industries participated in this study to learn more about their experiences with incidents faceddue to gender biasness/discrimination at workplace. The respondents' demographic profile showed that the average mean of age is 36, which shows that respondents are ranged from age of 22 years to age of 55 years.Out of total 45% of respondents are Graduate, 35% are Post Graduate, and 20% above Post Graduate. Participants were drawn from sectors including Banking Sector (25%), Healthcare Sector (20%), Education Sector (30%) and Finance sector (25%). Respondents who taken part in the research are having the experience of on an average of 10 years in their respective professional sectors.

Table 1

Result table described the Participants Demographic status including education and Experience in Finance Sector

Education	Percentage (%)	Industry	Percentage (%)
Age (mean = 36)		Experience (mean = 10 years)	
Graduate	45	Banking	25
Post Graduate	35	Healthcare	20
Above PG	20	Education	30
		Finance	25

** Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

b. List-wise N=200

The below given result table no.2 shows the Quantitative Outcomes of the study This studyused statistical analysis to assess the effects of perceived gender biases on stresslevels,organizational commitment, and professional enthusiasm. The primary findings of Stress. Levels are that around 70% of respondents reported that they faced moderate to high levels of stress due togender biases at workplace. There is a significant'positive' correlation between reported stresslevels and alleged gender prejudice ('r' = 0.65, 'p'< 0.01), indicating that stress levels increasedin tandem with perceived bias. In connection to Dedication to the Company60% of respondentsreported that their lack of commitment to their organizations were mostly due to genderbiasness. There was a strong negative correlation between perceived found in gender prejudiceand organizational commitment ('r' = -0.60, 'p'< 0.01), it suggests that more organizationalloyalty was connected with lower gender biasness with the working women. In ProfessionalEnthusiasm55% of respondents reported a decline in enthusiasm for professional developmentdue to workplace gender biases. A statistically significant negative wasobserved between perceived gender bias and professional enthusiasm correlation as ('r' = -0.50, 'p' < 0.01), highlighting a discouraging effect on career progression.

Table -2

Result table no. 2 shows the correlation coefficients of variable on gender biases on stresslevels, organizational commitment, and professional enthusiasm

Variable	Correlation Coefficient (r)	Significance Level (p)
Gender Bias with Stress Levels	0.65	< 0.01
Gender Bias with Organizational Commitment	-0.60	< 0.01
Gender Bias with Professional Enthusiasm	-0.50	< 0.01

** Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

**Listwise N=200

Table No. 3

Result table no. 3 indicates relationship between Gender Biases Stress Level and Commitment and enthusiasm and between Commitment and Enthusiasm among working women

Variable Pair	Pearson Correlation Coefficient (r)	p-value
Gender Biases and Stress Level	0.45	< 0.001
Gender Biases and Commitment	-0.30	< 0.001
Gender Biases and Enthusiasm	-0.35	< 0.001
Stress Level and Commitment	-0.50	< 0.001
Stress Level and Enthusiasm	-0.55	< 0.001
Commitment and Enthusiasm	0.65	< 0.001

**Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

**List-wise N=200

Result ofTable No. 3, indicates relationship between Gender Biases vs. Stress Level, commitment and enthusiasm, between Stress Level and Commitment and enthusiasm and between Commitment and Enthusiasm among working women. The analysis shows the value of coefficient of Karl's Pearson correlation between statements indicating symptoms of stress and gender biases situations and their impact on commitment and enthusiasm in the organizations. The gender biases construct was created using summated value of seventeen statements representing gender biasness in the organization A significant 'moderate positive correlation' was observed between gender biases with stress levels as ('r' = 0.45, 'p'< 0.001). This indicates that workingwomen who faced the higher-levels of gender bias at their workplace are experience the more elevated stress levels in performing their job. Gender biases, such as unequal treatment, stereotyping, and limited career advancement opportunities, contribute to a stressful work environment. Hance null hypotheses 'that there is no relationship between gender biases and stress level' not statistically approved. This finding aligns with previous research suggesting that workplace discrimination is a significant stressor for women (Cortina et al., 2001).

The result of analysis revealed that there is a 'weak negative correlation as (r = -0.30, p < 0.001)' between gender biases with commitment about their work of working women. It indicates that women who faced the incident of gender biases are less likely committed to her job. Decrease in commitment may stalk from feelings of hostility, dissatisfaction with work equity or lack of recognition. Hance null hypotheses that "there is no negative impact on commitment of working women towards organisation" not statistically approved. This result of the study is also supported by "highlighting the negative impact of discrimination on employee loyalty (e.g., Allen & Meyer, 1990)".

Analysis found that there is a significantly moderate negative correlation between gender biases and enthusiasm as (r = -0.35, p < 0.001). Respondents who experience gender biases indicated the lower levels of enthusiasm towards their work. Enthusiasm which is a primary key driver of rendezvous and efficiency, and is likely diminished due to emotional and psychological clang of gender-based discrimination. Hance a null hypothesis that there is no impact on the professional enthusiasm of working women.

This result supports the notion that “workplace inequities can erode intrinsic motivation and job satisfaction (e.g., Deci & Ryan, 2000)”.

Further analysis pointed out that there is significantly moderate negative correlation between stress levels and organizational commitment as ($r = -0.50$, $p < 0.001$). the summated value of r shows that higher stress levels is associated with lower commitment. It suggests that workplace stress faced due to gender biases is weaken women's attachment to their organizational commitment. The finding of the study highlights the importance of addressing stress to improve employee retention and devotion.

It is observed that here is a ‘strong negative correlation as (value of ‘$r = -0.55$, and ‘$p < 0.001$)’ between stress levels with enthusiasm. The respondents experiencing the high stress levels due to gender biases they significantly less enthusiastic about their job. Stress reduces energy, motivation and creativity which are stern for maintaining enthusiasm. Result of the study highlights the need for stress-reduction interferences to endure employee rendezvous and well-being.

The analysis pointed out that there is a strong positive correlation as value of ($r = 0.65$, $p < 0.001$) between organizational commitment with enthusiasm toward their work. Respondents who feel committed to their organizational goal, show high levels of enthusiasm towards their job. It shows that commitment and enthusiasm are mutually strengthening, with each other and contributing to a positive work experience. This finding aligns with research “emphasizing the interconnectedness of affective commitment and work engagement (e.g., Schaufeli & Bakker, 2004)”.

Practical Implications of the Study

The research study contributes to our sympathetic of workplace discrimination and also how it affects mental health. Study also indicates that how gender bias is a significant cause of stress and how stress can function as a moderator to reduce commitment and enthusiasm. The findings of the study also reveal that how important it is to foster organizational commitment to boost the enthusiasm and participation in the professional environment. Institutions must take positive steps to eliminate gender biases and to create an all-encompassing work environment. Key recommendations of the study include:

- Implementing variety and inclusion of training programs to reduce gender biases.
- Providing stress free management resources, such as: counselling services and flexible working environment for female employees.
- improving organizational commitment through acknowledgement programs, career development opportunities, and reasonable policies.
- Promoting enthusiasm towards organisation by nurturing a supportive, helpful and motivating work culture.

Conclusion

study demonstrates the significant impact of gender biases on working women, it demonstrates that how both explicit and concealed discrimination increase stress, reduce the professional commitment, and erode professional enthusiasm. Gender bias creates a long-lasting barrier at work, leading to emotional tiredness, exhaustion, and decreased job satisfaction. Women who faced the incidents of gender discrimination at workplace are typically discouraged from career advancement and pursuing leadership roles, it is also creates situations to being less likely to remain with their organizations. The organizations need to begin making deliberate and planned changes to effectively handle these problems by creating diversity and inclusion programs, favourable workplace policies, safer and healthy work environment. There should be some crucial actions which ensures the fair recruiting practices, developing equal pay processor, transparency in promotions, and equal and better opportunities for professional advancement. Further the organisation should provide mental health services and stress management classes which contribute to the develop the positive and supportive workplace, which will enhance wellness of workers Employee engagement, enthusiasm and productivity can all rise when the incident of gender biases addressed by encouraging the working women to enter in the positive workforce and allows them for grasping their complete potential. It also benefits both their individual career and to achieve the organisational goal as a whole. Even though this study offers insightful information, yet more research in this area is required to further understand that how gender biases change over time and how it affects working women. In the long run, Employers,

legislators, and society at large must be prioritize gender parity by establishing work environments healthy and positive where people of all genders may flourish, make significant positive contributions, and advance their careers.

References

1. Checkr. (2024, February 27). Gender equality in the workplace: Insights from women across four generations.
2. Organizational Behavior, 40(2), 220-237. https://doi.org/10.1002/job.2348 Associated Press. (2024, December 5). Work-life balance isn't working for women. Why? AP News.
3. McKinsey & Company. (2024). Women in the workplace 2024.
4. Freimane, M. (2024). Gender bias, feedback, and productivity. American Economic Association.
5. Nguyen, M., Smith, P., & Chen, W. (2023). Exploring stress among women in male-dominated industries: The role of gender bias. Journal of Gender Studies, 32(4), 456-473. https://doi.org/10.1080/09589236.2023.1825691.
6. Tang, H., & Xu, X. (2023). The impact of perceived gender discrimination on job performance. Journal of Education, Humanities and Social Sciences, 22, 734-748.
7. Walker, D., & Taylor, M. (2022). The glass cliff and the burden of leadership: Gender bias in corporate leadership positions. Journal of Business Ethics, 174(3), 451-463. https://doi.org/10.1007/s10551-022-04914-x.
8. Smith, L., & Brown, J. (2022). Leadership ambitions: Gender bias and the lack of motivation for women to pursue top positions. Gender and Leadership Review, 18(1), 45-60. https://doi.org/10.1002/glr.2020.57
9. Patel, K., & Singh, L. (2021). The impact of gender bias on organizational commitment: A study of women in leadership roles. Journal of Business and Psychology, 36(2), 141-157. https://doi.org/10.1007/s10869-020-09756-4.
10. Johnson, M., & Greene, T. (2021). Enthusiasm in the face of gender bias: How women's motivation is impacted by workplace discrimination. Journal of Vocational Behavior, 118, 103441. https://doi.org/10.1016/j.jvb.2020.103441
11. Catalyst. (2021). Women in Management. Retrieved from Catalyst

12. Williams, D., & Collins, L. (2021). Intersectionality and the double burden of gender and racial bias: A study on women of color in corporate America. Journal of Diversity and Inclusion, 20(4), 239-256. https://doi.org/10.1016/j.jdi.2021.05.007.
13. Larkin, A., Thompson, R., & Campbell, P. (2020). Stress in the workplace: Gender bias and its impact on women's mental health. Journal of Occupational Health Psychology, 25(3), 334-345. https://doi.org/10.1037/ocp0000214.
14. O'Connell, P., & Brady, A. (2020). Gender bias in career advancement: A study on its effects on women in corporate sectors. Work, Employment and Society, 34(5), 765-784. https://doi.org/10.1177/0950017020939013.
15. U.S. Bureau of Labor Statistics. (2020). Highlights of women's earnings in 2020. Retrieved from U.S. Bureau of Labor Statistics.
16. Catalyst. (2020). Women CEOs of the S&P 500. Retrieved from Catalyst
17. Radhakrishnan, R. (2019). Enhancing women's well-being: The role of psychological capital and perceived gender discrimination. Frontiers in Psychology, 10, 2405.
18. Sharma, N., & Kaur, R. (2019). Impact of gender discrimination on workplace variables. i-manager's Journal on Management, 13(3), 21-28.
19. Evans, C., & Harris, R. (2019). Gender bias and organizational commitment: The impact of perceived gender discrimination on women's attachment to their organizations.
20. Siddiqui, D. A., & Bhatti, N. (2018). Gender discrimination in workforce and its impact on the employees. Pakistan Journal of Commerce and Social Sciences, 12(3), 849-867.
21. Williams, J. C., &Multhaup, M. (2018). The effects of gender roles, implicit bias, and stereotype threat on the lives of women: A literature review. The Science of Equality, 2, 1-59.
22. Williams, J. C., &Multhaup, M. (2018). The effects of gender roles, implicit bias, and stereotype threat on the lives of women: A literature review. The Science of Equality, 2, 1-59.
23. American Psychological Association. (2017). Job stress across gender: The importance of emotional and intellectual demands and social support in women. Journal of Applied Psychology, 102(3), 356-374.

24. International Labour Organization. (2017). Breaking barriers: Unconscious gender bias in the workplace.
25. Ellemers, N., Rink, F., Derks, B., & Ryan, M. K. (2012). Women in high places: When and why promoting women into top positions can harm them individually or as a group (and how to prevent this). Research in Organizational Behavior, 32, 163-187.
26. Elsesser, K. M., & Lever, J. (2011). Does gender bias against female leaders persist? Quantitative and qualitative data from a large-scale survey. Human Relations, 64(12), 1555-1578.
27. Barreto, M., Ryan, M. K., & Schmitt, M. T. (2009). The Glass Ceiling in the 21st Century: Understanding Barriers to Gender Equality. American Psychological Association.
28. O'Neil, D. A., Hopkins, M. M., & Bilimoria, D. (2008). Women's careers at the start of the 21st century: Patterns and paradoxes. Journal of Business Ethics, 80(4), 727-743.
29. Journal of Hewlett, S. A., & Luce, C. B. (2006). Extreme Jobs: The Dangerous Allure of the 70-Hour Workweek. Harvard Business Review, 84(12), 49-59.
30. Schaufeli, W. B., & Bakker, A. B. (2004). Job demands, job resources, and their relationship with burnout and engagement: A multi-sample study. Journal of Organizational Behavior, 25(3), 293-315.

Sawitri Devi
Research Scholar
Dept. of Management, (IMSAR)
M. D. University, Rohtak

Rajkumar
Professor
Dept. of Management, (IMSAR)
M.D. University, Rohtak

❑ ❑ ❑

Challenges and Growth Potentials of Tourism Industry in Mizoram

● Sushovan Mondal

Tourism is regarded as a vital industry in the 21st century, offering immense opportunities for income and employment generation. Mizoram possesses immense and distinctive tourism potential, because of its natural beauty and untouched natural forests, rolling hills, pleasant climate which can be the potential destinations for eco-tourism and adventure tourism to the domestic and foreign tourists. Despite these prospects, the tourism sector in the state faces numerous challenges, resulting in limited progress of the tourism industry in the state. This article is an attempt to explore the present scenario of the tourism in the state, the major challenges and the opportunities of the tourism industry in Mizoram.

Keywords : *Income and employment, Problems & Prospects, Potential, Tourism.*

Introduction:

Mizoram, the 23rd state of India constituted on the 20th February,1987, is the land of Highlanders, or the Mizos, lies in the southernmost part of the north eastern states. Manipur, Assam and Tripura bound this little state, but a part of it slips down between Myanmar and Bangladesh. The geographical area of Mizoram is 21,087 Sq. km with a population of 10, 91,014. The state has eight districts with Aizawl as its capital city. In Mizoram there are 830 villages amongst which 719 villages are inhabited and 111 villages are uninhabited. Being a hilly state, Mizoram is very fortunate with its natural beauty.

Objectives of the study

- ➢ To highlight the present scenario of tourism in Mizoram.
- ➢ To unearth the problems which affect the tourism industry of Mizoram
- ➢ To assess the potentialities and prospects of tourism in Mizoram.

Methodology:

The present study is a descriptive study based on both primary and secondary data. Primary from the lodge owner, Transport services Provider, Tour Operators and local people. Along with this, feedbacks of tourists of Mizoram were collected from the Tour Operator, Hotels etc.

Secondary data were collected through government reports, academic journals, academic articles related to the subject.

District wise tourist destinations in Mizoram:

The state of Mizoram has several famous tourist spots in different districts which attract the potential domestic and foreign tourists in the recent times.

Table-1: District wise famous tourist spots

District	Aizwal	Champhai	Kolasib	Lawngtlai	Lunglei
Name of Tourist spot	Bara Bazar, Mizoram State Museum, Solomon Temple, State Museum at McDonald Hill, Science Center, Beraw Tlang, Aizawl Zoological Park, Lungverh, KVI Handloom and Handicraft Sales Emporium, Zarkawt , Martyr's Memorial, Luangmual, Muthi Hilltop	Murlen National Park, Mura Puk, Rih dï, Thasiama Seno Neihna, Mizo Hlakungpui Mual, Lamsial Puk, Hnahlan, Zokhawthar, Lianchhiari Tlangabout, Tan Tlangis	Bairabi Hydel Project, Research Station, Tlawng River, Phawngpui, Vairengte, Tamdil	Ngengpui Wildlife Sanctuary	Zobawk Sports Academy, Kawmzawl Park, Khawnglung Wildlife Sanctuary

Source *: Annual Report Mizoram 2014-15, Ministry of Tourism, Govt. of India.*

Tourist Arrival & Revenue Generation:

In last five years, the number of domestic and foreign tourists visit in Mizoram have been increased and thereby increases the revenue earning. The number of domestic tourists shows a consistent increase over the years, except in 2013, where there was a slight decline compared to 2012 and thereby the overall growth was approximately 19.1%, from 2010 to 2014. Despite fluctuations in the arrival of foreign tourists , there was a modest increase from 731 in 2010 to 836 in 2014, representing an overall growth of about 14.4%.

Table- 2 : Numbers of Domestic & Foreign Tourist Arrival to Mizoram

Year	Domestic Tourist Arrival	Foreign Tourist Arrival (FTA)	Total Tourist Arrival
2010	57292	731	58023
2011	62174	658	62832
2012	64249	744	67005
2013	63377	800	66190
2014	68203	836	71053

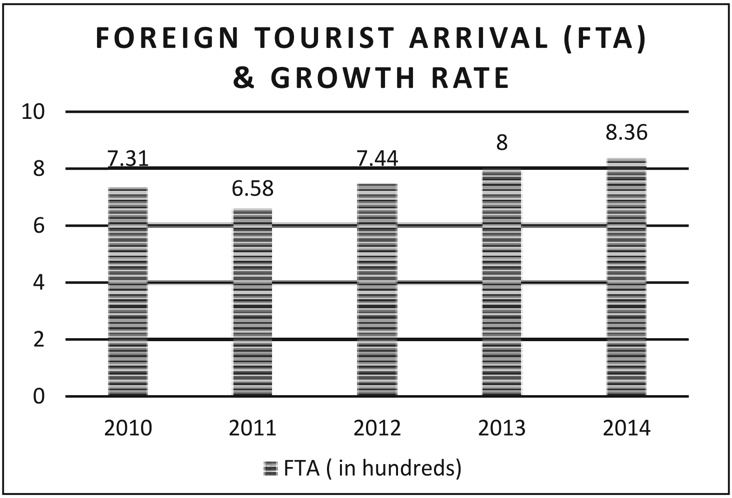

Source: India Tourism Statistics 2011 & Annual Report Mizoram 2014-15, Ministry of Tourism, Govt. of India.

Not only the arrival of domestic and foreign tourist increased in the last few years, data reveals that the revenue earning from the tourist lodge, highway restaurant, picnic spot also increased. The table-3 presents data on revenue collected from three key sources in Mizoram's tourism sector—Tourist Lodges, Highway Restaurants, and Picnic Spots—over seven financial years from 2008-09 to 2014-15. Revenue from tourist lodges consistently increased from ₹105.79 lakhs in 2008-09 to a peak of ₹213.2 lakhs in 2013-14, before declining slightly to ₹197.4 lakhs in 2014-15. Revenue from highway restaurants shows a gradual increase until 2012-13, after which it saw a sharp rise, reaching ₹24.55 lakhs in 2013-14 and slightly declining to ₹24.17 lakhs in 2014-15.

Table- 3 : Revenue collected from Tourism in Mizoram (Year-wse)

Year	Revenue Collected from			Total (in lakhs)
	Tourist Lodge (in lakhs)	**Highway Restaurant** (in lakhs)	**Picnic Spot** (in lakhs)	
2008 - 09	105.79	4.67	0.71	111.17
2009 - 10	117.01	5.47	1.02	123.5
2010 - 11	141.53	5.59	1.03	148.15
2011 - 12	147.23	5.49	0.91	153.63
2012 - 13	157.71	12.92	1.01	171.64
2013 - 14	213.2	24.55	1.32	239.07
2014 - 15	197.4	24.17	1.3	222.87

Source: Director, Tourism Department, Mizoram (as on 2015).

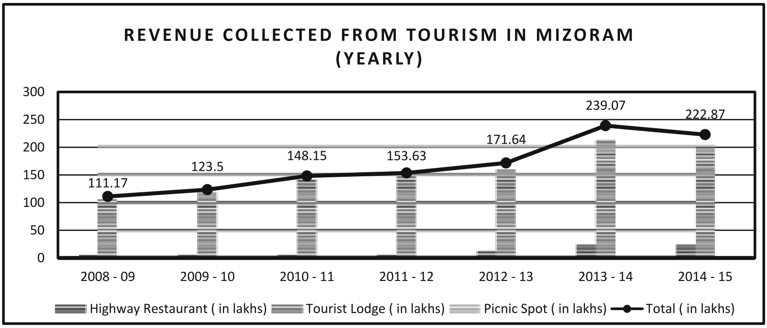

Total revenue increased steadily from ₹111.17 lakhs in 2008-09 to a peak of ₹239.07 lakhs in 2013-14, followed by a slight decline to ₹222.87 lakhs in 2014-15. Over the seven years, total revenue grew by approximately 100%.

The following table (Table-4) provides an overview of tourism-related infrastructure across districts in Mizoram, highlighting the distribution of tourist and picnic spots, highway restaurants, tourist lodges, and available accommodation facilities. There are 42 tourist spots distributed unevenly across districts, with Champhai having the highest number (12), followed by Aizawl (10).

Aizawl, the capital, dominates in infrastructure with the highest number of picnic spots, tourist lodges, rooms, and beds, making it the primary hub for tourism in Mizoram. Champhai also has significant tourism infrastructure, particularly in tourist spots and lodges. Districts like Saiha and Serchhip have limited facilities, highlighting the need for development to balance tourism opportunities across the state. Overall, the data reflects a concentration of tourism facilities in select districts, with opportunities to expand infrastructure in underdeveloped areas to promote more equitable tourism growth across Mizoram.

Table 4 : District-wise Number of Tourist Spots, Tourist Lodges, Availability of Rooms and Beds

District	No. of Tourist Spots	No. of Picnic Spots	No. of Highway Restau-rants	No. of Tourist Lodges	Total No. of Rooms	Total No. of Beds
Mamit	3	–	–	4	37	73
Kolasib	3	–	1	4	42	94
Aizawl	10	2	–	8	121	249
Champhai	12	–	–	6	64	132
Serchhip	2	–	2	2	40	75
Lunglei	5	–	3	6	64	136
Lawngtlai	3	–	–	5	48	102
Saiha	4	–	1	1	20	40
Total:	42	2	7	36	436	901

Source : *Director, Tourism Department., Mizoram.(as on 2015).*

Challenges of tourism industry in Mizoram

Mizoram possesses immense and distinctive tourism potential, capable of generating income and employment opportunities. Despite these prospects, the tourism sector in the state faces numerous challenges, resulting in limited progress. Research highlights that a significant obstacle is the lack of infrastructure, which hampers the ability to attract both domestic and international tourists. Mizoram's remote location and inadequate transportation networks, particularly poor road infrastructure in rural areas where many tourist attractions are located, further exacerbate the problem. While the capital city, Aizawl, is connected to other northeastern states, the roads leading to key tourist destinations outside the city are not up to standard.

Accommodation options are another major limitation. The availability of quality hotels and guesthouses, particularly outside Aizawl, is insufficient to meet the needs of tourists. Recent data indicates that the number of accommodations falls far short of the number of tourists visiting Mizoram. The requirement for an Inner Line Permit (ILP) for non-residents, including Indian citizens from other states, acts as a bureaucratic hurdle that discourages potential tourists. This is especially problematic when neighboring northeastern states like Sikkim and Meghalaya offer easier access, making Mizoram less appealing as a tourist destination.

Despite its rich cultural heritage and stunning natural beauty, Mizoram's tourism potential remains underdeveloped due to insufficient promotion. Many people across India and abroad are unaware of the state's tourist attractions due to inadequate publicity efforts. Language barriers also pose challenges for tourism in Mizoram. While English is widely spoken in urban areas, the majority of the population in rural regions primarily speaks Mizo, creating communication difficulties for tourists. These issues collectively hinder the growth of Mizoram's tourism sector.

Prospects of Tourism in Mizoram:

Despite its challenges, Mizoram holds immense potential for eco-tourism and adventure tourism. The state's pleasant climate, untouched natural forests, rolling hills, and picturesque valleys are its primary attractions. Eco-tourism, a relatively new concept, can thrive in Mizoram due to its lush green forests, majestic blue hills,

and serene rivers, aligning with its dual goals of environmental conservation and community welfare.

Mizoram's iconic blue hills offer opportunities for adventure sports such as trekking and rock climbing, which can generate significant employment. The scenic beauty and pristine environment of many villages make them ideal for promoting village tourism, provided the government takes appropriate measures. Additionally, Mizoram’s international borders with Myanmar and Bangladesh provide an avenue to attract foreign tourists from these neighboring countries.

Conclusion:

While Mizoram possesses substantial tourism potential in eco-tourism, adventure tourism, and cultural tourism, it faces several challenges such as inadequate infrastructure, regulatory barriers like the ILP, limited promotion, and socio-cultural issues. However, with a well-structured tourism development policy, improved infrastructure, and active cooperation and awareness among the local population, Mizoram can achieve sustainable tourism. This would protect the environment, preserve cultural heritage, and foster growth tourism industry of the state.

References

- Bhattacharya, P. (2004): Tourism in Assam: Trends and Potentialities, pp 277-278, Bani Mandir, Guwahati.
- Burman, G. (2005): The North East India’s Best Kept Secret, a Travel Handbook for North Eastern Region, pp 98-107, S.A.D. Enterprise, Guwahati.
- Deka, G. and R. Ramthara (2009): Tourism in Mizoram and its present status, pp 46-54 GEOGRAPHIC, Vol. 4, July, 2009.
- Fernandes, W. and Bharali, G. (2008): Customary Law-Formal Law Interface: Impact on Tribal culture Christianity and Change in Northeast India, New Delhi: Concept Publishing Company.
- Govt. of India (2008): Annual Report 2007-08, Incredible India, Ministry of Tourism.
- Govt. of Mizoram (2008): Statistical Hand Book of Mizoram, 2008, Economic and Statistics Department, Govt. of Mizoram.

- Joshi, H.G. (2005): Mizoram, Past and Present, Mittal Publication, New Delhi.
- Ministry of Tourism, Govt. of India : Annual Final Report of Toursism Survey for the state of Mizoram (March 2014-Feb 2015).
- Pachuau, Rintluanga (2009): Mizoram, A study in Comprehensive Geography, Northern Book Center, New Delhi.
- Tribe, J. (2006): The truth about tourism, Annals of Tourism Research. 33(2), 360-381.

Sushovan Mondal

Assistant Professor

Department of Economics

Cooch Behar College

Cooch Behar, West Bengal

❑ ❑ ❑

Consumer Protection In The Digital Marketplace

• **Dr. Shiv Shankar Vyas**

The rise of the digital marketplace has revolutionized commerce, enabling consumers to access a vast range of products and services with unprecedented convenience. Online shopping platforms, digital payment systems, and e-commerce websites have expanded global trade, making it easier for businesses to reach customers across borders. However, alongside these advantages, the digital marketplace presents numerous challenges concerning consumer protection. Fraud, misleading advertisements, data privacy breaches, cybersecurity threats, and unfair trade practices have made it imperative to establish robust consumer protection mechanisms. Governments, policymakers, and regulatory authorities worldwide have recognized the need to implement stringent laws and regulations to safeguard consumer interests in the digital space. This article explores the legal frameworks governing consumer protection in the digital marketplace, examines the challenges faced by consumers, and discusses the role of emerging technologies in addressing these concerns.

Evolution of Consumer Protection Laws in the Digital Era

Consumer protection laws have evolved significantly in response to the challenges posed by the digital marketplace. Traditional consumer laws were primarily designed for offline transactions, focusing on aspects such as product liability, warranty, unfair trade practices, and consumer rights. However, with the advent of e-commerce, these laws required adaptation to address new issues, including online fraud, data breaches, and the role of digital intermediaries.

In India, the Consumer Protection Act, 2019, was enacted to replace the outdated Consumer Protection Act, 1986. The new

legislation incorporates specific provisions to address digital transactions and online consumer grievances. It introduces concepts such as product liability, misleading advertisements, and the establishment of a Central Consumer Protection Authority (CCPA) to oversee consumer rights in the digital marketplace. Similarly, other countries have implemented comprehensive consumer protection laws tailored to the challenges of online trade. The European Union's General Data Protection Regulation (GDPR) has set a benchmark for data privacy and consumer rights, compelling businesses to ensure transparency and accountability in handling personal data. The United States follows a fragmented approach, with different federal and state laws governing online consumer protection, such as the Federal Trade Commission (FTC) Act and the California Consumer Privacy Act (CCPA).

Major Challenges in Consumer Protection in the Digital Marketplace

One of the most significant challenges in the digital marketplace is fraudulent activities. Online scams, phishing attacks, counterfeit products, and deceptive marketing tactics exploit consumers who lack adequate knowledge or legal recourse. Many consumers fall victim to fake e-commerce websites that disappear after collecting payments, leaving them with no means to seek redress. The anonymity provided by the digital space often allows fraudulent actors to operate with impunity, making regulatory enforcement a complex task.

Another pressing issue is data privacy and cybersecurity. Consumers share vast amounts of personal information while making online purchases, subscribing to services, and using digital payment methods. This data is often collected, stored, and used by companies for targeted advertising and other commercial purposes. However, data breaches and unauthorized access to personal information pose significant threats, leading to identity theft, financial fraud, and invasion of privacy. Incidents such as the Cambridge Analytica scandal highlighted the risks associated with the misuse of consumer data by corporations and third parties. Governments worldwide have introduced data protection regulations to ensure that businesses implement stringent measures to protect consumer information and provide transparency in data handling practices.

Misleading advertisements and unfair trade practices further exacerbate consumer vulnerability in the digital marketplace. Many

online sellers use deceptive marketing strategies, such as fake reviews, exaggerated product descriptions, and hidden costs, to manipulate consumer choices. The lack of proper disclosure regarding terms and conditions, return policies, and additional charges often leads to consumer dissatisfaction and disputes. Additionally, the proliferation of digital influencers and social media endorsements has blurred the lines between genuine recommendations and paid promotions, making it difficult for consumers to distinguish authentic information from sponsored content.

Another critical challenge is the lack of transparency in digital transactions. Many online platforms operate without clear accountability, making it difficult for consumers to identify responsible parties in case of disputes. E-commerce marketplaces often serve as intermediaries rather than direct sellers, leading to confusion regarding liability for defective products, delays, and non-delivery issues. In cross-border transactions, jurisdictional complexities further complicate dispute resolution, as different legal frameworks govern different regions, leaving consumers with limited legal recourse.

Cybercrime is another growing threat in the digital marketplace. Hackers and cybercriminals exploit vulnerabilities in online payment systems, leading to financial losses for consumers. Ransomware attacks, credit card fraud, and phishing schemes continue to evolve, making it essential for regulatory bodies to enhance cybersecurity infrastructure and promote consumer awareness. The increasing use of artificial intelligence (AI) in digital commerce also presents new challenges, such as algorithmic bias, automated fraud, and unethical data mining practices, which require stringent oversight and regulation.

Consumer redress mechanisms in the digital marketplace are often inadequate. Many consumers struggle to resolve disputes due to inefficient customer service, complex refund policies, and a lack of clear communication from online sellers. Unlike traditional retail stores, where consumers can physically visit a seller for redress, online platforms often rely on automated responses and lengthy grievance processes, leaving consumers frustrated and helpless.

Role of the Judiciary in Consumer Protection

The judiciary plays a crucial role in ensuring consumer protection in the digital marketplace by interpreting and enforcing consumer protection laws, adjudicating disputes, and setting legal

precedents. Courts have been instrumental in expanding the scope of consumer rights, holding online platforms accountable for unfair trade practices, and ensuring compliance with regulatory frameworks.

Several landmark judgments have shaped consumer protection in the digital space. In India, Amazon Seller Services Pvt. Ltd. v. Amway India Enterprises Pvt. Ltd. (2019) clarified the liability of online marketplaces for third-party sellers' goods. In Tata Sky Ltd. v. TRAI (2020), the Supreme Court upheld consumer rights regarding transparency in digital service pricing. Internationally, the European Court of Justice’s ruling in Google Spain SL v. Agencia Española de Protección de Datos (2014) reinforced the 'right to be forgotten' under GDPR, ensuring consumers' control over personal data. The Federal Trade Commission v. Wyndham Worldwide Corp. (2015) in the U.S. set a precedent for corporate responsibility in cybersecurity breaches affecting consumers.

Judicial activism has further contributed to the evolution of consumer protection mechanisms, with courts mandating stricter regulations on digital advertising, product warranties, and online dispute resolution. The judiciary continues to play a pivotal role in bridging legal gaps, addressing emerging challenges in the digital economy, and ensuring that consumers have effective legal remedies against exploitation in the digital marketplace.

Legal Framework for Consumer Protection in the Digital Marketplace

Several international and national legal frameworks aim to safeguard consumer rights in the digital marketplace. In India, the Consumer Protection Act, 2019, provides a robust mechanism for addressing consumer grievances, including provisions for e-commerce transactions, product liability, and penalties for misleading advertisements. The Act also introduces the concept of e-filing of complaints, enabling consumers to seek redress through online dispute resolution mechanisms.

The GDPR in the European Union plays a crucial role in protecting consumer data privacy by imposing strict regulations on businesses collecting and processing personal information. Companies operating within the EU or dealing with EU consumers must comply with GDPR guidelines, ensuring transparency in data collection, the right to access personal data, and the right to be

forgotten. Non-compliance results in hefty fines, making it one of the most stringent data protection laws globally.

The Role of Technology in Enhancing Consumer Protection

While technology has contributed to the challenges faced by consumers, it also offers innovative solutions for enhancing protection. Artificial intelligence (AI) and machine learning can be used to detect fraudulent activities and identify counterfeit products. For instance, Amazon employs AI algorithms to monitor its marketplace and remove suspicious listings. Block-chain technology, with its decentralized and transparent nature, can also play a crucial role in ensuring the authenticity of products and securing transactions.

Moreover, digital platforms can leverage technology to improve dispute resolution mechanisms. Online mediation and arbitration services, such as those offered by the Better Business Bureau (BBB), provide consumers with accessible and efficient avenues for resolving disputes. These platforms can reduce the burden on traditional legal systems and ensure timely justice for consumers.

Recommendations

1. Strengthening regulatory frameworks and enforcement mechanisms to ensure strict compliance with consumer protection laws in the digital marketplace.
2. Enhancing transparency in e-commerce transactions by mandating clear disclosure of terms, conditions, refund policies, and additional charges.
3. Implementing stringent data privacy laws to protect consumer information from unauthorized access and misuse.
4. Promoting consumer awareness programs to educate consumers about online fraud, phishing scams, and cybersecurity risks.
5. Encouraging e-commerce platforms to adopt fair trade practices, including genuine customer reviews, responsible advertising, and ethical data usage.
6. Strengthening international cooperation to address cross-border consumer protection challenges and streamline dispute resolution mechanisms.

7. Establishing specialized consumer redress forums for digital transactions to expedite grievance handling and improve customer service standards.
8. Leveraging technology, such as AI-driven fraud detection systems, to identify and mitigate fraudulent activities in the digital marketplace.

Conclusion

Consumer protection in the digital marketplace is a critical issue that requires a multi-faceted approach involving legal, technological, and educational interventions. Ensuring that consumers can confidently engage in online transactions without fear of exploitation will not only enhance trust but also drive the sustainable growth of the digital economy.

References

1. Consumer Protection Act, 2019 (India).
2. General Data Protection Regulation (GDPR), European Union.
3. Amazon Seller Services Pvt. Ltd. v. Amway India Enterprises Pvt. Ltd. (2019).
4. Google Spain SL v. Agencia Española de Protección de Datos (2014).
5. Federal Trade Commission v. Wyndham Worldwide Corp. (2015).
6. Tata Sky Ltd. v. TRAI (2020).
7. Spokeo Inc. v. Robins (2016).
8. Carpenter v. United States (2018).
9. California Consumer Privacy Act (CCPA), United States.
10. Federal Trade Commission Act (FTC Act), United States.
11. European Commission, "Consumer Rights Directive," https://ec.europa.eu/info/law/law-topic/consumer-protection-law/consumer-rights-directive_en.
12. Federal Trade Commission, "Consumer Sentinel Network Data Book 2021,"

Dr. Shiv Shankar Vyas
Assistant Profeser
Gov Law College Bikaner

❑ ❑ ❑

"Role of Artificial Intelligence And Information Communication Technology In Agriculture"

Dr. Sanjay Kumar • Nikhilesh Rai

The purpose of this study is to analyze the utiligation of artificial intelligence to support climent smart agriculture in India. This paper involve in descriptive analysis which focused on the role of AI, how it transform the life of farmer, how it leads to change in the agriculture operation, awareness of the farmer and scope of the AI, in climent smart agriculture. The digital world that we stand today is due to the different advancement in automation and science, modernization and latest innovation. The automation in agriculture is the main concern and the emerging subject across the world. The population in increasing tremendously and with this increase the demands of food and employment is also increasing. AI in smart agriculture has bought and agricultural revolution. The main concern of this paper is to audit the various applications of AI in agricultures such as for irrigation, sparing, weeding with help of sensor and others embedded in robots and drone. This technology save to excess use of water, pesticide, herbicides maintain the fertility of the soil, also help in the efficient use of man power and elevate the productivity and improve the quality. This paper present insights on the various application of technology advancement in agriculture such as digital agriculture, smart farming or internet of agriculture technology (IoAT), crop management, crop protection with the importance of ICT in climent smart agriculture farming and focus on improving the life of the rural poor by introducing various new technology to them for developing more relevant and rapidly functioning technologies.

Keywords : *ICT, artificial intelligence, digital agriculture, IoAT, smart farming.*

1. Introduction :

The agriculture sector farms only about 18% of Indian GDP despite employing almost 65% of the total work force. The use of ICT and AI is very important as a pillar of agricultural expansion in the current state a world that is changing very rapidly has been recognized as the basis of the process for providing information and tools as input for modern smart climent agriculture. The potential contribution of ICT and AI to agriculture can be viewed through cost reduction, increase of efficiency and productivity improvement should be analysis and documented and then adequate information system should be developed (Samah, et 2009) in India, consliltation paper on the Indian digital ecosystem of agriculture (IDEA) from the ministry of agriculture and farmers welfare (MoA & FW) was released which talks about a digital revolution in the agriculture sector.

Bruinsma (2017) examined that the adoption of technology in agriculture has significantly increase agricultural productivity. This technology including digital tools and there innovation, such as aerial imagery, drones, satellite, sensors, that internet of things, mobile application among others have automated farming and transform it into a data driven industry as farmers can now mange there farms and cropping activities on real time and with much ease.

Research study revile that ICT & AI has reformed traditional agricultural system and made significant contribution in increasing and agricultural productivity and sustainability by empowering farmers with the correct information at the right time and place. Information and communication technology and artificial intelligence will a play a key role in knowledge exchange, targeted recommendation market integration and access to finance to make agriculture a profitable enterprise and attractive for youth, digital agriculture can be defined as ICT & AI ecosystem to support the development and delivery of timely, targeted information and service to make family protectable and sustainable while delivering safe nutrition's and affordable food for all.

2. Objective of study

- To study various modern technology used in improving agriculture productivity.

- To analysis the importance and impact of modern technology in agriculture

3. Role of ICT & AI in climent smart agriculture

The potential of ICT in agricultural sector can be used on two ways directly where ICT used as tool that contributed directly to pre activity of agricultural production and indirectly, where ICT is used the tool that provides information to farmers for making quality decision in efficient management of their enterprises, combined with IoAT and big data, AI, particularly in the fact of machine learning and deep learning is regarded as one of the key drives behind the digitalization of agriculture. These technology have the potential to enhance crop production and improve real time monitoring, harvesting, processing and marketing. Technology in agriculture has the potential to truly lead India to be "ATMANIRBHAR BHARAT" in all respect and be less dependent on extraneous factors.

4. Technology used in smart agriculture:

● Digital agriculture

Digital agriculture is the use of new and advanced technologies integrated into one system to enable farmers and others stock holders within the agriculture vale chain to improve food production. Digital agriculture help farmer in maintaining their inherent agriculture practices and at the same time provide useful information to update their knowledge and skill. Agricultural automation system including field machinery, irrigation system, green house automation, animal automation system and automation of food production system help in achieving enhance crop yield.

● Smart agriculture

Smart agriculture provide farmers with a diverse set of tools to address serval agricultural food production challenges associated with farms productivity, food security, environmental impact and sustainability. Likewise, a wide variety of production status, water management, weed control, crop production status, soil conditions, irrigation scheduling, herbicide and pesticide and controlled environment agriculture can be monitored and analyzed in smart agriculture to enhance product quality.

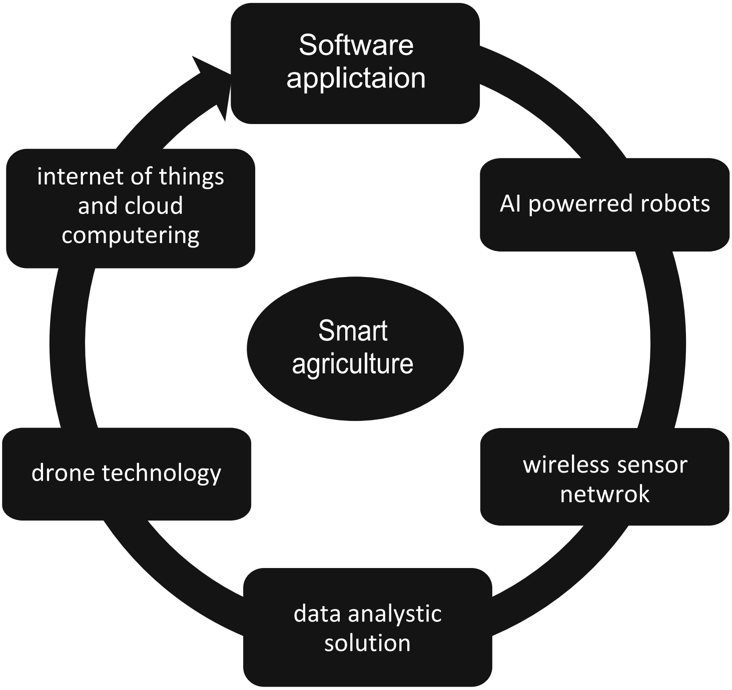

● **E-Agriculture**

E-agriculture involves the conceptualization, design, development, evaluation and application of innovative ways to use information and communication technology in the rural domain, with a primary focus on agriculture.

● **Smart climent farming**

Smart climent farming is a development that emphasizes the use of information and communication technology in the cyber physical farms management cycle, smart farming represent the application of modern information and communication technology into agriculture, leading to what can be called a third green revolution. Smart farming models are founded to be more generic ease to understand and ease to adapt by the farmer.

5. Advancement and limitation of ICT and AI in smart agriculture

There is no doubt that improved information flow has positive effect on the agricultural sector and individual producer, but gathering and distribution of information that is available to all stake holders in agriculture sector and for reduction of information distribution cost to all interested users

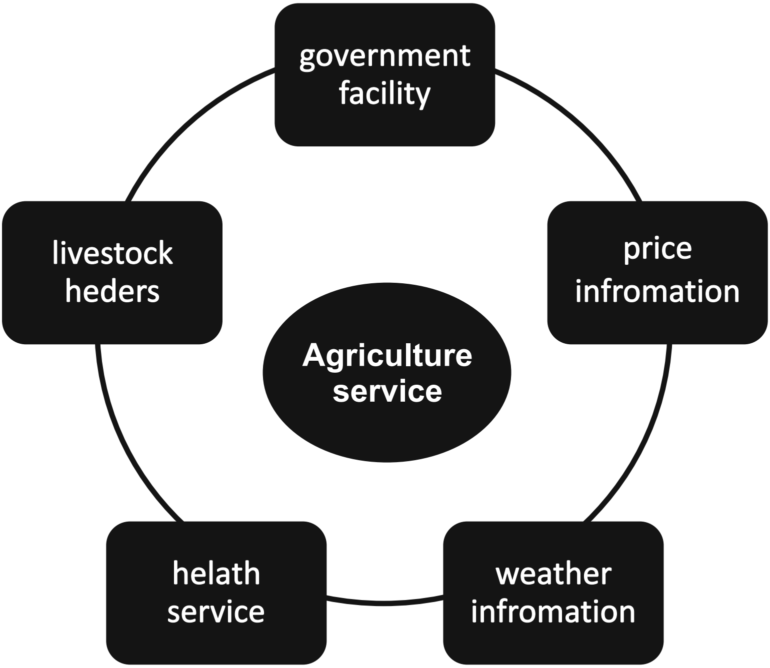

Lack of awareness about benefit of ICT and uncoordinated and chaotic development of system, easiness of system use and language barriers, high cost of maintenance, environment related harms etc.

6. Conculasion

An effective relationship between ICT & AI with smart agriculture will lead to sustainable agriculture through the preparation of timely and relevant agriculture information which can provide farmer with the right information in the decision making process to increase their productivity. ICT & AI can improve

farmer accessibility quickly to market information, production inputs, consumer trends which positively impact the quality and quantity of farmer production. ICT & AI also able to help farmer's performance with a variety of innovation tools to assists farmers in carrying out there farming activities such as seed dispersing drones, so that effective and efficient agriculture can occur. Because the presence of ICT in the agricultural industry can make prediction more accurately, with various source and decision support system and expert system that can be developed to support farmers in the decision making process. Hence, smart and digital agriculture will also help achieve the objective of the national security act in the most efficient, effective and equitable manner to insure all have access to safe, nutrition's and affordable food.

References:

Chhachhar, A.R. & Ahmed, S. (2014), impact of information and communication technologies in agriculture development. **Journal of basic and applied scientific research** , Vol. 4(1), pp. 281-288.

Mahant , M. & Patel Dinesh (2012) uses of ICT in agriculture, **international journal of advanced computer research,** Vol. 2 (1), No. 46.

Shyam, R (2015), ICT and E-agriculture, **international journal of advance technology in engineering and science,** Vol. 2 (1), No. 4, May 2015.

Singh, S & Sanwal, S (2017), role of ICT in agriculture : policy implication, **Oriental journal of computer science and technology,** Vol. 10, No. 3, pp. 691-697.

Dr. Sanjay Kumar
Professor
Department of Sociology
N.A.S. P.G. College, Meerut
sanjaysociology@gmail.com

Nikhilesh Rai, (UGC NET)
Research Scholar
Department of Sociology
N.A.S. P.G. College, Meerut
nikhileshrai8@gmail.com

❑ ❑ ❑

Chinese Policies towards North Korea : No Scheme and Regulation

• **Rachit Bharadwaj**

This article had not unfocussed upon Chinese policies towards North Korea which had not been invisible in the form of 'no scheme' and 'no regulation.' However, no enmity, animosity, and hostile attitude towards North Korea was apparent by China despite historical wars that were fought between them particularly from Sui dynasty to the present scenario because China do not want to dwell on its past for forging relations. Chinese putid behaviour towards North Korea and vice-versa in their respective policies during ancient, medieval, modern and contemporary times were not irresponsible for China's policies towards North Korea. China was unable to 'frame no policies' towards North Korea particularly from 2001 till 2017 due to historical wars consciousness and she resisted neither for nor against maintaining any sort of relations with North Korea, a Chinese policy. They had different methods of movement in economic domain. Policy co-ordination and co-operation was absent in their relations except to stand against India and Japan, follow Dr. Sunyat Sen's diplomatic style, respect foreign powers decisions and providing resistance to non-dispersion approach in traditional normal security issues and challenges. They had lost affection in their relations because of their selfish national interests and developmental priorities. No policies existed between them, hence, there was no room for each other in their relationship. If there was some interaction between them, that was basically for their reputation's sake only. Inductive methodology had not been unused. The findings revealed that 'no scheme' and 'no regulation' was apparent in Chinese policies towards North Korea and there was no room for each other in their ties due to the increased hostility and animosity due to historical wars, however, Dr. Sunyat Sen's diplomatic style remained a valuable and an important solution for their sinking relations.

Keywords : *China, North Korea, and Policies.*

Introduction

This article is an attempt to know Chinese putrefied policies towards North Korea. China's ties were solid with North Korea because of eternal resistance to Japan, following Dr. Sunyat Sen's diplomatic style, accepting positive role of the foreign powers and resistance to non-dispersion approach in traditional security issues and challenges. They also became valuable friends to counter India at regional, international and global levels. On the contrary, the ancient history of their relationship depicted an entirely different picture about their ties which were not friendly. No amiability was apparent in their ties since earliest times. No apparent enmity, animosity, and hostile attitude existed between them because of historical wars that were fought between them particularly from Sui dynasty to the present scenario. Chinese putid behaviour towards North Korea and vice-versa in their respective policies during ancient, medieval, modern and contemporary times were not irresponsible for China's policies towards North Korea. Thus, at few points their relations were cordial but largely there was 'no amicability' within their relations due to negative historical war consciousness. However, at present, China resisted to have any sort of relations with North Korea due to North Korea's weak foreign policies towards her. In other words, China had resisted neither to like nor dislike North Korea. At the same time, Chinese government resisted that there was negative impact of the War on the current policies which were fought particularly during Sui and Tang nominalist era. Consequently, China was an unfriendly friend of North Korea and vice-versa. It is not unclear that animosity and enmity had been increasing between them since Tang nominalist era vehemently. This attitude of China had not changed till now. However, Dr. Sunyat Sen's diplomatic style is one of the important points where they become friends as they both subscribed to his style to repair their relations and it had positive impact on rebuilding their relations, remained a solution to it. Otherwise, there was no framework of Chinese foreign policies towards North Korea.

No regulation and scheme were at the core of their foreign policies towards each other, a symbol of Chinese policies towards North Korea and vice-versa. China had been serving her national interests and development at the cost of disrespecting North Korea's national interests and development and vice-versa. However,

no trouble in their relations arrived when North Korea took the membership of NAM in 1975. However, China continued her 'No NAM(Non-alignment)' attitude towards North Korea and compelled North Korea to move on the path of 'No NAM' to have relations with China through her policies. North Korea took the membership of NAM in 1975. Since then, China had been forcing North Korea to leave the membership of NAM in an indirect manner. Consequently, giving rise to Chinese policies candidly.

North Korea's Goguryeo nullified Tang nominalist era and vice-versa

Historically, China had 'no warm' relations with North Korea because of number of wars which were fought between them since the advent of Sui dynasty in ancient period. North Korea's Goguryeo had defeated Tang nominalist dynasty of China. Tang had also defeated the People Goguryeo. Liaotung was conquered by Tang dynasty. The number of Wars were fought between them in the past. This historical consciousness of defeat by Goguryeo is still present amongst the North Korean people. Yellow emperor used to bow down and send gifts to Goguryeo dynasty leaders which depicted that North Koreans were hard on Chinese Yellow emperor and vice-versa. North Korea subdued China and Chinese were afraid of Goguryeo rulers. At present, Chinese are aware of the **'Goguryeo nationalism'** as well as **'Juche nationalism.'** These were two basic characteristics of North Korea which are still alive amongst common masses but had lost its significance due to Chinese policies towards her. Numbers of wars in the past had depicted that there was no policy co-operation and co-ordination between these two countries and the notion of habitual compliance was also missing. In general, Chinese policies do not delve on the past to foster relations with other countries, however, it was not applicable with respect to North Korea in the present scenario. Japanese were hard on China and North Korea from 1895 until 1945. Consequently, North Koreans were against the Japanese since 1895 to till date. China- North Korea had been friends to counter Japan but not wholly. Chinese policies towards North Korea were not irresponsible for loss of North Korea to Japan. Loss of Korea and Taiwan to Japan had proved the formulation of Chinese policies towards North Korea in 1895.

The Treaty of Shimonoseki in 1895: Symbol of Chinese policies towards North Korea

Japan fought China over the control of Korea in 1895. China was defeated by Japan and signed a humiliating treaty of Shimonoseki in 1895 where by China was humiliated which remained a symbol of Chinese policies towards North Korea. This treaty was a part of **'Century of humiliation'** that China witnessed. Due to this treaty, "Political and Cultural ties between the inhabitants of China and Taiwan were severed" (Shu-hui wu 1998: 160). Also, Japan had the control over Taiwan. If Chinese were united amongst themselves, then Japanese could have not controlled and exploited them and ruin the entire East Asia. China was defeated at the hands of Japan because of weak Chinese diplomacy, less nationalistic ideas and lack of unity factor. However, Dr. Sunyat Sen advocated for strong diplomacy in China at that time. The Qing empire was not concerned about the national interests and development of China. Thus, Dr. Sen decided to uproot the Qing empire and he was successful in doing so by 1911 during the Xinhai Revolution. By this time, Japan had already captured Taiwan and Korea.

Chinese nationalism in broad sense was installed in China by Dr. Sunyat Sen with People's nourishment and democratic values within China. Dr. Sen was a visionary. He could foresee Japan's malign intentions towards East Asia, her imperialistic attitude and corrupt Qing government in China as a threat to China. He also knew the fact that there was lack of unity amongst Chinese which was apparent from foreign rule of the Qing (Manchus) dynasty until 1911. Sun Zhongshan developed the idea of nationalism in broad sense amongst Chinese which was a part of his three known principles of "Min San Chu." However, Chinese policies had given no importance to broad ways of nationalism within mainland China. Consequently, they had become anomalist. Habitual compliance was at the core of Global Senism which was also not given importance by Qing government. Besides, no amalgamation of different ideas, philosophies and ideology had been at the core of Chinese policies as a result of which there was no regulation and change within their policies and was designated as naive. China continued to follow the same policies towards North Korea in the present scenario.

Chinese vehemently accused North Korea of not providing adequate aid, assistance, and support during first and Second Sino-Japanese Wars. Since then, Chinese suspicion and mutual distrust

over North Korea increased and is present till date. However, no impact of Rape of Nanking was apparent on their relations as it was short lived and this incident did not have much impact on their relations at that time. On the contrary, Kuomintang party of Dr. Sen stood for democratic values and freedom normally which remained basis for mutual trust and co-operation. Chinese putid behaviour towards North Korea was obvious as she accused China of not providing adequate aid and assistance in fighting Second Sino-Japanese war in 1937.

No diplomatic relations with North Korea were forged before 1949. China participated in the June Korean War of early 1950's to protect her national interests and development rather to support North Korea as she was already supported by then the powerful, Soviet Union. This depicted China- Soviet Union robust ties and mutual co-operation, trust and friendship. Also, North Korea was a satellite state of Stalin at that time and continues to be at present under vibrant leadership of the most powerful Russian President, Putin. China and North Korea had respected Joseph Stalin and his ideology in past, in the present and will continue to respect in future because his policies were rational and had served the interest of the entire world. "Stalin insisted on reducing tensions between the Koreas and avoiding Soviet involvement in the conflict, even though some Soviet military leaders preferred to take military action"(Shen Zhihua 2000 :48). Russia continued to stood by North Korea and she did stand by her during the first nuclear crisis situations in 1993 whereas China did not adequately.

Ten long years of vacuum in China-North Korea relations

Ten long years vacuum was apparent in China-North Korea relations from 1993 was apparent in their ties as North Korea joined NAM in 1975. No NAM members had disrespected North Korea and her membership in 1975. However, India had continuously condemned North Korea over her nuclear tests and considered it as a threat to regional security, particularly towards Japan and East Asia in general. This portrayed that North Korea was a no part of India. North Korea's entry into NAM depicted that India resisted the idea of neither liking nor disliking North Korea from 1975 and no isolation of North Korea was encouraged by Indian government. However, Indian faction had doubt about her membership because of her close relations to China. Therefore, India had doubt upon

North Korea policy behaviour as the possibility that China may use North Korea against her was high. China's ambitions to become regional Asian power could be shattered by India and threat to India and North Korea was China. China's intention was 'No NAM' membership to North Korea, an important cause of weakening of China-India ties. During these ten long years of vacuum in their relations many foreign countries such as Ireland and Russia came to assist North Korea.

'No Scheme' in Chinese policies towards North Korea

China continued to had hostile policies towards North Korea due to disastrous wars that were fought between them in the past and particularly since the advent of Sui dynasty and there had 'no scheme' to deal with North Korea and this trend was discernible in current policies of Xi Jinping also. However, Xi had not unapplied Dr. Sunyat Sen's diplomatic style to address North Korean challenges and whereby he had been successful.

Dr. Sunyat Sen's ideas were a part of Immanuel Kant's philosophical thinking. "Sun Yat-sen, a professional revolutionary whose career was characterized by both idealism and opportunism, was hardly concerned about the consistency of his political theories during his lifetime"(Yue Du 2019: 228). Dr. Sen had regard for the idea of "transcendental idealism" of Immanuel Kant as he considered it as complementary to the idea of "transcendental realism." "Sun yat-sen never came near the orderliness and philosophical clarity of an Immanuel Kant; he did not try to do so. He was both a philosopher and a man of action. To him philosophy was the guide to correct action and correct action was what his own beloved country had to have unless it were to risk downfall and oblivion" (Linebarger 1966: 07). Neo -realism theory had the capability to define China-North Korea relations. Chinese national interests were being served at the cost of the North Korean national interests. In other words, China comprised with the national interests of North Korea for her selfish interests and development. Basically, China kept close relations with North Korea to exploit natural resources of North Korea and to counter Japan and India to serve her energy requirements and security.

Sino-North Korean Normalisation?

"Expansion in social, cultural, educational, and people-to

people exchanges between the two countries has become another important theme in Sino-South Korean" (Xiaoxiong Yi 2002: 329). China normalised her ties with South Korea since 1992 and their ties had been moving in positive direction and it was not an issue in China-North Korea robust ties. However, due to no scheme and regulatory policies of China, she is unable to normalise her bond with North Korea and vice-versa. "If the PRC cannot secure a compliant, relatively reformist North Korea, it would likely strive to create a neutralized, reunified Korean peninsula under Seoul" (Dean Cheng 2018: 39). However, there had been 'no solution' and 'no direction' apparent within Chinese foreign policy which had depicted Chinese policies towards North Korea also.

Xi teller of untruth about having cordial relationship with North Korea

Xi teller of untruth about no hostility, animosity and enmity with respect to North Korea mainly to exploit resources of North Korea to serve China's energy security challenges. No disrespect was affirmed by North Korea to Chinese President Xi Jinping because they could not figure out the malign intention of his policies. He had been claiming that he had cordial relations with North Korea. However, history informed us that China never had good working relations with North Korea because of several wars which were fought between Gorgeryo and Tang nominalist dynasties and they carry the bitter consciousness of war which had been hidden in their respective foreign policies. Xi portrayed socialism with no Chinese characteristics in his policies particularly towards North Korea. Immoral behaviour of China was perceivable from her border equations with North Korea. China had not resolved it yet as she could not formulate international norms for the same. "It is one of the few sad comments which must be made on Sun Yat-sen's thought that he believed so wholly in the moral superiority of the old Chinese concepts of relationship that it never occurred to him that Communism could act on Chinese morality like a poisonous virus in a human body" (Linebarger 1966: 10). He had resisted the idea to forge any type of relations with North Korea except in the field of diplomacy with Dr. Sen's diplomatic style notions. Xi Jinping gauche known policies towards North Korea had been detrimental for their ties.

Conclusion

'No scheme' and 'no regulation' was at the core of Chinese policies towards North Korea. Chinese putid behaviour towards North Korea and vice-versa in their respective policies during ancient, medieval, modern and contemporary times were not irresponsible for China's policies towards North Korea. No policies existed between them as they had not overcome their history filled with wars, mutual suspicion, hostility and enmity, hence, there was no room for each other in their relationship. However, Dr. Sunyat Sen's diplomatic style remained a valuable and important solution for their sinking relations. When Sino-North Korean normalisation would take place is still unknown and probability for the same is less because of eternal Chinese anomalist policies towards North Korea.

References

Cheng, D. (2018). CHINESE CALCULATIONS OF SECURITY AND THE KOREAN PENINSULA. The Journal of East Asian Affairs, 32(1), 23–44. http://www.jstor.org/stable/44825536

Du, Y. (2019). Sun Yat-sen as Guofu: Competition over Nationalist Party Orthodoxy in the Second Sino-Japanese War. Modern China, 45(2), 201–235. https://www.jstor.org/stable/26644053

LINEBARGER, P. M. A. (1966). The Universality of Sunyatsenism. SAIS Review (1956-1989), 10(2), 5–15. http://www.jstor.org/stable/45348523

WU, S.-H. (1998). ON TAIWANESE HISTORICAL POETRY: REFLECTIONS ON THE SHIMONOSEKI TREATY OF 1895. Journal of Asian History, 32(2), 157–179. http://www.jstor.org/stable/41933089

Zhihua, S. (2000). Sino-Soviet Relations and the Origins of the Korean War: Stalin's Strategic Goals in the Far East. Journal of Cold War Studies, 2(2), 44–68. https://www.jstor.org/stable/26925062

Rachit Bharadwaj

Ph. D. Scholar,

Centre for East Asian Studies,

School of International Studies,

Jawaharlal Nehru University, New Delhi -110067

Mobile: 8756132784 Email: xirachit20149@gmail.com

❑ ❑ ❑

A movement for socio economic transformation by self help groups : A Case study on Farakka C.D. Block, Murshidabad, West Bengal, India

• **Jiban Barman**

Rural development is a very dynamic process that encompasses enhancing the socioeconomic, political, environmental, and well-being of the underprivileged residents of rural areas. More 69% of people are lived in a village according to Census of India (2011). Murshidabad district is one of the most backward districts in the West Bengal. Baniagram village as our study area are much facing numerous problem such as –river bank erosion, unemployment, poverty, lack of skills, illiteracy, and basic infrastructure health care common trend here. To end poverty, the Self-Help Group (SHG) programme is a practical strategy adopted by Central Government. The goal of the current study is to examine the socioeconomic state of self-help groups and their effects on rural development as well as women empowerment in the village of Baniagram. For this paper primary data and secondary data have been used. Primary data has been collected by using questionnaire with stratified random sampling method. After the analysis data it is clearly observed that 66% of respondents are directly admitted that economic improvement. 30% percent of their income is utilized for educational purposes. The results of this study are also utilized to inform planning and policy decisions that will help to better the situation overall and minimize the issue.

Keywords : Self help group, women empowerment, socio economic condition

I. Introduction:

The majority of Indian women who reside in rural areas

face significant obstacles to accessing essential services and social isolation **(Dyson and Moore, 1983)**. Rural development and agriculture are influenced by a number of interrelated disciplines, including agriculture, food security, horticulture, livestock, nutrition, fisheries, energy, and family life. These domains are essential for fostering development and advancement in rural regions. Women in rural areas make economic contributions, but their access to markets, financial services, healthcare, and educational opportunities is limited. Furthermore, women are responsible for responsibilities at home such as cooking, cleaning, child care, fetching water, and other related tasks. According to **Desai and Jain (1994),** these duties are considered to be normal responsibilities of rural women. According to **Alkire et al. (2013),** women must have the power to express their opinions, make decisions based on factual information, and reach their full potential in the community on an equal footing with males. Mohammed Yunus was started the first self-help organization in Bangladesh. In India, NABARD took the initial steps to establish a self-help group (SHG) in 1986–1987. However, the actual work began in 1991 with the establishment of links between SHGs and India's public and cooperative banks. A SHG is a small, economically homogenous affinity group of the rural poor who voluntarily get together to regularly save minimal amounts and deposit them in a shared account to fulfill members' emergency needs. The basic principle of the SHGs is an organization of small and manageable groups. The relationship between women's empowerment and social development has been a major theme in studies of any nation's overall development. Supporters of self-help groups (SHGs) noted that women's membership improved their social standing and made them judges of social institutions and family standards **(Basak and Chowdhury, 2023)**. According to **Nyagwanga** (2016) and **Sindhav** (2017), empowerment entails the capacity for decision-making, resource accessibility, assertiveness, growth mentality, adaptability, and the learning of skills to expand authority and sway opinions democratically. The United Nation (UN) claims that improving women's status is not only beneficial to themselves but also for overall social economic development of the nation. Women comprise of half of the country's population, yet, they have limited control over income. Most women remain confined to a narrow range of female low-income activities resulting in gender discrimination. Poverty and unemployment are the major

problems of any under-developed countries, to which India is no exception. In India, at the end of Ninth Five Year Plan, 26.1 per cent of the population was living below poverty line. In the rural areas, 27.1 per cent of the population was living under poverty. The overall unemployment rate was estimated to be 7.32 per cent while the female unemployment rate was 8.5 per cent. Unemployment amongst women in the rural areas was 9.8 per cent. This was because of the low growth of new and productive employment. In the end of the Ninth Five Year Plan, the Government implemented various schemes to reduce poverty and to promote gainful employment. But the most effective scheme with less stress on financial expenditure was the concept of "Self-Help Group". It is a tool to remove poverty and improve the rural development (Das, 2003). In India 74, 68,968 self help group is present under this 12,017 have less than five members in group and 1047 have more than twenty members in a group. In our West Bengal 9, 92,165 self help group is present under this 1491 have less than five members in group. In Murshidabad district nearly 96923 self help groups are available. According to Dev (2019) assertion in his paper, Murshidabad District received the highest ranking for SHG development and its effectiveness of its work. Murshidabad district one of the most backward district in West Bengal (HDI report,2014). In this district nearly 2231 villages are available (Census, 2011). The Farakka community development block is situated in the northern part of Murshidbad district. This region is most vulnerable due to river bank erosion during the post monsoonal phase. That's why most of the male members of the family working as a migrant labour and female members of the family working for self help group for more earning and support the family. Lack of access to credit and financial services, or having just limited access, is one of the main causes of rural poverty. The presence of strong community networks in Indian villages is now understood to be one of the most crucial factors in credit linkage in rural regions. SHGs are particularly important in ensuring that the poor have access to finance, which is extremely significant for reducing poverty. Self-employment opportunities also contribute to other development variables including higher literacy rates, better healthcare, and enhanced family planning. The research focuses on women in the Farakka block, who have benefited from self-help groups. The researcher examined the effect of self-help organizations in our area of study and its surroundings such as

women empowerment, income generation etc. in relation to the Sustainable Development Goals (SDGs) of the UN, namely gender equality (SDG 5), good health and well-being (SDG 3), zero hunger (SDG 2), poverty (SDG 1), and quality education (SDG 4).

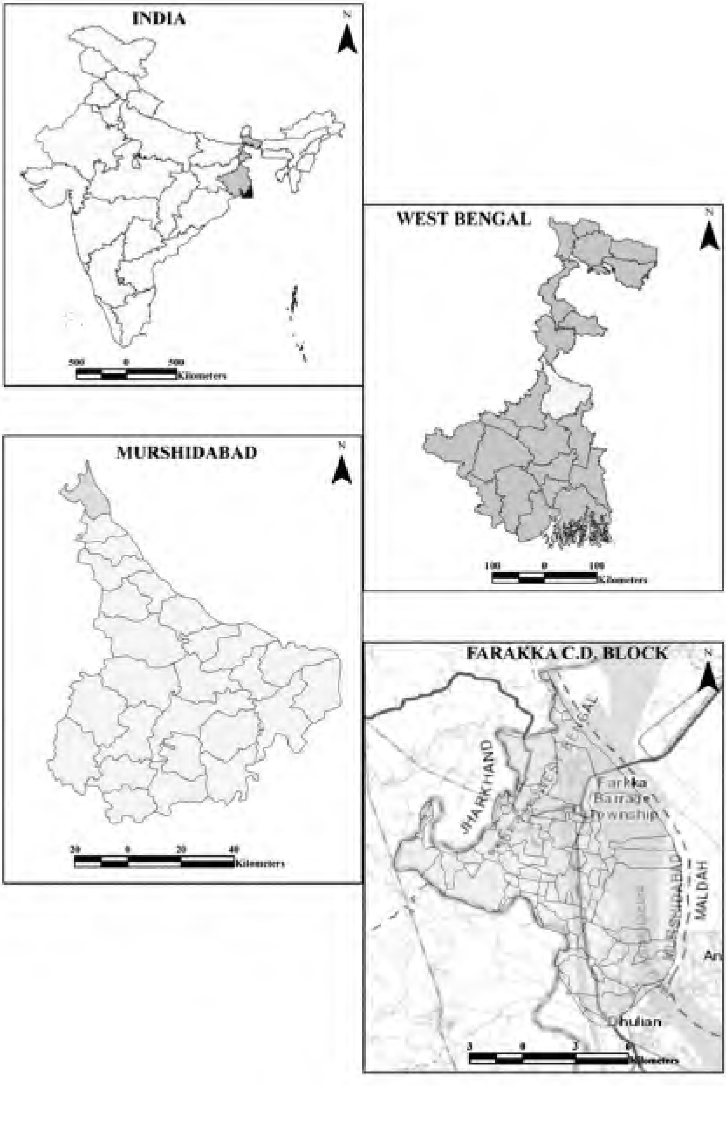

Fig. 1 : Location map of Study area

II. Defining women's empowerment :

United Nations Population Information Network (POPIN) has defined women's empowerment based on five components, which are as follows:

- Women's sense of self-worth.
- Their right to have access to opportunities and resources.
- Their right to have the power to control their own lives, both within and outside the home.
- Their right to have and to determine choices.
- Their ability to influence the direction of social changes to create a better social and economic order, nationally and internationally.

From the definitions of women's empowerment, as defined in the literature, we may visualise an empowered woman. An empowered woman is confident in her ability; she is capable of leading her life independently; she is socially as well as economically independent; she is opinionated, enlightened and has freedom from all sorts of domination; and finally she is someone who is capable of standing for her own rights. Women's empowerment comprises women's education and knowledge to enhance her understanding about her surroundings, her ability to control her life, freedom from domination by not depending on anyone else's income, her ability to participate in decision-making process, her capability to make independent decisions and finally her independence in terms of mobility. For this purpose, the Self-Help Group (SHG) model was introduced as a core strategy for the empowerment of women, in the Government of India's Ninth Five Year Plan (1997–2002) and is one of the largest and fastest-growing microfinance programs in the developing world (Planning Commission 2002).Empirical evidence from earlier research substantiates that the economic and social impact of microfinance empowers women (Goetz and Gupta 1996; Beteta 2006; Bali Swain and Wallentin 2009).

III. Objectives :

The overall goal of the current study is to examine the economic empowerment of women through self-help groups in the Farakka Block, but more specifically-

- To examine the members' income, spending, and savings both before and after joining SHGs.
- To find out the impact of self help groups in empowering women.

IV. Methodology:

The present study has covered Farakka block, Murshidabad district. This area was chosen for the study because the SHGs are extremely effective contribution to promoting women's empowerment. This research is descriptive in nature. This study is complied with the help of primary data and secondary data, primary data is covered only one year period 2021 -22. Primary data are collected with the help of questionnaire survey. This survey included the questions related to general information about SHGs groups, income, spending, loan, scheme availability and savings both before and after joining SHGs. Additionally, secondary data is used, and the necessary information was gathered from the Block Office, NABARD, RBI, and the West Bengal government website, as well as a previously published research study such as journal report etc. Totally 290 respondents were selected from the self help groups of this area by stratified random sampling method. This is an analytical descriptive study to know the condition of before and after joining SHGs. GIS plays a vital role for map making and MS excel; SPSS has been used for the tabulation, calculation, presentation and analysis. However, there are several limitations to the research, such as the fact that this study is concentrated on a specific village and that the majority of the respondents are illiterate, which makes it difficult for them to complete out the questionnaire.

V. Hypothesis :

The researchers have developed the following hypothesis :

- There is significant increase in income of women after joining SHGs.
- Women are not aware of the functioning and existence of self – help groups in their region.
- There was a significant increase in the rate of employment of women after joining SHGs.

VI. Analysis and interpretation of the situation of the village:

- Occupation of respondents in Pre and Post SHG stage:

From figure 2, it is evident that 32% of the respondents have no occupation in the pre SHGs stage where as in the post SHGs stage none of the respondents is without occupation. The occupation is chosen by the members depends on demands of product and availability of resources and future sustainable planning. 58% of the total SHGs members are joining in the field of Cottage industry and Handicraft because those work basically based on constructed room with high security with no loss. Most of the female members are not suitable with roaming jobs. Making biris, kathas, papads, and other crafts are quite popular among the female residents of this area

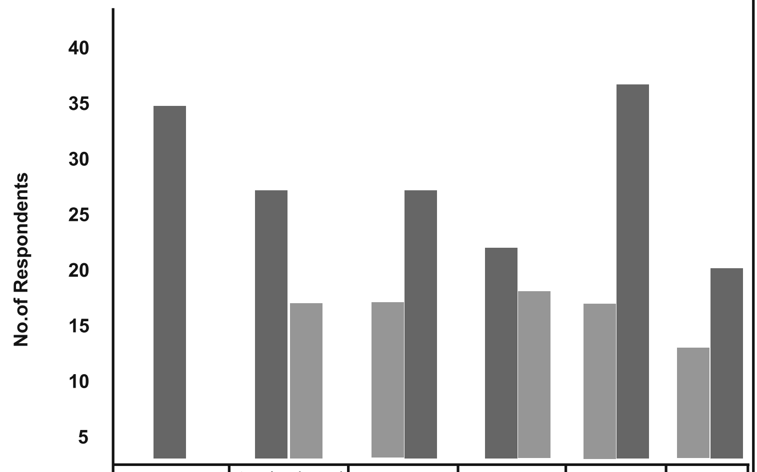

	No occupation	Agricultural labourers	Handicraft	Collection of resource	Cottage industry	Others
Pre SHG	32	16	9	19	14	10
Post SHG	0	12	24	15	34	15

Figure 2 : Occupational Change

- **Income of respondents in Pre and Post SHG stage:**

The SHG members participate in activities that bring in money for them. From figure 3, it is represented that 18% of the respondents

have no occupation in the pre SHGs stage where as in the post SHGs stage none of the respondents is without income. Only 30% of respondents had income more than Rs. 5000 per month. But after joining SHGs 66% of respondents have income more than Rs 5000 per month. Because most of members are joining in the field of cottage industry and handicraft so they have both province for marketing self and the help of SHGs. Each and every year our state government have plays an important role for self help groups for promotion their created materials in various fair.

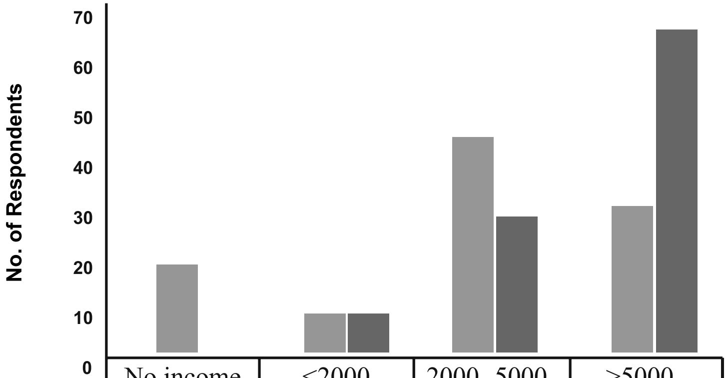

	No income	<2000	2000 -5000	>5000
Pre SHG	18	8	44	30
Post SHG	0	6	28	66

Figure 3: Improvement of Income structure

- **Expenditure of respondents in Pre and Post SHG stage:**

From figure 4, it is evident that 34% of the respondents have use for health care in the pre SHGs stage where as in the post SHGs stage only 16% expenditure have been used (Figure5). At first they are facing starvation type of problems but after joining in the SHGs group they are using 18% of their income in food and 30% of their income basically use for child care to provide a better future for their child.

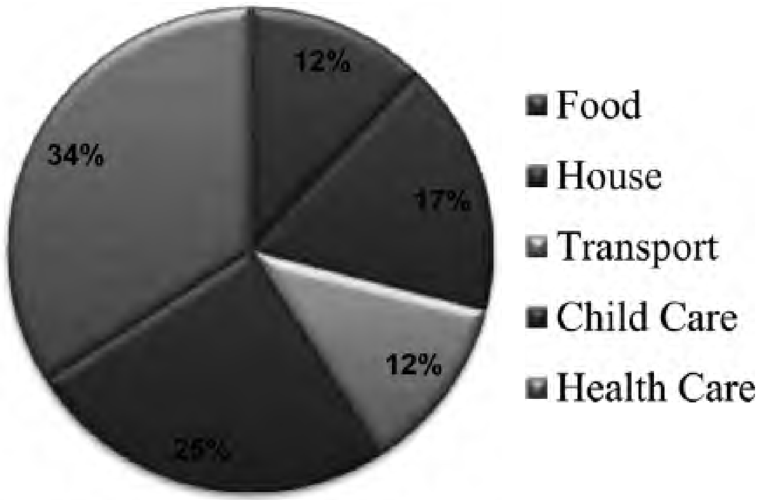

Figure 4 : Pre SHGs expenditure

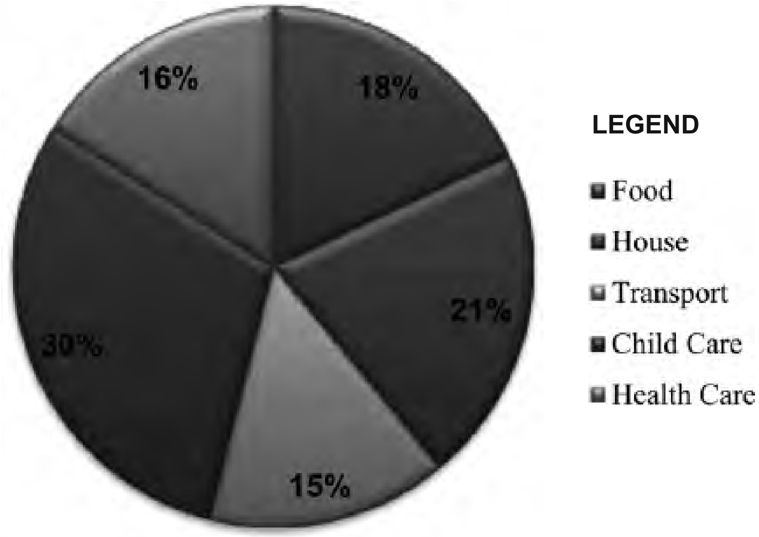

Figure 5 : Post SHGs expenditure

- **Women empowerment through Self help groups:**

Large amounts of job opportunity are created in the working sector not only Government sector but also private sector by the implementation of, liberalization, privatization and globalization and in this regard female members are very much benefited to create a self identity . According to this viewpoint, a rising number of women are participating, which benefits their families, communities, and society. The view of the respondents about the empowerment of women through SHGs may be seen in Table no.1. The members are able to contribute towards the family income, skill up gradation, banking work, communication skill, leadership type work, take decision for community educational health awareness and at the end of the day they are improving their standard of living.

Table no.1: Women empowerment through SHGs

Sl. No.	Indicators of Empowerment	Opinion			Total
		Yes	No	N/A	
1.	Improve income level	87.5	11.2	1.3	100
2.	Self respect	94.26	5.74	0	100
3.	Standard of living	54.67	30.5	14.83	100
4.	Banking facility	66.7	20	13.3	100
5.	Awareness participation	60	31.7	8.3	100
6.	Overall improvement	63.3	27.7	9	100

VII. Hypothesis Testing :

a. To investigate the impact of income subsequent to SHG membership, the researchers have developed the following hypothesis, The tabulated p-value is 0.000, which is less than the conventional value of 0.05 (Table no.2), so there is a significant increase in the income of the women after joining SHGs. Increased income eventually empowers the women in these rural areas by providing them with more money and a better quality of life for themselves and their family.

Table no.2: Level of significant increase in income

Pair 1	Indicators of Empowerment	Opinion			Total
		Yes	No	N/A	
1.	Test 1	87.5	11.2	1.3	100
2.	Income before joining SHG	94.26	5.74	0	100
3.	Income after joining SHG	54.67	30.5	14.83	100
4.	Banking facility	66.7	20	13.3	100
5.	Awareness participation	60	31.7	8.3	100
6.	Overall improvement	63.3	27.7	9	100

Source: Computed by author from field survey data

b. SHG schemes have been heavily utilized by NGOs throughout the years to increase awareness of these programs among rural underprivileged people. This empowers these women by raising knowledge of self-employment, savings, health, education, and family welfare in addition to the group's presence and the many advantages it offers.

Table no. 3 : Level of awareness

Attribute		**Sum of Squares**	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
Awareness	Between Groups	.00	8	.00		
	Within Groups	.00	280	.00		
	Total	.00	288			
Awareness through	Between Groups	8.4	8	1.04	8.5	.0
	Within Groups	34.8	280	.124		
	Total	43.2	288			

Source: Computed by author from field survey data

Table 3 shows that the computed P-value is 0.000, which is smaller than the conventional P-value of 0.05. Therefore, the alternative hypothesis, according to which women are highly aware of the presence and operation of SHGs in their region, is accepted.

c. The most crucial element in enhancing the lives of the impoverished in rural areas is the creation of jobs. SHGs assist the impoverished in uplifting themselves via employment by offering microfinance through microcredit and bank linkage programs with the assistance of many banks.

Table no. 4 : Employment generation through SHGs

Attribute		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Standard of living	Between Groups	.00	8	.00		
	Within Groups	.00	280	.00		
	Total	.00	288			
Occupation	Between Groups	8.4	8	1.04	8.5	.0
	Within Groups	34.8	280	.124		
	Total	43.2	288			
Occupation after joining	Between Groups	1.4	1	1.41	10.7	.001
	Within Groups	37.92	289	.130		
	Total	39.32	290			

Source: Computed by author from field survey data

According to the results, the quality of living and employment generation were poor, and the computed P-value for occupation and standard of living prior to joining SHGs was higher than the usual P-value of 0.05. The p-value following SHG membership is 0.01—less than the typical P-value of 0.05 (table no.4). Thus, it is possible to accept the alternative hypothesis that the employment rate has

significantly increased since women joined Self-Help Groups (SHGs) in order to increase their work possibilities.

VIII. Major Findings:

- Their income and consumption expenses have increased.
- The quality of life for SHGs members has drastically improved.
- Self respect and self confidence has improved.
- Their confidence has grown, and they can now speak freely in front of our patriarchal society.
- Working women have a great deal of INDEPENDENCE and can choose a lifestyle that suits their preferences and personal pleasure.
- Increase their performance in the workforce to improve their position inside the organization.
- Members' social horizons have also expanded.
- Now they have become productive and the important members of the family.

IX. Suggestions:

- Improvement of specific training facilities for traditional and nontraditional works.
- Improvement of educational facilities for the illiterate or uneducated old members of the organization.
- Improvement of security in the field their income expenditure and loan activity.
- Influencing the members to join groups across various social development awareness programmes such as health, sanitation, importance education, child protection etc.

X. Conclusion:

The capacity of an individual or group to shape events in the way they want, despite opposition from others, is known as empowerment. Empowerment consists of four elements, including economic freedom, knowledge, positive self-image, and autonomy. One strategy for reducing poverty has been recognized as the self-help group approach. The number of poor women who are enrolling in SHGs all over Farakka block of Murshidabad district has been increasing dramatically. They are not only active in saving and

credit management but they are also managing natural resources and working on numerous societal development projects. In this study it is clearly found that the income of the SHGs members has been increased after joining in the various SHGs. As a result monthly expenditure is also been raised those are helps to promote a sustainable life. SHGs in the Murshidabad district have been effective in boosting women's empowerment and transforming rural areas into developing areas owing to the many facilities provided by our Central and State governments to strengthen the self-help groups. Additionally, the study emphasized SHGs' contribution to SDG achievement. In light of this, the study concluded that empowering rural women through microcredit provided by SHGs is a critical step in achieving a developed, inclusive, and equal society. Therefore, longitudinal studies across regions should be a part of future study to fully understand the long-term implications and varied effects of SHGs in India's socioeconomic and cultural contexts.

References :

- Adhikary, M.L. and P. Dutta (2011), ‘Factors Affecting Empowerment of Women: An Empirical Study in Burdwan, West Bengal’, in Gender Deprivation and Empowerment of Women An Indian Perspective, Utpal De and Bholanath Ghosh, (eds.) Lambert Academic Publishing, Germany, 147-163.
- Andal, N. (2002). Women and Indian society: Options and constraints. New Delhi: Rawat Publications.
- Alkire, S., Meinzen-Dick, R., Peterman, A., Quisumbing, A., Seymour,G.,Vaz,A. (2013)., The women’s empowerment in agriculture index. World Development. 52, 71–91.
- Barati, A; Arab, R. O.; Masoumi, S. S.Challenges and Problems Faced By Women Workers in India." Human Resource Management.
- Basak, D., Chowdhury, I.R. (2023). Exploring the impact of self-help groups on empowering rural women: An examination of the moderating role of self-help group membership using structural equation modeling. Global Social Welfare. 10, 299–311.
- Chatterjee, S. (2008), ‘Women’s Empowerment and Role of Self Help Groups- a Socio- Economic Study in Khejuri (Coastal Bay of Bengal), West Bengal’, Socialist Perspective, Vol. 36(1-2), pp. 11-29.

- Desai, S., & Jain, D.(1994). Maternal employment and changes in family dynamics: The social context of women's work in rural South India. Population and Development Review,20(1), 115–136
- Dyson, T., & Moore, M.(1983). On kinship structure, female autonomy, and demographic behavior in India. Population and Development Review,9(1), 35–60.
- Fielden, S. L., Davidson, M. J., Gale, A. W., & Davey, C. L. (2000). Women in construction: the untapped resource. Construction Management & Economics, 18(1), 113-121.
- National Commission for Women, India (2014).
- XII A & B part of Census Handbook 2011: Murshidabad District
- Kumar, P. &Sundar, K. (2012). Problems Faced by Women Executives Working in Public Sector Banks in Puducherry. International Journal of Marketing, Financial Services &Management Research.1(7), PP 180-193.
- Karat, B. (1997). The Multiple Struggles of Women. Frontline, 14(19).
- Khan, M. S. (1996). Status of women in Islam. New Delhi: APH Publishing.
- Majumdar, M. (2004). Social status of women in India. New Delhi: Dominant Publishers and Distributors.
- Somjee, G.(1989) Narrowing the gender gap. The journal of Asian studies. 49(3).
- Sivan, S. & Sathyamoorthy, K.(2014) Management Of Occupational Stress And Work life balance Among Women Managers In Indian Industries - A Contemporary Issue. Indian Journal OF Applied Research .4(12) PP 144-146.
- Tomlinson, B. R. (2013). The Economy of Modern India: From 1860 to the Twenty-first Century (Vol. 3). New Delhi: Cambridge University Press.

Jiban Barman

Assistant Professor,
Department of Economics,
Prof. S. Nurul Hasan College, Farakka,
Murshidabad, West Bengal, India

❑ ❑ ❑

Exploring The Shifts In Portrait Photography Brought Forth by The Growth of Mobile Phone Photography

• Dr. Ajay Yadav

Photography has become an omnipresent phenomenon that continues to grow fashionable amongst individuals of every age as due to the readily accessible portable and continuously active camera available on mobilephone devices. The simplicity of use, connection, accessibility, as well as low cost of mobilephone cameras have contributed to making mobilephone an increasingly common tool for collecting photos and videos of individual and/or group experiences. This has resulted in an increased awareness of the expressive and communicative power of photographs in everyday life. Today, portrait photography has become a popular means of self-expression, and most people utilize it to capture, convey, and remember their feelings. The introduction of smartphone cameras has altered the field of portrait photography, and it seems that classic portraiture has been replaced by smartphones. The impact and transformations that smartphone photography has brought about in the realm of traditional portrait photography are examined in this research paper.

Keywords : *Mobile photography, photography aesthetics & classical photography.*

Introduction to Mobile Photography

Photography has grown significantly in a comparatively short period of time. The camera has come quite far in a short period of time, from a rudimentary box that generated grainy photos to the state-of-the-art microcomputers found in DSLRs and smartphones today. Currently, photography stands as the fastest-growing hobby globally, with hundreds of millions of revenues being generated

from the equipment industry alone. Even though not everyone knows about the terms like shutter speed, exposure, camera obscura, or even famous individuals like Ansel Adams, Raghu Rai, Steve McCurry, etc. but everyone is carrying a camera these days since it's incorporated into their cell phone.

"Mobile photography" refers to the practice of taking images with a mobile device, especially a cellphone or smartphones. A camera phone comprises a handheld gadget featuring one or more integrated digital cameras, and can take photographs or videos, which can be wirelessly shared quickly. It is the most recent phenomena in the field of photography and the most radical change made so far is that it affects where and what types of images are taken, as well as the number of individuals that take them, share them, and the manner in which they are eventually seen. Before mobilephone were widespread, cameras were confined to a small number of users, and a single camera was shared by multiple friends and family members.

Today, mobile photography is frequently classified as a particular genre, it is more accurately seen as a tool that may be used in any kind of photography. In only just a decade, numerous of the latest smartphones have exceeded the greatest point-and-shoot cameras in terms of quality. But camera phones have changed the notion of what makes a "worthy photo," replacing the notion of what is unique and permanent with what is often unpreserved and commonplace. This study explores and presents the changes occurred in portrait photography or art of portraiture under the increasing practice and influence of mobile photography.

Portrait Photography

"A representation or depiction of a living being as a unique individual possessing a recognizable physical body along with an internal existence, i.e. some sort of character and/or psychological or mental states," precisely what Freeland defines as a portrait.[1] According to Norbert Schneider's book The Art of the Portrait, portraiture "came into its own" during the latter part of the Middle Ages and the beginning of the seventeenth century in which people from all social classes—not only princes, clergy, and nobles—started to pose for imagery.[2] Over time, portraits evolved from emphasizing outward aspects to revealing the inner realities and

moral convictions of its subjects, hence stressing psychology. The Renaissance along with early modern ideas about personae contributed to the emergence of portraiture. Not until Poussin's era did the phrase become sufficiently specialized to be limited to topics who were human rather than animal-based.[3]

In essence, portraiture is a creative style which establishes a sense of self. Regardless of the context—public, private, anthropological, artistic, social, political, legal, medical, institutional, etc. or the medium snapshots, formal studio portraits, passport mug shots, or others—the portrait seeks to convey the message, "this is how you look." The media (film, television, photojournalism, the internet, paparazzi, etc.), the arts, advertising, travel, the police, the military, medical facilities, and so on are just a few of the establishments that frequently use this form of photographic portrayal of people.

The historical growth of the art of photography as a commercial business was heavily reliant on portraiture. They serve to distinguish and highlight certain demographic segments. It is possible to recognize essential semiotic elements in portraiture, regardless of the portrait's intended public or private use. "Recognition" is one of the benefits of viewing portraits. Through "projection," a spectator may instill their own emotions into a portrait image, despite having noticed that the meaning appears to originate from the picture itself.[4]

Aesthetics of Portrait Photography

The genre of portrait photography is vast and varied, and depending on method, style, as well as goal, aesthetics might differ considerably. The following are some essential components that frequently come into play:

1. Lighting: One of the most important elements in portrait photography is lighting. While artificial lighting offers more control and creative possibilities, natural light may have a gentle, pleasing impact. Lighting arrangements such as butterfly, loop, as well as Rembrandt can highlight features and evoke a variety of emotions.
2. Composition: The way components are arranged inside the frame influences the viewer's perception of the subject. A subject's position as well as expression play a crucial role in presenting their individual characteristics and moods.

Traditional methods like as leading lines, framing, and also the rule of thirds tend to enhance a person's appearance, but unconventional compositions may offer a more striking or contemporary effect.

3. Colour and Tone: A portrait's vibe may be significantly altered simply by choosing between coloured and monochrome photography. While black and white often attract attention towards form, texture, and emotion, colour can additionally express warmth, vitality, and personality.
4. Depth of Field: A narrow depth of field, obtained by using a large aperture, is likely to highlight elements as well as distinguish the subject of the photograph from the surrounding environment, whereas a deeper depth of field keeps a larger portion of the subject in focus and can be used to provide background information.
5. Style & Genre: There are many different types of portrait photography, including formal studio portraits, candid, environmental, and creative expressions. Every style has distinct aesthetic aims and values.
6. Patience and observation: The photographer's ability to observe the ideal profile and be patient enough to get the best image at the correct time are the most important aspects of a successful portrait.

Types of Photography Portraits

Portrait photography possesses the ability to express deeper meaning than a superficial photograph by taking the true essence or a vital aspect of the person. The goal of shooting portraits is to use backdrops, lighting, and posture to convey a subject's essence, personality, identity, and attitude. There are several varieties of portrait photography, such as:

1. **Classic/traditional portraits:** A traditional or classical portrait is a minimalist portrait because it highlights the person's face, expressions, and emotions trying to represent person as radiant as possible. The head as well as the shoulders of the individual being photographed are usually included in a classic portraiture and these are usually taken in a formal, professional studio environment. Some photographers, like

Julia Margaret Cameron, Alfred Stieglitz, Irving Penn, Yousuf Karsh, Imogene Cunningham, and Philippe Halsman, are at least partially known for their classical portraiture.[5]

2. **Environmental or Lifestyle portraits or Constructionist portraits:** The primary goal of lifestyle portrait is to aesthetically portray photographs of individuals in context, at milestones, or at actual life events. The environmental portrait is credited with being invented and made famous by Arnold Newman. By placing his subjects in environments that reflected their field of work, the photographer was able to convey the spirit of the subject's life and career through his portraiture technique.[6]

3. **Candid portraits:** The best timeless expressions are those of innocence and naturalness. In a candid portrait style, the subjects and the surroundings are not prepared or posed; instead, pictures of individuals are typically shot informally and at various locations. In photojournalism, street photography, and wedding photography, the candid portraiture technique is frequently employed.

4. **Self-portraits:** A self-portrait is, in essence, just a photograph of the self. They can also be used to characterize selfies, although there's a distinct distinction between the two. Self-portraits are thoughtfully planned, meticulously assembled, and intended to leave a lasting image of the subject.

5. **Couple and group portraits:** Couple portraits are the most popular kind of portraiture photography. These are typically thought of simple, creative, and candid portraits of the couple taken before, after, before, or after ceremonies or other important events. A portrait photograph with more than two sitters as well as big gatherings of people is regarded as group portrait. A group photo is an image that shows a number of individuals.[7]

6. **Glamour portraits:** A type of portraiture called glamour portraits incorporates aspects of fashion photography. Simply defined, glamour photography is any kind of photography that accentuates features like romance, elegant lines, sexuality, attractiveness, and sparkle.[8]

7. **Fine Art portrait:** Photographers of fine art portraits are

artists themselves possessing a high level of expertise and good artistic vision. The resulting masterpieces create quite striking wall art and are incredibly expressive.[9]

Research Methodology

The aforementioned photographic ideas and principles, which are believed to be the foundation of a great click or attractive portrait, have been utilized to examine the photographs which have been collected from amateur, professional, and everyday photographers as well as from social media account of the author. The noteworthy changes in the aesthetics and conventions of classical portraits as influenced by mobilephone photography were observed by the author are discussed in the next section.

The changing aesthetics and conventions of classical portraits as influenced by mobilephone photography

The introduction of mobile phone photography has enabled a larger audience to interact via visual representation and narration, which has democratized the photography. Everyone takes and shares photos to communicate ideas or tell stories not only photographers. According to recent research globally, 1.93 trillion images will be taken by people in 2024, with smartphones contributing to 94 percent of total photo captured.[10] With the increasing number of photographs photographers, it has become important for the artists, academics, and admirers alike, to comprehend the development of new visual language. The following are a few noteworthy changes observed in this study:

Accessibility and Convenience

1. Ease of Use: The widespread use of mobile phones has made portrait photography more accessible to a larger audience. With integrated digital cameras as well as easy to use graphical user interfaces literally everyone is capable of taking beautiful photos without specialised knowledge or expensive equipment.
2. Instant Sharing: The ease with which images may now be shared on social networking sites has revolutionized the way that people exchange and see portraiture. This instantaneity has impacted photographic trends and aesthetics.

Technological Advancements

1. Enhanced Camera Capabilities: These days, smartphones are packed with high-resolution cameras, numerous lenses (telephoto and wide-angle), and sophisticated functions like portrait mode, which simulates a shallow depth of field by creating bokeh.
2. AI and Computational Photography: Enabling users to obtain professional-looking outcomes without the need for human edits has been facilitated by AI-driven features like background blurring, automated lighting adjustments, and beautifying tools.

New Aesthetic Trends

1. Filters and Editing Apps: Using filters and editing tools to swiftly add artistic effects, enhance pictures of themselves, and experiment with colour and texture has become more common since the invention of mobile photography. Numerous decorative styles and trends have sprung from this.
2. Casual and Candid Styles: The ease of taking multiple shots and the informal nature of mobile photography have popularized

Fig. i. Photo of couple taken in photography studio in Jaipur, 1982. Photo credit: Pramod Dshora ii. Photograph of same couple during morning walk taken via mobilephone camera, Dec, 2023. Photo credit: Pramod Dshora

more relaxed and candid styles of portraiture, often capturing spontaneous moments rather than posed settings.

3. Orientation: The majority of shots captured with a smartphone camera appear to be captured in portrait orientation owing to the fact that the majority of individuals use their smartphones' portrait-oriented screens, and changing the orientation of the screen to landscape requires additional effort.
4. Ratio: A mobile phone allows its users to choose from a range of ratios, such as 16:9, 4:3, 1:1, 2:3, and so on, but a camera only has one. Most smartphone cameras have a 16:9 aspect ratio by default, as a result users unintentionally keep taking photographs in this format, which is unappealing when seen on device other than a mobilephone. Another common ratio that individuals use while taking pictures for social media, especially Instagram, is 1:1.
5. Tilted frames: Once deemed horrible, people are starting to like fuzzy and skewed photographs with exaggerated facial expressions, as well as shots with distortions, abrupt cuts or partial images, and slanted frames.
6. Distorted portraits: Wide-angle selfie cameras are typically found in both smartphones and tablets, which visually separates this type of photography with the portrait genre, which typically uses wider focal lengths which generate small distortion in the proportions of the subject's face and body.

Shift in Professional Practices

1. Increasing competition: As more individuals capture photographs with their smartphones, there is greater rivalry for professional photographers. These days, they have to set themselves out with their work using distinctive aesthetics, cutting-edge methods, and superior prints or presentations.
2. Adaptation of Techniques: Experts in the industry have embraced mobile photography, using its portability and convenience as a supplementary tool or even incorporating the technology into professional work for particular types of images.

Cultural Impact

1. Self-Portraits and Selfies: Selfies have revolutionized the

self-portraiture scene by bringing personal expression and experimenting with settings and positions front and center. Additionally, the field of portrait photography has been significantly impacted by this tendency.

2. Social Media Influence: New norms for what constitutes an interesting portrait have been established by apps like Instagram, Snapchat, and TikTok, which has forced both professional and amateur photographers to adopt new styles and visual languages.

Democratization of Portrait Photography

1. Broader Participation: A wider variety of photographs and modes have resulted from the democratization of photographing people made possible by mobile phones. People with different backgrounds and abilities may now contribute to and exhibit their work.

Changes in Perception

1. Value of Professional Photography: The rising use of mobile phones is lowering the value of expert portraiture photography. Some may consider professional photography to be of no importance, while others respect the unique skills and expertise it entails. Smartphone efficiency and effectiveness, smartphone image taking, and smartphone picture creating are found to be positively correlated with low commercial photography patronage.[11]

Conclusion

The emergence of smartphone cameras resulted in an evolution in photography portraiture, whereas classic portrait art appears to have vanished. Nowadays, most portraits are made using mobile phone camera, usually without any thought to the final product's aesthetics. Most people take at least one selfie each day for the reason that they think these are the finest photographs. But the early portraits were taken at major occurrences or on exceptional occasions.

Photography as a whole appears to have taken on a casual and random quality, based on observation or analysis of contemporary photos. As opposed to traditional portraiture, which not only involved precise placement and organization but also included minute details of everyday objects like clothing, furnishings, decorations, and so

forth. By reflecting emotions or social situations by their posture and way of standing in group photos, they preserved the visual history of that age for future generations. Currently, however, most photos are shot for individual recollections instead of for the ethnographic or historical record, and majority of them are taken impulsively or freely, without prior planning.

Since the majority of modern photos are taken hastily or randomly, facial deformation appears have become more common. Classical portraits were usually more formal in their approaches and attitudes; people's stance and framing were carefully considered, and any deformations or shaky frames were immediately disapproved or even discarded. But everyone now has grown acceptance for tilted, cropped, uneven, and incomplete pictures these days.

Unlike traditional portraits, which implied emotions by hand movements, seating positions, eyes, and the whole the studio environment, contemporary portraits explicitly and excessively portray expressions through their facial expressions. The group photos also referred to as "Groupie," "Groupfie," or "Usie," are shot with the selfie technique. As the goal is to fit every person in the picture, there is also a visual shift that may be seen in the skewed frames, partial shots, and dangling subjects. The composition of portraits is loose and informal since the main objective of taking a group shot with a mobile phone is not to get the photograph printed and framed or inserted into a photo book, but to share it as quickly as possible or display it on the popular social networking sites. As a consequence, the common people are unable to perceive, value, comprehend, and respect all the concepts, planning, and aesthetics that were necessary for a traditional or classical picture. Bright, crisp portraits that highlight every important aspect and bring attention to even the smallest details, or those that use "Portrait mode" to focus just on the subjects' faces while blurring the background, are both in style. All things considered, mobile phone photography has both enhanced and challenged classical portrait photography, opening up fascinating new avenues for creative expression and innovation and requiring professionals to swiftly adapt to a rapidly evolving field.

References

1. Freeland, C. (2010). Portraits and persons. Oxford University Press, USA.

2. Schneider, Norbert. The art of the portrait: masterpieces of European portrait-painting, 1420-1670. Taschen, 2002.
3. Schneider, Norbert. The art of the portrait: masterpieces of European portrait-painting, 1420-1670. Taschen, 2002.p. 10-15.
4. Bate, D. (2020). Photography: the key concepts. Routledge.
5. Classical Portraiture : Digital Photography Review. (n.d.). Digital Photography Review.https://www.dpreview.com/challenges/Challenge.aspx?ID=4055#:~:text=A%20classical%20portrait%20is%20minimalist,without%20appearing%20stiff%20or%20awkward.
6. Howard Greenberg Gallery. (n.d.). https://www.howardgreenberg.com/
7. Terminology: group-portrait vs group-photo - Page 2. (n.d.). https://www.largeformatphotography.info/forum/showthread.php?85368-Terminology-group-portrait-vs-group photo/page2#:~:text=A%20group%20portrait%20is%20a,but%20it's%20not%20a%20necessity.
8. What is glamour photography? (2022, May 4). Headshot London. https://www.headshotlondon.co.uk/blog/what-is-glamour-photography/#:~:text=Glamour%20photography%20is%2C%20simply%20put,drama%20and%20all%20that%20jazz.
9. Murphey, D. (2018, March 14). What Is Fine Art Portrait Photography? Fstoppers. https://fstoppers.com/fine-art/what-fine-art-portrait-photography-230024#:~:text=A%20fine%20art%20portrait%20photograph,are%20captured%20to%20represent%20reality.
10. Broz, M. (2024, April 6). How Many Photos Are There? (Statistics & Trends in 2024). Photutorial. https://photutorial.com/photos-statistics/#:~:text=Photos%20taken%20by%20smartphones%3A%20In, most%20popular%20(6.9%20billion).
11. Ezeilo, Florence Ijeoma, and Romanus Chukwuma Ike. "Smartphone Photography and the Low Patronage of Commercial Photographers in Nigeria."

Dr. Ajay Yadav
Assistant Professor
DLCSUPVA, Rohtak, Haryana.

❑ ❑ ❑

The Question of Women's Education and Emancipation in Colonial Bengal : A Study of the Role of Christian Missionaries and the East India Company's Administration

• Dr. Sourav Naskar

When the East India Company began to rule Bengal (India), from the latter half of Eighteenth Century, women's issues were a faraway thing. The question of women's education was not dealt with seriously. It was a patriarchal society that dominated and dictated social norms. The women were either secluded or forced to perform domestic duties. The East India Company's policy of women's education was indirectly meant to build good wives and mothers among the English-educated native Indians who were, in fact, supporters of British rule in India. However, the arrival of Christian missionaries in India changed the picture a lot. The much-needed efforts of the Christian missionaries made women's education a serious issue for the company's administration and the social reformers. However, many questions were raised about the Christian missionaries' activities. One thing that was beyond doubt was that the Christian missionaries saw women's education as a movement. The missionary activities played a significant role in the change of the status of the women, from the domestic being to a rational being with an unquestionable intellect, not less than their male counterparts. This article is indeed an effort to narrate the journey of Christian missionaries under the East India Company's administration for women's education in Bengal.

Keywords : *Women's-education, Emancipation, Administration*

Introduction

When the East India Company began its rule in Bengal, the traditional education system was prevalent in Bengal. For the Hindus, there were pathsalas, tols, and chutuspathis, (present day school) and the medium of instruction was Sanskrit. For the Muslim students, there were maktabs and madrasahs, and the medium of instruction was Arabic, Farsi, and Urdu. In these institutions, mainly theology-centric education was imparted to the students. To Indian students, modern education based on science and logic remained a faraway thing. In the beginning, the company did not bother about native education and thought it was a misuse of money. However, things changed drastically during the tenure of Warren Hastings. He had shown earnest initiative in educating the natives. One should not forget that the company's rule gradually spread to India from the soil of Bengal. In 1781, 'Calcutta Madrasa' was established. In 1792, 'Banaras Sanskrit College' was established. However, the company's aim was to create an educated native community that would be English by taste, morality, opinion, and intellect but Indian by blood and colour. The purpose of the company's government was to supply servicemen for the company's administration. A section of the native community arose and came up in support of the company's administration. The men began to learn and educate with the European style of education. Society began to change. However, the change was incomplete without women's education. The emancipation as well as the education of women appeared to be a big issue for the company's administration. The Christian missionaries came to the forefront to educate the women in India.[1]

The Early Initiatives of the Christian Missionary Organizations

Initiatives for women's education ran through different organizations. The initial restrictions on women's education were very prevalent in Indian society. As soon as Western education spread to society, the demand for educated women as wives also increased. The 'Baptist Missionary Society' of Denmark, 'The Church Missionary Society' of Scotland, 'London Missionary Society' of Britain, and 'The Christian Knowledge Society' of Britain played prominent roles in women's education in Bengal. The volunteers and the devotees played a vital role in emancipating women through education. These organizations sought help from the government.

Claudius Buchanan, reverend of the government chaplain situated in Calcutta, published a memoir in 1805, and he openly advocated and sought the British government's help in spreading theological and western education in India. However, the company administration had adopted a 'no-intervention policy' regarding the native education mission, fearing protests and resistance from the native people.[2] Despite the company's reluctance, the Christian missionaries went ahead with the mission of educating and civilizing the native people of India as well as Bengal. The establishment of orientalist schools helped the Christian missionaries carry forward their mission of educating colonized people. People like J. C. Marshman and Marquis Wellesley took the initiative. However, the company's administration understood the necessity of becoming acquainted with the Oriental culture and language. Both the company and the orientalists put their hands together. Charity schools were opened where both male and female education was emphasized. The missionary schools situated in the presidencies were run by the 'grant in aid' concept when the company's administration provided financial help to the missionary schools, and it was a model of public-private partnership.[3]

Situation Changed after the Wood's Despatch

After the Charter Act of 1833, the company administration announced that emphasis would be laid upon the English language and that people who knew English would be preferred for government jobs. This announcement changed the circumstances drastically. Lord Dalhousie also advocated for women's education. Charles Wood, in his education despatch (1854), clearly opined to an inclusive education debarring gender discrimination. The despatch also mentioned the urgency of women's education in the country. The company's administration, later the queen's administration, also continued with the emphasis on women's education and women's emancipation simultaneously.[4]

Individual Efforts

Sir John Shore, Charles Grant, David Brown, and Henry Martin were prominent evangelists who took a keen interest in the prospect of women's education in Bengal. They influenced the British Parliament to force the company's administration to be

more flexible and liberal regarding women's education. Trevelyan had a collaboration with Alexander Duff. They focused on women's education in Bengal. Duff established 'Central Female School' in collaboration with the government. This school played a prominent role in spreading education among women.[5]

Other Notable Initiatives

Before Mr. and Mrs. Marshman's initiatives to open and run women's schools, there were some early efforts as well. Mrs. Hedges, in 1760, established and ran a school for girls. Mrs. Lawson, in 1812, founded and ran a girls' school. Mrs. Pitts also opened a girls' school. Mrs. Durrel and Mrs. Copeland opened a school for ladies separately. A co-educational school was opened by John Starsberrow. A female school was founded by Mrs. Lawson in 1803. Miss Chaffin opened a girls' school in Calcutta on her own initiative.[6]

Dr. W. Carrey, J. Marshman, Robert May, and J. Stuart played pioneering roles in opening elementary educational institutions for girls. Vernacular education was emphasized. Modern education is also concentrated. In Calcutta and in Srerampore, girls' schools were opened, and Mrs. Hannah Marshman took a prominent role in this regard. Dr. Carey, Mr. Ward also took the initiative to carry female education further ahead. They argued for extensive women's education, as they thought that society could not progress without women's education. Few native elite philanthropic personalities supported missionary education and praised Christian missionary activities. However, as the company's administration did not have women's representatives, the women's educational policies were hampered at the outset.[7]

La Martinie're for Girls was established in Calcutta, which appeared as a breakthrough for women's education in Bengal. James Long took a keen interest in women's education in Bengal. The then collector of Krishnanagar in the Nadia district played a prominent role in spreading women's education in the Nadia district of undivided Bengal. He gave a philanthropic hand to the various Christian missionary organizations that spread women's education in Bengal. In Burdwan, there were some Christian missionaries also, and they tried to spread education among the women. The contribution of the Reverend B. Geidt was notable in this regard.

Regarding the contribution of the Christian missionaries, the unmarried female devotees had very notable roles in this regard. In the decade of 1810, women's and children's education was run broadly by the followers of the Christian missionaries who came to India with the mission of nursing and spreading Christianity through charity work. However, they did not use the method of 'force' in their missionary activities.[8]

Role of Various Christian Societies in spreading Women's Education in Calcutta, Bengal

(i) The Calcutta Catholic Society :

This organization started their activity among the children. Later, they spread their missionary activities among the women during the 1840s. They had a good collaboration with the 'Calcutta Baptist Society', which mainly worked for the children's and girls' education in Calcutta and the suburbs of Calcutta.[9]

(ii) The General Assembly's Institution :

Dr. Alexander Duff played a prominent role in the activities of this organization. Initially, the female students faced some problems as the medium of instruction was not in the vernacular language but in English. Both the school and the college sections were part of this institution. Mrs. Durel, a prominent philanthropist, took an active part, along with Dr. Duff, in spreading women's education in Calcutta. There was a Hindu girls' school and an orphanage along with this institution.

(iii) Christian Knowledge Promoting Society:

For the spread of women's education, this society played an important role. Bishop Middleton appealed to the East India Company to help society and got financial assistance for women's education.[10]

(iv) Association for Ladies:

Mrs. Wilson played a prominent role in this organization. This association played an active role in establishing the Central Female School. Native girls received education from this organization.

(v) Bengal Auxiliary Society:

To promote education among native girls based on English education, this institution played a pioneering role. American Christian devotees played an important role in establishing this institution. This society had a separate wing for women. Saint Xavier's College had a collaboration with this institution.[11]

(vi) Society For Female Education:

Dr. Middleton played a prominent part in this organization. It was established in 1834 and collaborated with the Bishop's College. Its main objective was to propagate the gospel among the native people of Bengal. This institution had a separate girls' wing. Which looked after the education of women.

(vii) The Benevolent Institution:

Srerampore Missionaries took the guardianship of this institution. Both the male and female wings characterize this institution. A basic education was provided. Females were trained to be efficient at domestic work. Scriptural education was also one of the characteristics of this institution.[12]

(viii) The European Orphan Asylum for Females:

Both sexes were permitted to study. St. James's School ran under this institution. The destitute children were admitted to this asylum. The orphan girls were especially taken care of. The female orphans of European countries were also admitted to this asylum.

(ix) The L.M.S. Institution:

The London Missionary Society ran several schools in Calcutta. Modern education, basic science, and good infrastructural facilities were provided to these students.

(x) Calcutta Juvenile Society for Females:

This society made pioneering contributions in the field of women's education. Several schools ran under its guidance. Girls were trained in modern scientific education, apart from religious education. Native converted students were asked to serve the poor and the destitute. In the districts of Birbhum and Bardhhaman, this institution opened branches, and girls were admitted in good

numbers. In the Calcutta port area and Howrah, this society made a significant contribution. In the government gazette, the activities of this society were mentioned. In the central Calcutta region, this society had four schools under its supervision, and girls were admitted to study also.[13]

(xi) The Foreign School Society of the British:

Mrs. Wilson, Mr. Harrington, and Miss Cooke were some notable names who were associated with this society. Twenty-five schools were run under its supervision. A ladies' society was formed under its supervision. This society looked after female education. The number of female students increased day by day. Some assistance programs were taken in order to bring the native females to the school.

(xii) Missionary Society of Srerampore:

This society played a notable role in women's education in Bengal. The missionary intelligence, in its report, mentioned separately the activities of this society with high praise. This society ran several schools under its supervision. Apart from Srerampore, in East Bengal's Chittagong, Dacca, Komilla, Chalna, and Jessore districts, this society had schools under its supervision. In the district of Birbhum, there were several schools run by this society. Female education was concentrated largely, and efforts were made to educate women and simultaneously make them self-dependent both socially and economically. According to the data obtained from the Church Missionary Register, in the first half of the nineteenth century, there were 445 Christian missionaries, 25 missionary societies, and 1350 schools run by Christian missionaries across India. However, the protestant missionaries were quite ahead in their effort to spread education among the women in comparison with the Catholic Christian missionaries.[14]

The Spread of Women's Education outside the Calcutta, Bengal

For female education, the districts of Bengal also played a prominent role. In Hooghly district, there were as many as 90 study centres for females run by Christian missionaries. The

administration of the East India Company also played a major role in the success of these female study centres. In the Chalna district of the then-undivided Bengal, there were several girls' schools under the supervision of the Christian missionaries. In the Bankura and Burdwan districts, there were several schools for women's education where basic education, European knowledge culture, and scriptural education were provided. These schools were under the supervision of the Christian missionaries. In Nadia district, Mr. Ward played a significant role in imparting education among the females. Krishnanagar was famous for female education. In Jalpaiguri and Dhaka, there were many women's educational institutions. As many as 250 female students in each of the districts were admitted. The vernacular language was the medium of instruction. The economically weaker sections were aided, including financially, by the Christian missionaries. The upper- and middle-class families also sent their daughters to these institutions. Gradually, the Christian missionaries were able to create an impact on Indian society through female education.[15]

A special effort was made for the secluded women. The devotees of the Christian missionaries reached out to the women who were not allowed to come outside the family for education. Jon Fordyce of the Free Church Mission made a notable contribution to convincing elite families to permit their women to be educated in modern education by expert teachers. The secluded women were taught both Indian and Western education. There were both vernacular and English as a medium of instruction. The Christian missionaries did not aim to convert the secluded women through education. What the Christian missionaries targeted was to increase acceptance among all sections of Indian society.[16]

The Controversy

The question raised was whether the Christian missionaries were acting on behalf of the East India Company's administration so that the company could rule the empire by making a loyal Indian community that would be British in intellect, morality, and taste but Indian in blood and colour. Whether the Christian missionaries were continuing to fulfil the 'White Man's Burden' of civilizing the people of the Orient. The question raised was whether the Christian missionaries were engaged in establishing political and cultural

hegemony over the native Indians. A section of Indian society tagged the Christian missionaries as 'the agents of imperialism.'[17]

It was a period when the Bengal Renaissance was at its peak. At that very time, the Christian missionaries appeared with a vitalized entity. They were successful in drawing upon the consciousness of gender relations and evangelical understandings. The women's question from the perspectives of culture and education was being dealt with utmost importance. The teachers and devotees of the Christian missionaries who were engaged in women's education in Bengal also belonged to the women community of Protestant and Catholic devotees in Europe. The Christian missionaries, by imparting education among the women of Bengal, were able to create a community of 'new women' who appeared as social reformers, feminists, philanthropists, and academicians. The western educated 'new Bengali women' also appeared as visionary and rational. They also became part of the progressive movements meant for the women.`[18]

The questions were raised time and again as to whether the Christian missionaries really intended to make the new Bengali women's class consciously. Whether the concept of 'good wives and mothers' unexpectedly turned into a new women class in Bengal became a matter of much debate and critical introspection. For women's education in Bengal, Christian missionaries had to fight against the prevalent binary simultaneously. One binary was to eradicate the destitute conditions of Indian women as reflected in the Indological discourses, and the second was to eliminate the tag imposed on the Christian missionaries regarding the conversion of the native Indians.[19]

Limitations Faced by the Christian Missionaries

1. Despite efforts to reach out to the hooks and corners of society, the appeal of Christian missionaries did not reach out to every stratum of society. The lower-caste Hindus became, to some extent, associated with the activities of the Christian missionaries. They sent their females to attend the Christian missionary-led schools in good numbers. The women from the Indian marginal community benefited from meeting the Christian missionaries.[20]

2. Making a proper time schedule for the native women was also a tough job, as the women did have some household work.
3. The female instructors were often transferred either to different places in India or in Britain. This made education difficult for the native Indian women. The growth of education among women in the early phase was quite slow.[21]
4. When some of the Christian missionaries tried to provide religious education, the upper castes of Hindu Brahmins opposed it.
5. The continuity of female education was an issue. Sometimes, it hampers political, social, and economic issues.
6. The assistance from the East India Company's administration did not reach the mark.[22]

Conclusion:

Despite some difficulties, the Christian missionaries played a remarkable role in spreading education among the native Indian women, especially in Bengal. Society at large benefited from the service laid down by the Christian missionaries. It was really a time when superstitions engulfed society. Rationality and inquisitiveness were the need of the hour. The women's conditions were deteriorating day by day. The Christian missionaries provided a helping hand in spreading Western education not only among the women but also among the common Indian people. The women's question had begun to be dealt with utmost importance. Women were no longer treated as domestics. Their importance was increasing day by day, and education was a needed tool provided by the Christian missionaries. The European style of the education system, not denying the prevalent Indian social and cultural norms and ethos, paved the way for Christian missionaries to march ahead. The women's question in Bengal indeed became a matter of great social, political, economic, and cultural discourse. In this context, the contribution of the Christian missionaries can never be denied.

References

1. Hunter, W. W. A Statistical Account of Bengal, Vol. IX. Trubner & Co.: London, 1876, pp. 81-84.

2. Sengupta, K.P. The Christian Missionaries in Bengal 1793-1833. Firma K.L. Mukhopadhyay: Calcutta, 1971, pp. 134-136.
3. O'Sullivan, L. "The London Missionary Society: A Written Records of Missionaries and Printing Press in the Straits Settlements, 1815-1847", Journal of the Malayasian Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. 57, No. 2(247), 1984, pp. 61-104.
4. Andrew, L. M. Missionaries and Education in Bengal (1793-1837). Oxford Clarendon Press: London, 1972, pp. 65-68.
5. Sarwar, Firoj High. "Christian Missionaries and Female Education in Bengal during East India Company's Rule: A Discourse between Christianised Colonial Domination Versus Women Emancipation", Journal of Humanities and Social Science, Vol. 4, Issue 1, 2017, pp. 37-47.
6. Sanyal, Ram Gopal, (ed.). Reminiscences and Anecdotes of Great Men of India: Both Official and Non-Official for Last One Hundred Years, Vol. 2, Sen Press: Calcutta, 1895, pp. 247-253.
7. O' Malley, L. S. S. Bengal District Gazetteers: Rajshahi. Bengal Secretariat Press: Calcutta, 1916, pp. 79-80.
8. Lovett, Richard. The History of the London Missionary Society, 1795-1895. Oxford University Press: London, 1899, pp. 275-277.
9. London Missionary Society, Annual Reports, 1937-1938, London, 1938, pp. 16-21.
10. Mitra, A. West Bengal Census 1951: District Handbook Murshidabad. Shree Saraswati Press: Calcutta, 1953, pp. 95-99.
11. Banerjee, B. G. L. M. S. School: A Retrospect in 125th Anniversary, Volume of Gurudas Tarasundari Institution: Khagra, 1971, p. 67.
12. Forbes, Geraldine H. "In Search of 'Pure Heathen': Missionary Women in 19th Century India". Economic and Political Weekly, Vol. 21, No. 17, April 26, 1986, pp. 735-756.
13. Sharp, H. Selection from Educational Records, Part 1, 1780-1839. Superintendent Government Printing: Calcutta, 1920, pp. 126-127.
14. Marshman, J. C. Life and Times of Carey, Marshman, and Ward: Embracing the History of the Serampore Mission. Vol. II, Longman, Brown, Green, Longmans, and Roberts: London, 1859, pp. 14-19.

15. Fordyce, John. "Emancipation of Woman in India", Calcutta Christian Observer 1 (January 1855), pp. 237-242.

16. Carey, W. H. The Good Old Days of Honourable John Company: Being Curious Reminiscences during the Rule of the East India Company from 1600-1858. Quins Book Company: Calcutta, 1882, pp. 323-328.

17. Kipling, Rudyard. "The White Man's Burden", Popular Magazine McClure: USA, 1989, pp. 35-38.

18. Martin, R. Montogomery. British India, its History, Topography, Government, Military, Defence, Finance, Commerce and Staple Products. Mayur Publications: Delhi, 1855, pp. 163-165.

19. McCully, Bruce Tiebout. English Education and the Origin of Indian Nationalism. Peter Smith: Gloucester, MA, 1966, pp. 195-204.

20 Rowbotham, Judith. 'Hear an Indian Sister's Plea-Reporting the work of 19th Century British Female Missionaries', Women Studies International Forum, Vol. 21, No. 3, 1998, pp. 247-261.

21. Bishop, Steve. 'Protestant Missionary Education in British India', Evangelical Quarterly, Vol. 69, No. 3, 1997, pp. 245-266.

22. Dutta, Kalikinkar. Survey of Indian Social Life and Economic Condition in Eighteenth Century (1707-1813). Calcutta: Firma K. L. Mukhopadhyay, 1961, p. 61.

Dr. Sourav Naskar

Designation : Assistant Professor of
Vidyasagar University, Department of History

Postal Address :
Vidyasagar University, Rangamati,
Vidyasagar University Road,
Midnapore, West Bengal- 721102, India.
Contact No. 9038339905 (WhatsApp)
E-mail- naskar.sourav123@gmail.com

❑ ❑ ❑

Women of Wisdom : Women Rishis in Kashmir with Special Reference to Shanga Bibi

• **Dr. Shabir Ahmad Punzoo**
• **Dr. Gowar Zahid Dar**

The research paper delves into the largely unexplored domain of Women Rishis in Kashmir examining their significant yet often overlooked contributions to the region's spiritual and cultural heritage. The paper focuses on Yawan Maetch who was given the name of Shanga Bibi by the Sheikh Nurdin (R.A). The study aims to highlight her role and influence in shaping the mystical tradition of Islam. The research addresses the gender dynamics within Kashmir spirituality, illustrating how Shanga Bibi alias Yawan Maetch navigated and transcended societal norms to become a revered figure. The findings underscore the contemporary significance and advocate the need to re-evaluate traditional narratives for greater recognition of female spiritual leaders in the broader context of Kashmiri and Indian religious history.

Keywords : *Kashmir, Lal Ded, Rishi, Sheikh Nurdin, Shanga Bibi, Society, Spiritual, Women*

Introduction

In Kashmiri culture, Rishis hold a revered status as spiritual leaders and wise sages. Rishis are known for their profound wisdom, spiritual insight, and devotion to God. They played a pivotal role in guiding individuals on their spiritual journey and were regarded as intermediaries between humanity and the divine. Through their teachings, Rishis promoted moral values, philosophical inquiry, and the pursuit of inner peace and enlightenment. Their influence extends beyond the realm of spirituality, shaping various aspects of Kashmiri

society, including culture, literature, and social norms. Overall, Rishis embody the rich spiritual heritage of Kashmir, contributing to its unique syncretic tradition and fostering a deep sense of spiritual connection among its people The importance of Rishi Women in the spiritual and social fabric of Kashmir is multifaceted and profound, encompassing both spiritual and societal realms. Women Rishis embody the concept of divine feminine principle in Kashmiri spirituality, offering a balance to the predominantly male-centric narratives. Their presence emphasized the inclusive nature of spiritual enlightenment and underscores the belief in the equality of all souls regardless of gender. Women Rishis serve as role models for spiritual seekers, especially women, inspiring them to pursue a path of inner transformation and self-realization. Their lives and teachings demonstrate that spiritual enlightenment is attainable for all, irrespective of societal norms or gender roles. Many women Rishis, such as Lalleshwari (Lal Ded)[1] and Rupa Bhawani[2], emphasized the importance of devotion (bhakti) and love in one's spiritual journey. Their mystical poetry and teachings often revolved around the themes of divine love, surrender, and union with the Absolute, providing seekers with a path of heart-centered spirituality. Women Rishis played a crucial role in preserving and transmitting the spiritual teachings and cultural heritage of Kashmir. Through their oral tradition, poetry, hymns, and philosophical writings, they ensure the continuity of spiritual wisdom across generations, enriching the spiritual tapestry of Kashmiri culture. Women Rishis challenged traditional gender roles and stereotypes, empowering women to assert their spiritual autonomy and leadership. By occupying positions of spiritual authority, they demonstrated that women are capable of attaining spiritual heights and contributing significantly to the spiritual welfare of society.

Many women Rishis were advocates for social reform, promoting values of compassion, equality, and justice within Kashmiri society. Through their teachings and actions, they sought to eradicate social inequalities, discrimination, and oppression, fostering a more inclusive and harmonious community. Women Rishis often served as educators and mentors, guiding disciples in both spiritual and practical matters. They established ashrams and spiritual communities where seekers could receive guidance, education, and support in their spiritual journey, contributing to the

dissemination of knowledge and the promotion of literacy. Women Rishis are revered as cultural icons in Kashmir, celebrated for their literary contributions, artistic expressions, and cultural influence. Their poetry and teachings continue to inspire artists, musicians, and writers, shaping the cultural identity of Kashmir and preserving its rich spiritual heritage. They occupy a unique and indispensable role in the spiritual and social fabric of Kashmir, embodying the values of inclusivity, empowerment, and spiritual enlightenment. Their contributions resonate across generations, enriching the lives of individuals and communities and fostering a deeper connection to the divine.

Women Influence on Sheikh Nurdin (R.A)

In Kashmir, Sufi women and their spiritual prowess have largely stayed as unsung legends. Kashmir is the only region in the sub-continent which has a deep-rooted mediation about the spirituality of women. The elevation of Lal Ded to 'Maryarn-i Makani', 'Rabi'a Thani', 'Arifa' and so on in the Persian hagiographical literature explodes the myth about the lower status of women in Islam. Furthermore, most women Sufis of the Valley were converts to Islam. Their glorification in the Persian sources, in fact, points to the estimation in which they were held by the folk. Unlike Bibi Jamal and Jahan Ara Begum—the only known female Sufis during the Mughal period, the Kashmiri woman Sufis were able to develop close contacts with the commoners. It would, therefore, be worthwhile to give a brief sketch of their role in the history of Islam in Kashmir. Not much space have been given to them instead they found place in few lines or paragraphs of the academic discussions.[3] A good number of academic writings had been dedicated to the women in the Muslim world but in the subcontinent they have been invisible. Here we have provided an outline of some women rishis that had a great role in the culture of Kashmir but predominantly our focus is Shanga Bibi alias Yawan Meach.

Under the Sheikh Nurdin (R.A), the women rishis movement got institutionalized and left a deep imprint upon the society. The Persian sources mention about 10 women Rishis, their centers where they served people and guided their disciples and even travelled across the valley to teach the ideals of Rishis movement

to the people.[4] They were the persons of high intellectual caliber which is depicted from Shama Ded[5] who composed the first Marsiya in Kashmiri language and Behat didi's dialogue with the Mir Muhammad Hamdani which left the latter perplexed. Sheikh's early interaction and communication with the Women like Lal Ded, Sudra Moj and the Zia Ded influenced his attitude and aspirations which helped him institutionalizing the women's movement. Sheikh revered Lalla and even raised her status by calling her our avtar(Apostle). Lalla challenged the status quo and demanded society which will be free and fair. The contemporary historians like Jonaraja, Srivara and the Yudhabhata didn't gave her any place in their writings because they were in close touch with the bureaucratic class which were attacked Vehemently by the Lalla. The first time we find a mention of Lalla is in the Persian Tazkira. Baba Daud Mishkati in his Tazkira titled Asrar ul Abrar while portraying her in a positive light uses the words Majzuba and Aarifa (Ascetic and Gnostic). The Sheikh in the following verse showed reverence for the Lalla[6] :

Tas Padman pore chei Lallei	Teme Galei Amrith Cheiou
Su Saenei Avataar Lallei	Tuithei Mei War Deiuow
That Lalla of Padmanpore	Who had drunk the nectar
She was an avtaar of ours	Oh God, give me the same spiritual power

The Rishinamas have thrown a detailed light on the dialogue between the Sheikh Nurdin (R.A) and the Sadra moj. The mother insisted sheikh to return home and live a family life but sheikh resisted.[7] Finally, Sadra moj accepted the view point of her son and even was very satisfied on seeing the spiritual merit of his son. The dialogue might have influenced Sheikh to a great extent which is quite visible latter on when he advocated to his disciples that spirituality can be attained even living a family life. Some of his disciples even got married under his benefaction. Zia Ded his wife also had an influence on the Sheikh's life. She insisted Sheikh to return and take care of his children.[8] Sheikh was reluctant to leave the path of God and finally Zia ded understood that the unrivaled

spiritual merit of Sheikh is more riveting than the family ties and she herself followed the path of her husband. She became a dominant character and had consummate services towards the mankind. She acted as a support to the Sheikh which is clearly depicted in the following verse.[9]

Cze Chukh Haliyuk Kamarband	Ba chas Taneh haenz Paet Kaai
Cze Yeli sapdakh dayeh sund bandeh	Cze govkh riush bu rish bai.

Shanga Bibi alias Yawan Meach

Yawan Meatch was a female disciple of Sheikh Noordin (R.A). A beautiful dancer, a courtesan she was famous in the high society of Kashmir at the end of the fourteenth and the beginning of the fifteenth century.[10] The Rishinamas and the folklore mention that once the Sultan of Kashmir went to see pious Brahman Saint who lived at the Ishbar.[11] The Brahman refused to meet the distinguished visitor, where upon the insulted sultan sent the Yewan Maetch, to humble the pride of the Brahman. The Brahman was at first unwilling to grant an interview to the courtesan, she pretended to become his disciple, and he ultimately fell a victim to her charms. The seduction of the venerated saint made his devotees a butt of ridicule. So, in order to avenge the wrong, they sought the services of same courtesan to tarnish the image of the Nurdin (R.A). When Yawan Meach approached the Rishi, she was asked to go back. When she, persisted, the infuriated Nurdin (R.A), with a mere glance turned her into an old woman of ninety. Leaving aside the question, whether a sharia conscious ruler like Sultan Sikandar or his son the celebrated Budshah would have resorted to such foul means, the story illustrates the fact according to the M Ishaq Khan that Islam brought tremendous social and ethical tensions within a society characterized by established notions of the piety of the Brahman class.[12] As a matter of the fact the origin of the story seems to have been almost contemporaneous with the Nurdin's reforming missionary activities. The following verses were addressed to the Yewan Mach by the Saint: -

Born wert thou last to thy mother.	That too by the grace of God
With a cleansed body didst thou move about.	Thou shalt realize thy good, despite thy maddening youth
To the back wood thou camest like a brute	Much good will this bring unto thee
Like a rope of grass hast thou become now	thou shall realize thy good, despite thy, maddening youth
Who were the wicked men to advise thee thus?	Leaders of the theatre ought they be
Sunk deep (in sin), like a stone, hast thou	Thou shall realize despite thy maddening youth
How many bridges of good deeds has thou demolished	And disturbed the mind of the Rishis?
Thou shalt lose thy youth now, And shalt realize (thy good),	despite thy maddening youth.
Whose daughter thou art,	have we come to know beforehand
Why shoulst thou rob me, the poor me	Realize thy good, thou maddened with youth
Of thy condition, I am quite ignorant	And reprove thee with all good will
O God, save me in this Kali Yuga[13]	Realize thy good, thou maddened with Youth.

So great was the influence of the Sheikh Nurdin's on the consciousness of the Yawan Meach that she felt ashamed and after offering touba got entry into the Rishi order. She was renamed as Shanga Bibi and joined the movement with a view to building up a healthy society on the ethical principles of the Quran. The Sheikh's spiritual merit committed the Yewan Meach to be an ethic of social action, which is depicted by the voluntary and affirmative behavior for bringing economic benefits to the community. It is written in the tradition that she along with few other women donated precious items

to the Rishis to enable them to be self-supporting. Her habitat at the Mokhta Pokhur and later on at the Chari-e- Sharif turned into a close knot community, sharing common ideals not only for her spiritual good, but more importantly for the benefit of the poverty stricken masses. A kitchen was also maintained by her for the comfort of inmates and the needy. She gave up her desires, particularly selfish desires, for the common good. In order to achieve this objective, she actively participated in the affairs of society. She realized the core of being a homogeneity between her individual life process and the rest of the cosmic order.[14]

Shanga Bibi lived during a time when Rishi movement was deeply integrated into the spiritual landscape of Kashmir. She was a contemporary of other notable Sufi saints and Rishis who were active in the region. Her spiritual journey and contributions were influenced by the syncretic traditions of Sufism, which emphasized personal devotion, mystical experiences, and a direct connection with the divine. Shanga Bibi's teachings were deeply rooted in Sufi mysticism. She emphasized the importance of inner purification and the journey toward divine union. Her approach to spirituality was characterized by a deep sense of love (ishq) and devotion (bhakti) towards God. She believed in the transcendence of religious boundaries, promoting a universal approach to spirituality. Shanga Bibi taught that true spiritual enlightenment could only be achieved through the purification of the heart and soul. This involved practices such as meditation (muraqaba), self-discipline (riyazat), and constant remembrance of God (zikr). Her emphasis on divine love reflected the Sufi tradition's focus on the heart's relationship with the divine. She encouraged her followers to cultivate a deep, personal love for God, which would lead to spiritual fulfillment and enlightenment. Shanga Bibi's teachings blended elements of Islamic Sufism with indigenous Kashmiri spiritual practices. This syncretic approach helped to bridge cultural and religious divides, fostering a sense of unity and harmony among her followers. She incorporated local Kashmiri customs and traditions into her spiritual practice, making her teachings accessible to a broader audience. This integration helped to preserve and enrich the indigenous spiritual heritage of Kashmir. Like many women Rishis, Shanga Bibi was not only concerned with spiritual matters but also with the social well-being of her community. Her teachings often addressed issues

of social justice, equality, and the upliftment of marginalized groups. Shanga Bibi played a crucial role in empowering women within her community. She provided spiritual guidance and support to women, encouraging them to pursue their spiritual paths and assert their roles within the spiritual and social spheres. Her teachings emphasized the equality of all individuals before God, regardless of gender, social status, or religious background. This message of equality resonated with many and contributed to the social reforms within her community. Shanga Bibi's contributions have left a lasting impact on the spiritual and cultural fabric of Kashmir. Her teachings continue to inspire spiritual seekers, and her legacy is preserved through oral traditions, poetry, and the ongoing practice of her spiritual principles. Shanga Bibi's influence can be seen in the continuing tradition of Sufi poetry and music in Kashmir, which often reflects themes of divine love and mystical union. Her integration of Sufi and indigenous Kashmiri practices has enriched the spiritual heritage of the region, ensuring that her teachings remain a vital part of Kashmiri spiritual life. Shanga Bibi stands as a testament to the significant role that women Rishis have played in the spiritual and social history of Kashmir. Her life and contributions exemplify the deep spiritual wisdom, compassion, and social consciousness that characterize the legacy of women Rishis in the region. Through her mystical teachings, syncretic approach, and commitment to social justice, Shanga Bibi has left an enduring legacy that continues to inspire and guide spiritual seekers in Kashmir and beyond.[15]

Contemporary Relevance

The contemporary relevance of women Rishis in Kashmir is profound, reflecting their enduring legacy and ongoing influence in multiple facets of Kashmiri society. Their contributions continue to shape spiritual, cultural, and social dimensions, highlighting the timeless nature of their wisdom and teachings. The teachings of women Rishis like Lalleshwari and Rupa Bhawani continue to inspire contemporary spiritual seekers.[16] Their emphasis on personal spiritual experience, self-realization, and inner purity resonates deeply with individuals seeking authentic spiritual paths in today's complex world. Modern spiritual practitioners and teachers often refer the vakhs of Lalleshwari and the hymns of Rupa Bhawani[17] in their discourses, ensuring that these ancient wisdom traditions remain accessible and relevant. The meditative and contemplative practices

advocated by women Rishis are increasingly being recognized for their psychological and emotional benefits. Techniques such as mindfulness, which echo traditional meditation practices, are widely adopted to address contemporary issues like stress and anxiety. The universal values of love, compassion, and unity promoted by these Rishis continue to provide a moral and ethical framework that transcends religious and cultural boundaries, promoting harmony and understanding in a diverse society.

The poetic contributions of women Rishis, particularly Lalleshwari, remain a cornerstone of Kashmiri literature. Their verses are studied in academic settings and celebrated in cultural festivals, preserving the linguistic and cultural heritage of Kashmir. The spiritual and devotional themes found in the poetry of women Rishis influence contemporary Kashmiri music and arts. Folk songs, classical compositions, and visual arts often draw inspiration from their lives and teachings. Women Rishis embody the syncretic cultural identity of Kashmir, where Hindu, Buddhist, and Islamic traditions have historically coexisted and enriched each other. This syncretism is a source of cultural pride and serves as a model for coexistence and mutual respect in the contemporary world. Their legacy helps maintain a distinct Kashmiri spiritual identity that is cherished by the local population and recognized globally. The lives and contributions of women Rishis provide powerful role models for contemporary women, emphasizing the importance of spiritual and social empowerment. They inspire women to pursue their spiritual paths and assert their roles in religious and societal contexts. The teachings of women Rishis promote social justice and equality, advocating for the rights and dignity of all individuals. This advocacy resonates in contemporary movements for gender equality and social reform. In a region often marred by conflict, the teachings of women Rishis emphasize peace, understanding, and reconciliation. Their messages of love and compassion are particularly relevant in fostering social cohesion and mitigating communal tensions. The ethical principles espoused by women Rishis, such as humility, integrity, and service to others, continue to influence contemporary social values and behaviors, encouraging a more just and compassionate society.

The teachings and contributions of women Rishis are increasingly included in educational curricula at schools and

universities, ensuring that new generations are aware of their legacy and can draw inspiration from their lives.[18] Spiritual organizations and cultural institutions often conduct workshops and seminars dedicated to the study and propagation of the teachings of women Rishis, fostering a deeper understanding and appreciation of their relevance. Annual festivals and commemorations celebrate the lives of women Rishis, bringing together diverse communities to honor their contributions. These events help to keep their legacy alive and relevant in contemporary society. In summary, the legacy of women Rishis in Kashmir remains deeply relevant today, providing spiritual guidance, cultural enrichment, and social empowerment. Their teachings continue to inspire and guide individuals, while their influence promotes a culture of inclusivity, compassion, and harmony. Through various contemporary initiatives, the wisdom of women Rishis is preserved and propagated, ensuring that their timeless contributions remain a vital part of Kashmiri identity and global spiritual heritage.

Conclusion

In conclusion the exploration of women Rishis in Kashmir sheds light on a historically significant yet often overlooked aspect of Kashmiri spiritual and cultural heritage. The women like Shanga Bibi, Behat Didi and Dehat Didi not only played a pivotal role in the spiritual development of the region but also in the dissemination of knowledge and traditions. Their contributions challenge contemporary narratives that often marginalize women's role in spiritual and intellectual domains. By bringing Shanga Bibi's story to the forefront, this research highlights the need for a more inclusive historical narrative that acknowledges and celebrates the diverse contributions of women to Kashmir's rich cultural tapestry. The future research should continue to uncover and document the lives and works of these remarkable women to ensure that their legacies inspire and inform future generations.

Notes and References

1. By now it is an established fact that Lalla was born in a Kashmiri Brahmin family. As a self- conscious and emancipated individual whatever she felt, she expressed (in the form of her sayings

known as Vaakh). The contemporary Brahmin society seems to have been aghast at it. This was because Lalla challenged the hegemony that the Brahmin class had created in the contemporary Kashmir society. Besides her high standing at the philosophical pedestal, as a poet the historical and literary importance of Lalla's sayings will keep her at a very high standing for all times to come. Ali Mulla Raina, Tazkiratul Arifin, Ms O.R.D, No.592, Cultural Academy Srinagar, p. 37a, 41b.

2. Devi Rupa Bhawani, like Lal Ded, is one of the great female mystic poets of Kashmir. She was the second great mystic poet o 17th century, had a deep experience of ups and downs of life. The worldly sufferings showed her the path of spiritual life. Her spiritual Guru was her father Pandit Madhav Joo Dhar who initiated her into the mysteries and practices of Yoga. She gave rich mystic poetry to the Kashmiri Language. In her poetry we can find the influence of both Kashmir Shaivism ad Islamic Sufism, Dhar Trilok Nath, Rupa Bhawani (Life Teachings and Philosophy), Power Publishers, Kolkata, 2013, p.38

3. Stray references are found in the book Kashmir's Transition to Islam: The Role of Rishis authored by M Ishaq Khan. Khan Ishaq, pp. 211, 247. Farooq Fayaz dedicated only few lines to the Yawan Maetch. Fayaz Farooq, Sheikh Ul Alam: Kashmir Revisited, Gulshan books Srinagar, 2011, pp.69-70

4. There was an established group of female disciples of the Shaikh, which came to be known as "Chaat Kori" (i.e. daughters trained under the spiritual care of Shaikh Nurddin), who used to be trained in the spiritual knowledge and gnosis from the Shaikh directly, and he took a fatherly care of these disciples. Disciples like Shama Bibi and many others like her and according to their capacities kept on contributing to the spread of the Shaikh's mission and more importantly kept leading the women wing of the Rishi movement. Ishaq Khan, op. cit., pp. 245-248.

5. One of the most prominent female disciples of Nund Rishi referred to in the Tazkira literature is Shama Bibi. In dissemination of the ideas of Rishi movement within the valley of Kashmir Shaam Bibi has played a significant role. Her deep reverential attachment with the Shaikh is evident from the Marsiya or elegy that she composed following the death of Shaikh Nooruddin. In the history of Kashmir elegy writing (Marsiya Nigari) in the Kashmiri language this is the first known elegy. This poem has

thus both literary as well as historical importance. Specifically, from a historical view point this poem/elegy gives us a window to the level of reverence and attachment his devotees, followers and disciples had for the Shaikh. Baba Kamal, Rishinama,, MS, Nos 4, 15, Cultural Academy, pp.15-140.

6. Taking a cue from the living tradition of calling Lalla as Lal Ded or Lalla Mouj by Kashmiri Muslims, Ishaq holds that such evidence indicates the important place occupied by Lall in the lives of various strata of the Kashmiri people as well as her role in the formation of the regional culture. Fayaz Frooq, op.cit., p.120
7. Afaqi Kuliyat, pp461-465, Saqi Motilal, Kulyati Sheikh ul Alam, C.A.P, 1985, p.63
8. Parimoo B, N, Nundresh: Unity in Diversity, Srinagar, 1984, p.53
9. The Zia Ded replied to Sheikh that I am part of you. If you choose to be the follower of God, you are a Rishi I am a (She) Rishi.
10. Baba Kamal,op.cit., pp.15-140.
11. A picturesque village at the outskirts of Srinagar, situated at the western foot of the Zabarwan hills, lies between two famous Mughal gardens Shalimar and Nishat on the eastern bank of the Dal Lake.
12. Khan Ishaq, op.cit., p.211
13. The Sheikh admonishes her in the verse and convinced her to leave the evil path. The Sheikh makes her remember how great she was born and how some greedy leaders used her for their own benefit. The Sheikh admonishes the alluring courtesan so convincingly that she felt ashamed and after offering tauba gained entry in the Rishi order. Khalil Baba, Rauzatul Riyaz , MS, Cultural Academy, Srinagar, MS NO.954, p.456.
14. She was even granted the unique privilege of acting as a mujawir at her spiritual preceptor's tomb According to the Ishaq khan the fact illustrates that a courtesan after clothing herself with the robe of faith and humble repentance, could be elevated to sainthood bears elaborate testimony to the egalitarian appeal that Islam had for the commoners in the valley, see Ishaq Khan, p.247.

15. Her story refers to a historical fact that the institution of prostitution or flesh trade had been in operation from the earliest times. There are plenty of references available in Rajtarangni, when services of this class of women were borrowed to tarnish the image pf an immediate rival. In medieval Kashmir to the institution was operational and members of economically sound families continued to be targets of their charm and art. Fayaz Farooq, op.cit., p.84
16. If Lalla set the trend, Rupabhawani reinforced the path and gave it a new lease pf life. The many Hindus like Charanjeevi Karnail believe that it was devidurga who walked in her human form in Kashmir.
17. The most famous verse of Rupa Bhawani is

    I didn't come on earth as a seed to fall in the circle of births

    I am not the elements earth, water, fire, air and ether

    I am beyond the primordial universe self and the individual; self

    I aam the supreme consciousness. Dhar Trilok Nath, OP.Cit., p.65.
18. Their study is the need of hour. The Centre of Sheikh ul Alam (R.A) studies, University of Kashmir is one such institution which is working towards the endeavour. Much academic writings have been published on the Sheikh Nurdin (R.A) and the Lal Ded, now focus should be on the other women who died unsung and unwept.

Bibliography

Khalil Baba, Rauzatu –I-Riyaz, Ms. Cultural Academy, Srinagar, Ms. Nos. 1,31.

Ali Mulla Raina, Tazkiratul Arifin, Ms. O.R.D, No.592, Cultural Academy Srinagar

Mattu Baha udin, Rishinama, Ms. I.O.L, No. 3684.

Dhar Trilok Nath, Rupa Bhawani (Life Teachings and Philosophy), Power Publishers, Kolkata, 2013,

Fazal Abul (d.1602), Ain-i-Akbari, Lucknow, 1893. English Translation, H. Blochmann, 1873, Second Edition, Calcutta, 1972.

Saqi Motilal, Kulyati Sheikh ul Alam , C.A.P, 1985,

Bazaz, Prem Nath, Daughters of Vitasta, Pamposh Publishers, 1959.

Khan, Mohammad Ishaq, Kashmir's Transition to Islam- Role of the Muslim Rishis, Manohar Publishers, Delhi, 1994.

………………., The Rishi Tradition and the Construction of Kashmiriyat, in Imtiyaz Ahmad and Helmut Reifeld, edited, Lived Islam in South Asia, Adaptation, Accommodation and Conflict, Social Science Press, New Delhi, 2004.

Rafiqui, Abdul Qayum, Sufism in Kashmir, Bharatiya Publishing House, Varanasi, n.d.

Wani, Mohammad Ashraf, Islam in Kashmir, Fourteenth to Sixteenth Kashmir, Oriental

Publishing House, Srinagar, 2005.

Fayaz Farooq, Sheikh Ul Alam: Kashmir Revisited, Gulshan books Srinagar, 2011,

Zutshi, Chitralekha, Languages of Belonging, Permanent Black, New Delhi, 2004.

Grierson, Sir Georgee, Lalla Vakyani, London, 2004.

Parimoo B, N, Nundresh: Unity in Diversity, Srinagar, 1984,

Qadri M.A(ed.), Sheikh Ul Alam and Our Society, Srinagar, 1992.

Dallh Minlib, Sufi Women and Mystics: Models of Sanctity, Erudition and Political Leadership, Routledge, 2003

Hameed Syed Saiyidain(ed), Contemporary Relevance of Sufism, Indian Council for Cultural Relations, 1999.

Helminski Camille, Women of Sufism: A hidden Treasure, Shambhala Publications, 2003

Dr. Shabir Ahmad Punzoo

Aligarh Muslim University, Aligarh

Dr. Gowar Zahid Dar

University of Kashmir, Srinagar

❑ ❑ ❑

Occupational Structure Pattern of Population In Bemetara District (Chhattisgarh)

Ghanshyam Nage • Devendradhar Dwivedi

The abundance of non-working population in the study area has created many socio-economic problems. There is 50.04 percent non-working and 49.96 percent working population in the area. Occupational structure adequately represents the economic progress, prosperity and poverty of any area. The greater the participation of the population in this, the more advanced will be the economic development of that area. When business structure is affected, both production and development decrease. In order to make the business structure excellent and strong, the main elements of the study area like the income structure of the population, purchasing power, socio-economic level, economic balance and formulation of economic plan for determination and change of economic problems in agriculture, industry and other business production. Contribution would prove to be the cornerstone. For proper economic development of the study area, it is necessary to establish a balance between various developmental works and population distribution.

Keywords - occupational structure, occupation, main workers, farmer workers, farmer labourer, population etc.

Introduction

Occupational structure is an important component in various aspects of population organization. Economic activities undertaken to earn livelihood are called business. The occupational structure of the population explains its economic characteristics. This gives information about the economy and level of economic development of a region or state.

By studying the occupational structure, the standard of living of the residents of a particular area can be accurately estimated. Its study also reveals whether an area is agriculture based, animal husbandry or industry based. The occupational level of a country, society or individual is directly related to the socio-economic level. Business also keeps changing according to the socio-economic development. Occupational structure also explains the nature of labour force. There is diversity in the business structure of each region , hence its study is very important.

Objectives Of The Study

The working population plays an important role in the economic, social and cultural development of any area, in the business structure. Business structure has a positive impact on all aspects Therefore, the main objective of the present study is to study the working population, full-time farmers, agricultural labourer, animal husbandry, fisheries, fruit producers, mineral producers, household and family industries, agro-based industries, manufacturing industries, commerce-trade communication, working in the study area for the purpose of earning money. And transportation To obtain information about the percentage of people engaged in resource work and to present suggestions for making plans for their socio-economic and cultural progress.

Study Area

The area of the presented research study is Bemetara district. It is located in the south-western part of Chhattisgarh state. This district is geographically spread between 21° 21' to 20° 03' north latitude and 21° 07' to 81° 55' east longitude.

Its total geographical area is 2,854.81 square kilometers. Administratively this district is divided into 5 tehsils – Navagarh, Bemetara, Berla, Saja and Thankhamharia. According to the 2011 census, the total population here is 7,95,759. The male population here is 3,97,650 and the female population is 3,98,109. The study area is basically a rural dominated district. The rural population in the area is 7,21,192 and the urban population is 30,114. The population density in the study area is 278 persons per square kilometer. Here the decadal growth rate of population is 42.65 percent and the sex ratio is 1001 females per thousand males.

LOCATION MAP OF BEMETARA DISTRICT IN CHHATTISGARH

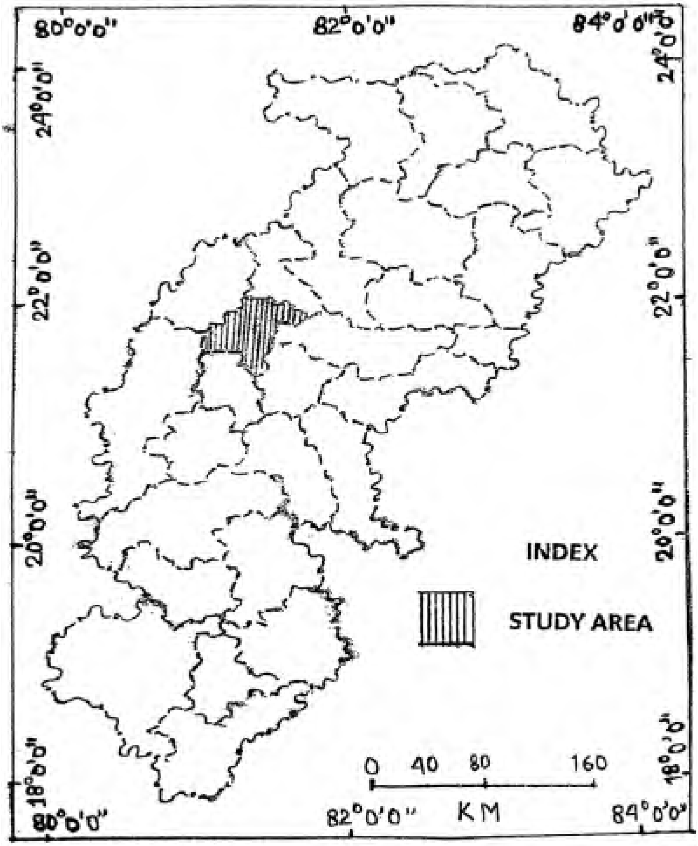

Methodology

This study is mainly based on secondary data. The data related to occupational structure has been obtained from the district statistics book and studied by analyzing the data. In the occupational structure, the entire occupational population has been divided into five categories, considering the working population as the basis.

1. Working population
2. Non-working population
3. Farmer
4. Farmer labourer
5. Other workers

Table no 01

District bemetara : tehsil wise occupation structure (in percentage) 2021-2022

S. No.	Tehsil	Working Population	Main Working Population	Marginal Working	Farmer	Agricultural labourer	Domestic Industinl Working	Other Working Population	Potal	Non Working Population
1	Nawagarh	48.52	37.84	10.67	16.59	18.23	0.20	2.80	100	51.47
2	Bemetara	48.14	40.94	7.19	16.24	18.52	0.32	5.85	100	51.85
3	Saja	50.62	40.50	10.12	15.19	20.56	0.44	4.28	100	49.37
4	Than Khamharia	49.98	43.91	6.06	17.09	21.66	0.47	4.67	100	50.01
5	Berla	53.18	37.64	15.53	14.95	17.73	0.35	4.60	100	46.81
	Total District	49.96	39.62	10.37	15.95	18.87	0.33	4.45	100	50.04

Sources : District Statistics hand book, 2021-2022.

Working Population

The population that does physical, mental, intellectual and technical work for the purpose of earning money is called working population. Working population includes full-time farmers, agricultural labourer, animal husbandry, fishermen, flower growers, fruit growers, mineral growers, domestic and family industries, manufacturing work, commerce and trade, communication and transportation, peace-security and other social services.

The working population is divided into two classes. (a) Main worker (b) Marginal worker.

According to the Indian Census, in the data published in 1981 and 2001, workers have been divided into the following four categories :

1. Farmer
2. Agricultural labour
3. Domestic industrial workers
4. Other workers

The working population has been estimated on the basis of crude work rate, the formula of which is as follows–

Main power Participation quotient Index =

$$\frac{\text{Total working population} \times 100}{\text{Total population}}$$

Distribution of working population of the total population of the study area, 49.96 percent is working population and 50.04 percent is non-working population, out of which 39.62 percent is main working population and 10.34 percent is marginal working population.

Thus, there is a serious problem of dependents and unemployment in the study area. The predominance of non-working population acts as a hindrance in the socio-economic development of any area because the production is done by a limited number of people in a particular area and is used and consumed by many times more people.

The main reason for non-working population in the study area is the predominance of young population as a result of rapid population growth and low participation of women in economic activities and the result of unemployment.

In the study area, the highest working population is in Berla tehsil (43.84 percent) and the least in Navagarh tehsil (48.52 percent). Whereas in Saja tehsil (50.62 percent), Thankamharia tehsil (49.98 percent) and Bemetara tehsil. (48.14 percent)Among the working population in the study area, males are 54.08 percent and females are 45.92 percent.

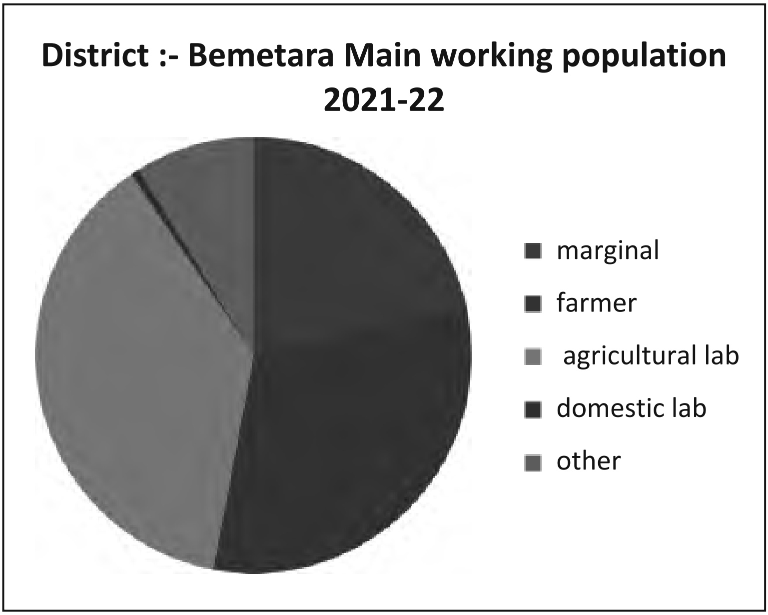

Fig. 01

Main Worker

The main workers in the study area are 39.62 percent. The highest is 43.91 percent in Thankamharia tehsil and the lowest is 37.64 percent in Berla tehsil. Whereas in Saja (40.50 percent), Bemetara (40.94 percent) and Navagarh tehsil it is 37.84 percent

Marginal Workers

The percentage of marginal workers in the study area is 10.34. The maximum number of marginal workers is 15.53 percent of the total population in Berla tehsil and the least is 6.06 percent in Thankamharia. Whereas in Saja and Navagarh tehsils, 10.12 and 10.67 percent marginal worker population is found respectively

Table no 02

Bemetara district : occupational structure of workers (in percentage)

2021-22		
Ocupational	**Male**	**Female**
farmers	41.15	39.04
farmers labourer	42.32	54.95
Domestic industries	0.95	0.69
Other occupation	15.58	5.29
Total	57.94	42.06

Sources : District Statistics hand book, 2021-2022

The percentage of total workers in the study area is 49.96 (Table No. 02) The percentage of male workers in the area is 57.94 and the percentage of female workers is 42.06. Among agricultural workers, 41.15 percent are male and 39.04 percent are female. Among agricultural workers, male workers are 42.32 percent and female workers are 54.95 percent. Similarly, among domestic industrial workers, male population is 0.95 and female population is 0.69 percent. The male population engaged in other professions is 15.58 percent and the female population is 5.29 percent.

Farmer

A farmer is a person who does agricultural work on private land or land taken on rent and who decides when and how agricultural work is done on the land. He takes complete care of his agriculture and this person is One who takes the risk of agricultural work and participates in the income received from agriculture15.95 percent of the working population in the study area are farmers. The highest farmer population is found in Thankamharia tehsil (17.09 percent). The lowest farmer population is in Berla tehsil (14.95 percent)Whereas the farmer population is found to be 15.19 percent in Navagarh tehsil (16.59 percent), Bemetara (16.24 percent) and Saja tehsil .

Bemetara district : occupational structure of workers (in percentage) 2021-22

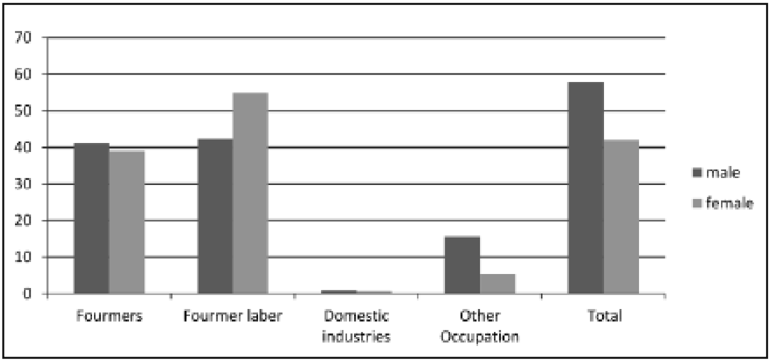

Agricultural Labourer

Agricultural labourer are that part of the working population who work as labourer for farmers and in return receive wages in food grains and money. They come under the category of agriculture dependent population. The agricultural labourer has no worries about profit or loss. Of the total working population of the study area, 18.87 percent are agricultural labourers. The maximum number of agricultural labourer is in Thankamharia tehsil at 21.66 percent and the least in Berla tehsil (17.73 percent), while Saja tehsil (20.56 percent), Bemetara (18.52 percent), and Navagarh tehsil have 18.23 percent agricultural labourer.

Domestic Industrial Labourer

There has been very little development of industries in the study area, which is responsible for the poverty and low income here. Only 0.33 percent of the total working population of the study area is engaged in domestic industrial work, which is responsible for the poverty and low income here. The highest number of domestic industrial labourer is in Thankamharia tehsil at 0.47 percent and the least in Navagarh tehsil (0.22 percent), whereas there are 0.44 percent domestic industrial labourer in Saja tehsil, 0.32 percent in Bemetara and 0.35 percent in Berla.

Other Working Population

Under this, workers engaged in teaching, health, administrative

and miscellaneous services are included. In the study area, 4.45 percent workers are employed in other works. The highest (5.85 percent) number of workers in the region is in Bemetara tehsil and the least (2.80 percent) is in Navagarh tehsil. Whereas in Thankamharia tehsil (4.67 percent), in Berla tehsil 4.60 percent and in Saja tehsil (4.28 percent) the working population is employed.

Non Working Population

Non-working population is that population whose contribution to economic production is negligible. It is also called dependent population. This includes children, elderly, disabled, students studying, housewives living within their homes, unemployed young men and women who are economically dependent on the working population. 50.04 percent population of Bemetara district falls in the category of non-working population Here there is 100 non-working population for every 100 working population.

The predominance of non-working population acts as a hindrance in the socio-economic development of any area because goods are produced by a limited number of people in a particular area and are used and consumed by many times more people. The predominance of non-working population gives rise to many economic, social, political and cultural problems in a particular area The main reason for the abundance of non-working population in the study area is the predominance of young population as a result of rapid population growth, low participation of women in other economic activities and increasing unemployment.

In the study area, the highest working population is in Bemetara tehsil (51.85 percent) and the least in Berla tehsil (46.81 percent). Whereas the non-working population is 51.47 percent in Navagarh tehsil, 50.01 percent in Thankamharia and 49.37 percent in Saja tehsil.

Conclusion

The abundance of non-working population in the study area has created many socio-economic problems. As a result of which, on the one hand, there is a hindrance in the economic development of the region, and on the other hand, it is responsible for low income, low standard of living, illiteracy and poverty and unhealthy environment.

References:

1. Tiwari, R.C., 2019, Geography of India, Pravalika Publications, University Road, Allahabad, page no. 537.
2. Panda, B.P. 2007, Population Geography, Madhya Pradesh Hindi Granth Academy, Bhopal, page no. 263 -266.
3. Basant, Surajdev, 2012, Population Geography, Arjun Publishing House, Prahlad Gali, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi, page no. 155.
4. Tiwari, Ram Kumar, 2015, Population Geography, Pravalika Publications Universities Road, Allahabad, page no. 246.
5. Maurya, Ram Kumar, "Ayodhya (Faizabad) District, Uttar Pradesh Study of occupational structure pattern in Uttar Pradesh" Geographical Journal Issue-25, 2020, page no.-131-134.
6. District Statistics Handbook, Bemetara Chhattisgarh, 2021-22.

Dr. Ghanshyam Nage

Guest Lecturer Govt Pt.J.L.N. Arts And Scince Pg College Bemetara CG.

Dr. Devendradhar Dwivedi

Assistant Professor Govt Pt.J.L.N. Arts And Scince Pg College Bemetara CG.

Lost in the Pursuit of Excellence: The Mental Health Burden of Academic Stress on Young Minds

Dr. Sneha Sharma • Ms. Rishika Gupta

Academic stress has become a significant concern among adolescents, affecting their mental health and overall well-being. According to researchers Lazarus and Folkman (1984), academic strain is seen as a dynamic interplay among students and their surroundings. Mental health issues arise when observed challenges surpass coping mechanisms. Performance expectations, heavy workloads, time management challenges, and societal pressures often trigger it. It has been connected to many detrimental effects on mental health, such as anxiety, sadness, burnout, and irregular sleep patterns. The purpose of this study was to look into how academic stress affected young people's mental health. Focusing on its causes, consequences, and potential interventions. The study sample comprised 100 adolescents (50 boys and 50 girls) aged 16-19, selected through purposive sampling from senior secondary schools and colleges in Jaipur. Two specified instruments were used to gather data: The Questionnaire on Academic Stress (Rajendran & Kaliappan, 1990) and the Mental Health Inventory (Kumar & Sen, 1990). Through SPSS version 26, descriptive statistics, t-t-ratio, and Pearson product-moment correlation were employed for evaluating the data. Higher levels of academic stress were linked to worse mental health outcomes, according to the data, which showed a substantial negative association between academic stress and mental health. The findings also showed that academic stress varies by gender, with females experiencing a higher degree of educational stress than males.

Keywords : *Academic stress, Mental health, Adolescent, Gender, Anxiety, Well-being.*

Introduction

Traditional Indian Gurukulas provided an educational structure that combined intellectual maturity with personal development while promoting curiosity and both personality growth and mental enlightenment. Today's academic landscape mainly derives from performance measurements standardized educational frameworks and societal benchmarks. If students find themselves "lost" while aiming for excellent grades they experience psychological distress from a system that values results above personal wellbeing.

According to Indian traditions, education stands as a divine pursuit that commands supreme respect. Ancient scriptures called the Vedas and Upanishads establish learning as the superior wealth through the profound wisdom contained within the sayings "Vidya dhanam sarva dhanat pradhanam" (knowledge is the greatest wealth). Educational veneration that existed historically has evolved through the present day into rigorous academic pressure that harms students' mental health stability. The research conducted by Deb, Strodl, and Sun (2015) reported worrying rates of academic stress among Indian students which generated symptoms of anxiety and depression as well as burnout. A fundamental change in educational view stresses the immediate necessity to study academic stress's psychological impact on students in such an academic achievement-oriented system.

Mental Health

The systematic study of mental health progressed at a measurable pace only during the past few decades although the concept of mental health existed since human communities first formed. Mental health, according to the World Health Organisation (WHO, 2003), is the capacity of individuals to make use of their capabilities and cope with day-to-day challenges to sustain productive effort and improve their meaningful service to communities. According to this definition, mental health stands as a vital prerequisite for both personal well-being and community engagement.

Total health fundamentally relies on mental well-being because it alters psychological operations and determines both mental and interpersonal choices and physical reactions. According to Bhargava and Raina (2007), mental health acts as a guiding force

that maintains personal conduct together with social relationships leading to adjustment and adaptation abilities. The research work of Kumar and Sen (1973) established six measurement components that fully define mental health operations.

- Emotional Stability represents a person's success at controlling their emotional responses while sustainably maintaining level emotions that do not change minimally under stress or otherwise.
- Fear of Failure This index focuses on the anxiety and stress arising from the possibility of academic failure, including fear of disappointing parents or teachers.
- Autonomy encompasses independent decision-making, self-reliance, and internal regulation of actions and thoughts.
- Security and Insecurity consist of emotional states including safety together with confidence as well as freedom from anxiety.
- Self-concept by evaluating their worth and identity alongside their sense of self-esteem.
- Intelligence needs to account for mental productivity skills like problem resolution and rational reasoning in addition to both emotional and social competence functions.

Academic Stress

All countries view academic institutions as indispensable building blocks that drive both national advancement and growth. The organization's main stakeholders depend on student accomplishments to achieve success. Modern global competition demands students to pursue knowledge acquisition while developing skills that will support their professional and personal lives.

The academic sector has received extensive research attention since scholars began investigating academic stress - one form of stress that emerges in the academic environment. According to Aafreen et al. (2021), examination pressure from multiple domain sources leads students to experience elevated stress levels. Academic testing alongside student expectation levels and grades and outside educational expectations emerged as primary stress factors according to Kouzma and Kennedy (2004) in their research of high school students. Wang et al. (2015) established students with higher academic stress and greater school burnout tendencies as more likely to develop depression symptoms.

Rajendran and Kaliappan (1973) proposed five indices of academic stress, each addressing specific dimensions that influence students' psychological and emotional well-being in academic settings:

- Within this dimension, students exhibit perceptions of academic helplessness followed by diminished confidence combined with lowered self-esteem in their academic environments.
- This dimension focuses primarily on two types of stress linked to academic failure which includes concerns about letdowns for parents or teachers.
- Friction between students and their teachers results in learning spaces where tension prevails due to relationship-building deficits.
- Teaching methods together with teacher-pupil relationships become counterproductive when they employ ineffective communication styles that result in student stress.
- The insufficient availability of proper learning material that meets both student needs and relevancy becomes a major cause of academic stress.

Gender Differences

Academic research into gender-based psychological distinctions among students engages wide attention yet reveals conflicting conclusions about these differences. Numerous research studies demonstrate female students confront mental health issues at a greater rate than their male counterparts. Penile study participants experienced more apparent mental health problems than female participants according to Adlaf et al. (2001). This study confirmed earlier findings by Mahmoud et al., Eisenberg et al. (2007), and Bayram and Bilgel (2008). Numerous scholarly investigations, such as those conducted by Sun et al. (2017) and Tung et al. (2018) along with Liu et al. (2019) showed depression occurs more frequently in female students.

The research by Grant et al. (2002) discovered that mental health outcomes showed no significant gender variation which added to existing dispute about this subject. Research activity has produced insights that add complexity to our understanding of stress experiences and coping techniques between genders. Brougham et

al. (2009) discovered that female students demonstrated increased stress levels that exceeded their male counterparts specifically due to academic and social pressures. Calagus (2011) found female students displayed higher stress levels specifically due to academic program demands as well as issues in their lectures and classroom environment.

Several research studies discovered that gender does not create substantial distinctions in academic stress levels. Dhakkal (2013) provided evidence that academic stress experiences matched between genders which Fromel et al. (2020) and Singh and Singh (2014) also confirmed. A study by Karaman et al. (2019) established life satisfaction and locus of control together with gender as essential factors that contribute to academic stress. However, the study also revealed that female students experience higher levels of academic stress than male students. Each study in this field proves how complex the differences in university stressors and mental health assessments exist between male and female students.

Adolescence

According to the World Health Organization (WHO), adolescents fall between ages 10 to 19 years during which time they pass from childhood into their adult lives. The psychosocial development of adolescence brings students through a process of identity construction while they practice separating from their parents as they bond closely with their peers (Auerbach & Gramling, 1998).

Three main phases of development are commonly used by researchers to classify adolescence:

1. Early Teenage Years (Ages 10 to 13): Marked by the onset of puberty and initial exploration of identity.
2. Middle Adolescence (Ages 14 to 17): During this stage, peers gain more power as cognitive functions mature while emotional operations continue to evolve and independence assumes stronger importance.
3. Late Adolescence (Ages 18 to 21 and beyond): During this phase initiates identity coordination while expanding self-rule functions with the implementation of durable objectives alongside significant personal connections.

Adolescents form 25% of India's national population and 20% of the world's total population which confirms their vital demographic weight and developmental value. WHO reports that mental disorders affect around 20 percent of children worldwide. The Indian Council of Medical Research reports that 12.8% of India's 1-18-year-old children deal with mental health difficulties. The current epidemiological data highlights an urgent requirement for adolescent mental health interventions especially for India because its cultural environment together with resource constraints exacerbates psychological issues.

New research demonstrates the rising prevalence of adolescent mental health disorders across populations. According to Patel et al. (2007) adolescence presents a fundamental window for mental health treatment because most psychiatric conditions appear during this developmental stage.

Significance

This research holds essential value because it aims to bridge fundamental knowledge gaps between academic stress and students' cultural values and mental health status within the Indian academic community. Academic stress presents a broadening worldwide problem specifically affecting students in India because the expectations from both society and family settle heavier burdens upon students to achieve exceptional results (Kumar & Bhukar, 2013; Deb et al., 2015). This study examines the problem area with the professional objective of creating evidence-based tactics to advance academic outcomes and mental wellness.

Research value becomes increasingly important because student mental health crises show concerning upward trends. According to research executed by Verma and Gupta (2019) along with Singh and Sharma (2020), the psychological burden of academic performance demands immediate attention from young persons.These study outcomes contribute critical information for educational leadership through policymaking reforms. This research integrates multiple existing studies as it investigates fresh aspects of academic stress to generate substantial value for the existing academic pressure discourse which spreads across wider societal domains. According to Deb et al. (2015), data showed that academic demands led 60 percent of students to experience persistent stress.

The most effective way to tackle these challenges is through a holistic approach. School curricula should include mental health education to equip children with the skills they need to manage stress. For instance, studies such as those by Singh and Sharma (2020) have shown that creating an environment that combines academic achievement with mental well-being brings about positive changes in students' psychological resilience and academic involvement.

Literature Review

Rajeev Kumar Gupta's 2020 study on academic stress and mental health among 300 adolescents (aged 17–20) highlighted how academic pressure negatively impacts mental health and academic performance. The research found that stress levels were influenced by students' personality types, parental education, subject choices, and family structure. Gupta emphasized the importance of teachers, parents, and caregivers identifying stress sources and implementing stress reduction strategies like yoga, meditation, and task segmentation. The study calls for collaborative support from both educational institutions and families to promote mental well-being.

Academic stress, especially during tests and homework, has a detrimental effect on students' mental health, according to Dr. A. Catherine Jayanthy's 2019 study on the subject of academic pressure and mental state with 200 high school students. The study suggests that stress levels varied by gender, mental health remained consistent across both groups, and educational settings did not affect mental health scores. The research highlights the need for stress management programs and mental health interventions to reduce depression, anxiety, and stress, thereby improving both academic performance and overall health.

In 2024, Puja Mishra and Dr. Rashmi Choudhuri studied gender differences in academic stress among 575 class 11 students in Varanasi's CBSE schools. According to the findings, 68% of students reported feeling moderately stressed, and male students were more stressed than female students. The study emphasized the need for academic support systems, urging schools and parents to collaborate with teachers to manage stress. It highlighted the importance of healthy coping mechanisms and generating motivational eustress to encourage personal achievement.

In their 2021 study, Dr. Rajalakshmi V R. and Monica Baiju looked at the psychological health and academic stress of 80 Keralan college students. Academic stress and psychological well-being were found to be positively correlated in a minor but statistically significant way ($r=0.282$, $p<0.05$). While overall psychological well-being scores were similar for both sexes, female students showed greater degrees of stress than male students. These results highlight the necessity of gender-sensitive intervention techniques to alleviate academic stress and promote the mental health and general well-being of students.

There were no general gender disparities in the mental health of 100 high school pupils in a 2018 study by Dr. Rajani R. Senad. Girls excelled in adjustment and autonomy, but boys demonstrated superior emotional stability. The study found no discernible gender disparities in mental health parameters despite these variances. The results emphasize the necessity of customized support networks to meet the mental health needs of students based on their gender and promote their emotional and psychological growth.

Methodology

Objective-

- The first aim of this study is to determine the connection between mental health and academic stress in Indian adolescents.
- The second aim of this study is to determine the disparities in academic stress between boys and girls.

Hypothesis

H1: Academic stress and mental health are significantly correlated negatively.

H2: Males and females experience significantly different levels of academic stress.

Sample & Sampling Technique

100 young people aged 16-19 were selected through purposive sampling across Jaipur's urban regions in Rajasthan. Toward data collection, a total of 50 male and 50 female students from upper-middle-class backgrounds were evaluated. Participants

met specific inclusion criteria: Participating individuals lived in urban environments and came from well-off middle-class homes while remaining free of physical or mental health problems. The research excluded participants who displayed psychopathological conditions or who possessed deteriorated physical and mental health to concentrate on non-clinical samples. The purposive Sampling method is used to collect data.

Tools

Mental Health Battery : Kumar and Sen constructed the Mental Health Battery which contains 130 questions that analyze mental health functions across six primary indices. A two-step response system scores each question as 0 or 1 so tests provide measurable results about different mental health dimensions. This battery has good reliability and validity and is being used in many Indian research.

Academic Stress Scale : The 40 items on the Academic Stress Scale give students five degrees of response choices, from "No Stress" to "Extreme Stress." Denoting more severe academic stress the evaluation system uses a rating scale from 0 to 4. This assessment tool helps researchers gauge stress degrees specifically within academic environments while helping detect factors that create student stress.

Results

The present section contains a summary of the statistical methods applied for hypothesis evaluation within this research. The preliminary section presents descriptive statistics alongside correlations and t-ratio findings jointly reported next.

Correlation analysis and descriptive statistics:-

The mean and standard deviation values for academic stress and mental health are shown in the following table:-

Table : 1 Mean and SD value for Mental health and Academic stress.

	Total Population	Mean	SD
Mental Health	100	75.79	9.539
Academic Stress	100	116.76	21.119

Table 1 : indicates that academic stress has mean and standard deviation values of 116.76 and 21.119, respectively, whereas mental health has mean and standard deviation values of 75.79 and 9.539.

The investigated relationship between academic pressure and mental wellness used correlation methods as part of the analysis. Research results presented in Table 2 showed academic stress and mental health have a negative link (r = -0.624) which is statistically strong and significant at 0.001 levels.

Table 2 : Correlation between Mental Health and Academic Stress

Variables	Mental Health	Academic Stress
Mental Health	1	-0.624*
Academic Stress	-0.624*	1

∗ value is significant at the 0.01 level

Gender Differences in Academic Stress

A t-ratio statistical test revealed that academic stress amounts between genders differed significantly from each other, as displayed in Table 3.

Table 3 t and p-value for Academic Stress

Variables	Male (N=50)		Female (N =50)		t-value	p-value
	Mean	SD	Mean	SD		
Academic Stress	115.36	24.600	118.16	17.087	0.661	0.510*

∗ value is significant at the 0.01 level (2-tailed).

The results confirmed females scored significantly higher in academic stress than males with a t-value of 0.661 ($p < 0.001$), reporting means of 118.16 (SD = 17.087) compared to male means of 115.36 (SD = 24.600).

Discussion

Research interest has increased significantly in the interaction between academic stress and mental well-being particularly for students. The purpose of this study was to investigate two hypotheses: first, that academic stress and mental health are significantly correlated negatively, and second, that existence of a substantial gender difference in educational stress. The empirical data validates both research assumptions while recent scholarly work enhances our discussion section. We selected 100 young people aged 16-19 a total of 50 male and 50 female students from upper-middle-class backgrounds were evaluated.

Analysis shows academic stress and mental health maintain a significant negative relationship (-0.624*) which demonstrates students face declining mental health because their academic pressure intensifies. Multiple studies in academic literature show clear evidence of how academic stress damages student's mental well-being. People who face substantial academic pressure because of performance requirements often develop mental health problems which manifest as burnout alongside depression and anxiety symptoms.

According to the study's findings, there is a strong negative correlation (-0.624**) between academic stress and mental health, indicating that mental health is negatively correlated with academic stress. This aligns with research by Arora et al. (2023), published in Frontiers in Psychology, which demonstrated that academic stress negatively impacts students' emotional well-being and increases the likelihood of anxiety and depression.

The research data establishes that academic stress manifests differently between male and female students. The data revealed female students experience greater academic stress (M=118.16, SD=17.08) than their male counterparts (M=115.36, SD=24.60) and statistical breakdowns supported this finding ($p<0.001$). The academic literature shows evidence that female students uniquely

confront advanced expectations plus multiple responsibilities and stronger emotional responses to education-related stress.

Another study by Pascoe et al. (2020) in BMC Public Health emphasized that academic stress triggers a stress response in students, affecting their physical and psychological health. According to Pascoe et al. (2020), authors emphasized that prolonged exposure to academic pressure may result in burnout and subpar academic performance. In a similar vein, Deb et al.'s (2019) study in the Asian Journal of Psychiatry investigated how gender affected Indian students' academic stress. The authors observed that female students had significantly higher stress levels due to cultural expectations and perceived pressure to succeed academically (Deb et al., 2019).

The research presents crucial implications that educational institutions together with mental health providers should use to develop their strategies. Academic stress targets students differently based on their gender so colleges must implement gender-specific methods when considering student well-being approaches.

Conclusion :

Results conclude that Academic stress is negatively correlated with the Mental health level of adolescents and girls have a high level of Academic stress as compared to boys.

Limitations

- This research study shows decreased applicability toward extending its discovery range. A sample size of 100 trial participants hampers our capability to extend research findings beyond the current study scope. A larger sample size across various demographics would deliver a better understanding of what subject-specific patterns exist.
- This research examination uses only one specific age cohort between 16 and 19 years old which means it does not investigate younger or older participant experiences. The research becomes challenging to use for varied developmental periods because it only studied participants within a restricted age bracket.
- The research primarily focuses on gender roles yet neglects important alternative variables that actively contribute to mental

health and academic stress such as cultural background family relationships and peer interaction.

Suggestion

Future research will benefit from several specified enhancements which would expand their range and applicability. It would be necessary to grow the participant number because this expansion will strengthen the transferability of research results. Extending the sample size beyond its current parameters would enable researchers to deliver a better understanding of both mental health problems and academic pressure experiences among students.

Research validity will increase through diverse participant selection which includes members from various socio-economic levels geographical areas and cultural regions. A wide age spectrum study allows researchers to explore how mental health and academic stress develop across different stages of life. Extra findings would emerge through the inclusion of participants who fall outside the specified age range from 16 to 19.

Research would provide a deeper understanding when it includes complementary variables such as family structures and peer relationships plus analytical dimensions related to cultural influences.

References

- Anitha, S., & Ravi, V. (2020). Determining the role of academic stress on the mental health of PUC students. International Journal of Indian Psychology, 8(4). https://doi.org/10.25215/0804.148
- Baiju, M., & Rajalakshmi. (2021). College students' psychological health and academic stress. 9. https://doi.org/10.25215/0903.022
- Casuso-Holgado, M. J., Moreno-Morales, N., Labajos-Manzanares, M. T., & Montero-Bancalero, F. J. (2019). The association between perceived health symptoms and academic stress in Spanish Higher Education students. European Journal of Education and Psychology, 12(2), 109. https://doi.org/10.30552/ejep.v12i2.277
- Deb, S., Strodl, E., & Sun, J. (2014). Academic-related stress among private secondary school students in India. Asian

Education and Development Studies, 3(2), 118–134. https://doi.org/10.1108/aeds-02-2013-0007

- Gupta, R. K. (2020). Academic stress and mental health among adolescent students. International Journal of Indian Psychology, 8(2). https://doi.org/10.25215/0802.045
- Ho, T. T. Q., Nguyen, B. T. N., & Nguyen, N. P. H. (2022). Academic stress and depression among Vietnamese adolescents: a moderated mediation model of life satisfaction and resilience. Current Psychology, 42(31), 27217–27227. https://doi.org/10.1007/s12144-022-03661-3
- Högberg, B., Strandh, M., & Hagquist, C. (2020). Gender and secular trends in adolescent mental health over 24 years – The role of school-related stress. Social Science & Medicine, 250, 112890. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2020.112890
- Hosseinkhani, Z., Hassanabadi, H., Parsaeian, M., Karimi, M., & Nedjat, S. (2020). Academic stress and Adolescents Mental Health: A Multilevel Structural Equation Modeling (MSEM) study in northwest Iran. Journal of Research in Health Sciences, 20(4), e00496. https://doi.org/10.34172/jrhs.2020.30
- Ijmcer – Journal. (n.d.). https://www.ijmcer.com/
- Jauhar, A. A., Nazim, H., & Hassaan, H. M. (2024). Role of Gender in the Relationship of Academic Stress and Academic Procrastination. Bulletin of Business and Economics (BBE), 13(2), 838–841. https://doi.org/10.61506/01.00398
- Kaur, D. (2012). Impact of Academic Stress on Mental Health : A Study of School-going Adolescents. Global Journal for Research Analysis, 3(5), 27–29. https://doi.org/10.15373/22778160/may2014/11
- Kumari, N. (2017). A Study Of Gender Difference In Stress Among University Students. Ijrar - International Journal of Research and Analytical Reviews (IJRAR), 4(4), 374–377. https://doi.org/10.1729/journal.21875
- Pathirana, N. B. D. D., Ahmed, N. S., N, N. V., & Shastri, N. S. (2016). Stress and Academic Performance. International Journal of Indian Psychology, 3(3). https://doi.org/10.25215/0303.068
- Porwal, N. K., & Kumar, N. D. R. (2014). A Study of Academic Stress among Senior Secondary Students. International Journal of Indian Psychology, 1(3). https://doi.org/10.25215/0103.017

- Subramani, C., & Kadhiravan, S. (2017). Academic Stress And Mental Health Among High School Students. Ijar - Indian Journal of Applied Research. https://www.worldwidejournals.com/indian-journal-of-applied-research-(IJAR)/recent_issues_pdf/2017/May/May_2017_1493820733__162.pdf

Dr. Sneha Sharma
Assistant Professor (Department of Psychology)
S. S. Jain Subodh (Autonomous) PG College,
Rambagh Circle, Jaipur
drsnehasharmajaipur@gmail.com

Ms. Rishika Gupta
Student (M.A. Psychology)
S. S. Jain Subodh (Autonomous) PG College,
Rambagh Circle, Jaipur
Rishika.gupta2200@gmail.com

❑ ❑ ❑

Celestial Nymphs And Sacred Space : Interpreting Devanganas In Early Medieval Temples Of Rajputana

• Dr. Shobha Singh

The visual and symbolic depictions of Devanganas, or celestial nymphs, on the walls of temples from the eighth to the twelfth century are examined in this article. Originating from the mythological traditions of Buddhist art and Vedic literature, Devanganas became sculptures that represented divine beauty, elegance, and fertility. These figures, also known as Dev Kanya, Surasundari, Alasa Kanya, and Nratyangana, served as ornamental and symbolic elements in temple complexes and were frequently associated with ideas of cosmic harmony and auspiciousness. Drawing on regional treatises like Vrksarnava and Ksirarnava as well as classical books like the Samrangana Sutradhara and Prasada Mandana, this research explores iconographic postures, required placements, and associations with deities and directions. Important temple locations where Devangana iconography achieves artistic perfection are also examined in the article, including Kshemankari, Bodadit, Osia, Tusa, Nagda, and Abu.

The nymph entertains the gods in the heaven. They are imitated in the sculptures of Temples. These nymphs are known by different names like Devangana, Dev Kanya, Surasundari, Nratyangana and Alsha etc. These Devanganas symbolizes grace, beauty, divine elegance, serving as a testament to the exceptional craftmanship and artistic excellence prevalent in Indian sculptural tradition.

The concept of vedic goddesses and apsaras develop in vedic literature but do not find a visual representation while principle of yakshi through its absorption in Buddhist art acquires a visual imagery which when compared with apsaras and other goddesses seems to

be analogous. In order to understand origin and characteristics of apsara in vedic literature it is clear that the nature and association of an apsara as an aqueons nymph, is also associated with trees, fertility and engaging in dance, song and play. This prompts us to connect them as predecessors of the devanganas shown in sculptures on the temple architecture. Brilliant attempt has been made by Stella Kramrich in 1940, Alice Boner in 1950, M.A. Dhaky in 1960 and Ratan Parimoo in the 1980 to interpret Surasundaris and apsara sculptures in conjuction with temple architecture.

In meruprasada section of samrangana sutradhara, Bhoja describes that the torana should be adorned with makara, heads of elephants, leaves as well as group of apsaras1. Vrksarnava, Ksirarnava and Diparnava are 15th century architectural texts of Gujarat. In these texts some verses throw light on the placement of specific devanganas on certain directions conjointly with the dikpalas. There are description of 32 devanganas who should be placed in pradakshina order on the jangha starting from the Isana corner that is north east with Menaka. The thirty two devanganas are: Menaka, Lilavati, Vidhichitra, Sundari, Shubhagamini, Hansavali, Sarvakala, Karpuramanjari, Padmini, Gudhashabda-Padmanetra, Chitrini, Putravallabha, Gauri, Gandhari, Devasakha, Marichika, Chandravali, Chandrarekha, Sugandha, Satrumardini, Manini, Manahansa, Susvabhava, Bhavachandra, Mrigakshi, Urvasi, Rambha, Manjughosa, Jaya, Vijaya, Chandravaletra, Kamarupa. Prasada Mandana written by Sutradhara Mandana in the reign of Rana Kumbha of Chittor mentions that the vidyadhara thara should be seven parts broad and ten parts long. On this make beautiful dancing salabhanjikas. Decorate the centre of the mandapa, vitana with paintings and devanganas in dancing mode along with puranic themes.[2]

Ksirarnava describes how each of the Devanganas should be represented according to their prescribed iconographies and descriptions.

1. Menaka – bow and arrow, left leg raised.
2. Lilavati – amorously shunning laziness.
3. Vidhichitra – holding mirror and putting bindi.
4. Sundari – simply dancing.

5. Subha – pulling out a thorn from the foot
6. Hamsavali – putting payal, lotus eyed.
7. Sarvakala – dancing with varada chintana mudra.
8. Karpuramanjari – dancing in nude while bathing
9. Padmini – one holding a stalk of lotus.
10. Padmanetra-Gudhasabda – holding abhaya hasta and a child stands by her side.
11. Chitrini – dancing with left hand on the head.
12. Putravallabha – one who has a baby on her side.
13. Gauri – Killing a lion.
14. Gandhari– a special one dancing with right hand aloft.
15. Devasakha– one dancing a circular dance.
16. Manchika– aiming a bow-arrow looking on left side.
17. Chandravali–looking in front with anjali hasta, beautiful eyed.
18. Chandrarekha–writing a letter, her forehead is broad like the half moon
19. Sugandha–dancing in circles holding the moon aloft.
20. Satrumardini–holding knives and dancing
21. Manavi–holding flower garlands and dancing.
22. Manahamsa–dancing with her back visible.
23. Svabhava–one whose body is bent in chaturbhangi, leg is lifted and hands raised above head.
24. Bhavachandra–one who is dancing with her hands and feet in yogamudra.
25. Mrigaksi–dancing with full bloom and beauty
26. Urvasi–killing the asura with a khadga and pulling him by his shikha.
27. Rambha–holding knives in both hands and dancing with her right foot lifted up.
28. Manjughosa she dances in circles holding khadga in both hands.
29. Jaya–dancing with a water pot on her head.

30. Mohini–dancing and embracing the male companion.
31. Chandravaktra–dancing gracefully by lifting one foot.
32. Tilottama–either holding manjira or pushpabana

I have chosen the period from 8^{th} to 12^{th} century in my research article because major of the Devangana imagery appears on temple architecture between these four centuries.

Probably the earliest representation of Devangana on the mandovara is shown in Kshemankari temple c. 825 A.D. The mandovara of this temple is divided into Karna:pratiratha:Bhadra:p ratiratha:karna in the ratio of 1:1/2:2:1/2:1. The pratiratha contains the Chamaradharni holding a mirror and a bowl3. Alasa and Padmini Naiyaka are carved at pratirathas in Sun temple, Bodadit c. 900-925 A.D.

In Sun temple Tusa, Udaipur the bhadra devakostha has an image of Surya, seated in his seven horsed chariot surrounded by a tinny udagama. The bhadra is flanked by a pratiratha in which two devanganas are placed one involved in kandukakrida and other in Alsa pose. On the Vitana of this temple eight figures of devanaganas i.e. putravallabha, darpana, kumbhadhari and amralumbidhari are carved along with kamadeva.

The Sachiyamata group of temples at Osia c. 1025 A.D. bears an inscription dated AD 11784 refering to repairs done by one sadhu Gayapala. On the Jangha of mandapa facing east Devi 1 group is organised with putravallabha an a standing devangana on the lower section, while Brahma and Vaishnavi are placed in the panel. The Devi 2 group consists of a kesanistoya karini and nupurapadika in profile, placed in the lower register while Ganesha and ardhnarishvara are placed in the upper two registers. Aditya 2 group has a lady pulling out the thron by lifting the leg to the waist and bending her arm above head while the other devangana is shown holding a mirror or a cup and standing.

In Vitana of one of the temple of Sas-bahu of Nagda eight figures of Salabhanjikas are found. The vitana decoration of Abu of the Vimalavasahi and later temples expand the scope and intricacy of carving. The vitana image of devanganas multiply to twenty four and sometimes thirty two.This includes majority of dance postures.

In Mira temple at Ahar c. 990 A.D. bhadra contains Vishnu-Lakshmi or Shiva Parvati images aurrounded bt two Devanganas in the bhadra pratiratha, which bears two more devanganas in its lateral wall facets. They are so placed as though they were posing for a photograph from jharokha for someone. Almost the entire range of devangana imagery has been carved at Adinath temple, Ahar, Udaipur. Devangana imagery of nupurpadika, vinadharni, darpana, markatcheshta, keshamstoyakarin, alsa, kandukakrida, prasadhika, putravallabha are found here. At the background of all these figures a thich foilage is carved fashoined in the form of a stylized manner of the lotus stalk. This reminds as Yakshi connection. In Jain iconography the allusion to vegetation and yakshi are found.

The devangana sculptures are placed circumambulating the entire temple in Ambika temple Jagat, at the Jangha level starting with the mukhchatuski and mukhmandapa to the antarala, mandapa and the actual garbhgriha, barring the transcept windows of the mandapa projections. The south wall contains putravallabha, padimini, amralumbidhari, kandukakrida, alsa and south wall contains kesanistoyakarni and alasa.

In the Ghateshvara Mahadev temple at Badoli, mandapa pillars bear octagonal faces which are occupied by apsara devangana standing on lotus pedestrals. According to krishna Deva, these figures have resemblance with Khajuraho ‘apsaras’ in postural details of dress and jewellery5. With the onset of 10th century the sculptor became more confident and certain in the treatment of devanganas and develop it to its final culmination, around when they would surpass the other sacred images of the deities in grace, charm and aesthetic beauty. This trend is visible in Ghateshwar temple in which devangana placed to the base of the pillars from the capitals to small niches on the mandovara.

Coomaraswamy, there is no motif more fundamentally characteristic of Indian art from the first to the last, than is that of the 'woman and tree16, The yaksa and yaksi are the vegetation spirits while the apsaras are water borng and air borne. They do reside in the trees just like the yaksis. It was the basic need for fertility and fecundative potential that the two got identified together with the 'tree and woman' motif, to coalesce into the

concept of the devangana, which multiplied its imagery and forms to become tangible and palpable in the most sensuous forms of women. Absract features like smells are associated with them, their limbs are beautiful, their form is ever auspicious, thus they generically began to signify the good aspects of a woman. The potential of the same imagery also contained the elements of heroism and asceticism which can be evoked in particular. Thus when texts were formulated, for example the Silpa prakasa7 of Orissa, it clearly mentions a yantra or a compositional device which contains dvibhangi (or diagonal shaped lines) that signify 'gati' , dynamism and kinetic plasticity, which distinguish the nature of the woman from the man.

As has been observed by Parimoo with reference to the mithuna sculptures, where the woman stands entwining herself round the male, that the principle of 'sthiragati' are implied. Thus the creation of the whole range of apsara, yaksi, devangana, mithuna, dikpala images, are a creation of abstract elements of nature, human behaviour and personality transformed and given a physical form, attributes, gestures and postures. This coexistence of nature and the world of humans suggests the concerns of the medieval man and his attempt to symbolise the cosmic order, in giving a structure to the smaller units of that order, namely the individual imageries, decorative motifs and architectural parts.A study of the architectural' texts suggests that by the medieval period the term salabhanjika had focillized into a technical term, denoting a generic architectural feature, which was totally divorced from its original dynamic metaphor of fecundity, pregnant with meaning. The terms such as yaksis, surangana, apsara, nayika, devangana, alasakanyas became popular and part of the parlance of architectural language. They contributed nothing much to the imagery and the source of the imagery which actually came from the creative literature of the natyas, kavyas and the Vedic-Puranic narrative sources. This finally led to the sociocultural motif of the 'woman and vegetation' inter-relationship which has even inspired socio-religious rituals and folk cults.

Nupurpadika, Adinath Temple, Ahar

Alasa, Mulaprasad West, Ambika Pemple, Jagat

References

1. Samrangana Sutradhara (57, 46-47), ed. Ganpati Sastri, G.O.S., No. 25, Baroda, 1966
2. Prasadmandana, 7-32, 34
3. M.A. Dhaky, Genesis and development of Maru-Gurjara Architecture, Studes in Indian Temple Architecture-ed. Pramod Chandra, AIIS Bombay, 1975, p. 144-165
4. Devendra Handa, Osia:History, Archaeology, Art and Architecture, Delhi, 1984, p.53
5. Krishna Deva, Temples of North India, New Delhi, 1969, p.34
6. A.K. Coomaraswamy, Yaksa, 1971, p.32
7. Shilpa Praksha, p. 47, Fig.11-Alasa Yntra

Dr. Shobha Singh
Assistant Professor-History
Govt. College, BAGRU
email Id:Guleriashobha@Gmail.Com

❑ ❑ ❑

स्वशासन की गांधी दृष्टि

• कनक तिवारी

इसमें सन्देह नहीं कि आज़ादी के आन्दोलन के आखिरी तीस बरसों में अन्य किसी भी जननायक के मुकाबले इतिहास गांधी का श्रेय के ज्यादा दर्ज कर चुका है। इस कालखण्ड में भारत और गांधी एक दूसरे के समानार्थी रहे हैं। राष्ट्रपिता को स्वाधीनता के बाद विकसित होने वाले गणतंत्र की केन्द्रीय चिंता मूलतः '**हिन्द स्वराज्य**' (1909) से ही रही है। बापू केवल राजनीतिक स्वाधीनता के पक्ष में नहीं थे। भारत के लिए पंचायत राज अथवा ग्रामीण गणराज्य पर आधारित स्वराज की उनकी आश्वस्त परिकल्पना थी। संसदीय पद्धति के शासन के प्रति अपने बुनियादी सोच के प्रारम्भ से ही उन्हें असहमति रही है। भारत ने स्वतंत्रता पर्व आने के पहले ही संविधान सभा की स्थापना कर ली। सभा का मुख्य दाय स्वतंत्र होते भारत को उसके नवोदित संविधान से अभिषिक्त करना था। उसकी मूल बहस में स्वाधीनता-आंदोलन की धड़कनों को पहचानकर स्वतंत्र होने वाले देश के करोड़ों नागरिकों के सपनों का रेखांकन भी शामिल था। संविधान सभा ने 9 दिसंबर, 1946 को अपने गठन से लेकर 26 नवम्बर, 1949 तक संविधान की पोथी गढ़ने में अनेक देशभक्तों तथा प्रखर बुद्धिजीवियों का सहारा लिया। उसकी बुनियादी बहस में अनेक विषय आये। पंचायत राज के आधार पर भारत में स्वराज शक्ति का पिरामिड बनाया जाना चाहिए था। दुर्भाग्यवश उसे ही संविधान निर्माता लागू नहीं कर पाए।

गांधी की समझ के सन्दर्भ में जयप्रकाश नारायण ने पंचायतों के महत्व पर प्रसिद्ध इतिहासकार धर्मपाल की पुस्तक 'संविधान सभा और पंचायत राज' की भूमिका में कहा है, 'भारत में और शायद एशिया तथा अफ्रीका के सभी विकासशील देशों में, फिर भी स्थिति अधिक अनुकूल है। छोटा-सा प्राथमिक समुदाय, गांव तथा कस्बे अभी भी अस्तित्व में हैं। सच है कि वर्तमान में गांव

में भी वास्तविक 'सही समुदाय, कम ही मिलते हैं, किन्तु कम से कम, समुदाय का भौतिक ढांचा तो वहां मौजूद है। मुख्य काम यह है कि इस ढांचे में प्राण-प्रतिष्ठा की जाए और ग्रामों तथा कस्बों को 'वास्तविक समुदायों' के रूप में प्रतिष्ठित किया जाए। लेकिन यदि गांव में किसी प्रकार की राजनीतिक प्रणाली शुरू की जाती है, तो उससे पहले से ही बुरी तरह बढ़ा हुआ समुदाय और अधिक टूटेगा। इसका परिणाम समुदाय में सामंजस्य की भावना का विकास न होकर बिल्कुल उल्टा ही होगा। पंचायती राज की राज्य व्यवस्था को 'विशाल समाज' वाली राज्य व्यवस्था की नकल कदापि नहीं करना चाहिए। इसी कारण गांधीजी ने संसदीय लोकतन्त्र की व्यवस्था नकार दी थी। इसे वे बहुसंख्यकों की तानाशाही कहते थे। उन्होंने ग्रामराज पर जोर दिया (जिसमें तार्किक रूप से नगर राज भी सम्मिलित है)। इसे ही वे स्वराज का आधार मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने निर्णय करने की क्षमता हेतु सर्वसम्मति की प्रक्रिया अपनाने की प्रशंसा की और लोक-आधारित तटस्थ नैतिक शक्ति की भूमिका पर जोर दिया। यह नि:स्वार्थ सेवा से प्राप्त होती है। इसी से उनकी अवधारणा की एकात्मक तथा सुधारात्मक लोकतान्त्रिक शक्ति का अभ्युदय होता है।'

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पहले अपवाद थे जिन्होंने संविधान के प्रारूप में गांधी के पंचायती राज के विलोप के कारण कुछ खटपट की थी। डॉ. प्रसाद ने 10 मई, 1948 को संवैधानिक सलाहकार बी.एन.राव को पत्र लिखा कि वे संविधान के प्रारूप में कुछ संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस पत्र के साथ राजेन्द्र प्रसाद ने एक लेख की कतरन भी भेजी थी। यह लेख 'स्वतंत्र' नामक पत्र में 24 अप्रैल, 1948 को के.एस. वेंकटरमणी के नाम से प्रकाशित हुआ था। डॉ. प्रसाद ने दो टूक लहजे में लिखा। 'गांव इस देश में हमारी बुनियादी इकाई रहे हैं और रहेंगे'। राजेन्द्र प्रसाद गांधी की तरह बालिग मताधिकार के आधार पर केवल ग्राम पंचायतों का चुनाव कराये जाने के पक्षधर थे। उसके बाद पंचायतें प्रदेश और केन्द्र की विधायिकाओं का निर्वाचन कर सकती थीं। जितनी दृढ़ता से राजेन्द्र प्रसाद ने ग्राम पंचायतों की संसदीय गरिमा की वकालत की थी, लगभग उतनी ही दृढ़ता से संसदीय सलाहकार ने उनके प्रस्ताव को खारिज कर दिया। उनके अनुसार निचले स्तर की स्वायत्त संस्थाओं को विधायन जैसे महत्वपूर्ण अधिकारों का सीधा निर्वाचक बनाना सम्भव और उचित नहीं होगा।

संविधान सभा में संविधान के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों वाला प्रस्ताव 13 दिसम्बर, 1946 को लाया गया। सभा में मुस्लिम लीग तथा भारतीय नरेशों के प्रतिनिधियों की कोई हिस्सेदारी नहीं थी। सभा ने लगभग एक माह से अधिक की निरर्थक प्रतीक्षा के बाद उनके शामिल हुए बिना बैठक प्रारम्भ की। अगस्त 1947 में संविधान सभा में प्रस्तावित संविधान का प्रारूप बी.एन. राव के सलाहकार नेतृत्व की टीम ने प्रस्तुत किया। सदस्यों की खुसफुसाहट के बीच 29 अगस्त, 1947 को संसदीय कार्यमंत्री ने एक समिति गठित करने का प्रस्ताव रखा, जो संविधान के प्रस्तावित मूलपाठ के सूक्ष्म परीक्षण के बाद आवश्यकतानुसार संशोधन सुझाए। इस समिति में अलादि कृष्णास्वामी अय्यर, एन. गोपाल स्वामी आयंगर, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, के. एम. मुंशी, सैयद मोहम्मद सादुल्ला, बी.एन. मित्तल और डी.पी. खेतान मनोनीत किए गए। उपसमिति ने अंततः 4 नवम्बर, 1948 को संशोधित प्रारूप बहस के लिए मुहैया कराया। इसी बीच उप समिति द्वारा संविधान का प्रारूप सदस्यों के बीच विचारार्थ वितरित किया गया। संशोधित प्रारूप में पंचायती राज व्यवस्था के संबंध में कोई उल्लेख नहीं हुआ। पूरे विषय का ही विलोप संविधान के मूलपाठ में शुरू से रहा। गांधी के जीवनकाल में चली संविधान सभा की बहस 13 दिसम्बर, 1946 से 22 जनवरी, 1948 में संविधान के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों पर बहस के दौरान कई सदस्यों ने पंचायती राज के उल्लेख की उपेक्षा का पुरजोर सवाल उठाया था।

सबसे पहले मीनू मसानी ने 17 दिसम्बर, 1946 को सदस्यों की तालियों के बीच कहा कि राष्ट्रपिता की इच्छा के अनुरूप संविधान में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि राज्य व्यक्तियों का स्वामी होगा या व्यक्ति राज्य के स्वामी बनेंगे। मसानी ने गांधी के लुई फिशर के साथ हुए वार्तालाप का हवाला देते हुए सदन को सूचित किया कि गांधी के अनुसार राज्य की शक्ति नई दिल्ली, कलकत्ता अथवा बम्बई के बदले भारत के सात लाख गांवों में दिखाई पड़नी चाहिए। बापू भारत में नाजी पद्धति से क्रान्ति नहीं चाहते थे। उनके अनुसार प्रस्तावित भारतीय राज्य व्यवस्था समग्र क्रान्ति के देश रूस से कहीं बेहतर थी। मीनू मसानी ने इस खतरे की ओर आगाह किया कि जहां राज्य व्यक्तियों के अधीन होता है वहां वह एक उपकरण से अधिक कुछ नहीं होता। ऐसा राज्य व्यक्तियों की उतनी ही स्वतंत्रता ले सकता है, जितनी वे खुद

अपनी इच्छा से दे दें। परन्तु जहाँ राज्य व्यक्तियों का स्वामी होता है, वहां व्यक्ति एक बड़ी मशीन के रोबोट की तरह होकर रह जाता है और इसे एक शक्तिशाली पार्टी के अधिनायक नेता द्वारा नियंत्रित किया जाता है। मीनू मसानी ने कहा '...हमारे राष्ट्रीय जीवन के अंतर्गत अनेक प्रवृत्तियाँ आती हैं। लेकिन लगभग सर्वसम्मति से हम सब व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा लोकतान्त्रिक राज्य के प्रति प्रतिबद्ध हैं। हम लोगों के बीच विभिन्न विचारधारा के लोग हैं। वे सभी एक ही आवाज पर सहमत हो सकते हैं, यह इच्छा लेकर कि आम आदमी को सत्ता किस प्रकार पहुंचाई जाए। राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता किस प्रकार बांटी जाए कि कोई भी व्यक्ति या समूह शेष समस्त लोगों का शोषण न कर सके। मैं पहले एक ऐसे व्यक्ति की गवाही प्रस्तुत करूंगा, जो यहां हमारे बीच उपस्थित नहीं है, वह जिसे 'प्रवर्तक' कहा जाता है, जो हमारा राष्ट्रपिता है। इसी की प्रतिध्वनि के रूप में, अब एक या दो वाक्यों का उद्धरण, भारतीय समाजवादी दल के नेता जयप्रकाश नारायण द्वारा समाजवाद के नवीनतम विवरण में से दूँगा। मुझे खेद है कि हमारे इस कार्य में वे हमारे साथ नहीं आए हैं, किन्तु उन्होंने जो कहा है वह गांधी जी के विचार की प्रतिध्वनि ही प्रतीत होता है।'

प्रारूप समिति की भूल : सात सदस्यीय उप समिति ने एक ऐतिहासिक भूल की। 19 अगस्त, 1947 से जनवरी, 1948 के बीच समिति से अपेक्षाएं भारत के इतिहास को रही हैं। उसमें इस समिति ने कर्तव्यहीनता और चूक की। संविधान सभा के सदस्य टी.टी. कृष्णमाचारी ने बाद में मार्मिक शब्दों में यह कहा कि इस समिति के एक सदस्य ने त्याग पत्र दिया, जिसकी जगह अन्य सदस्य को मनोनीत किया गया। एक सदस्य की मृत्यु हो गई और उसकी जगह मनोनयन नहीं हुआ। एक अथवा दो सदस्य अधिकतर दिल्ली के बाहर रहे और सम्भवतः स्वास्थ्य या अन्य कारणों से बैठक में शामिल नहीं हुए। एक सदस्य इसी अवधि में अमेरिका चले गये। इस तरह इस पूरी समिति का भार मूलतः अम्बेडकर पर आ गया, जिन्होंने संशोधित पाठ संविधान सभा को बहस के लिए उपलब्ध कराया। हरि विष्णु कामथ ने बाद में मर्माहत होकर कहा कि यदि इसमें कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे सदस्य सक्रिय होकर कार्य करते तो संविधान का स्वरूप ही कुछ और होता। संविधान सभा में 4 से 9 नवम्बर, 1948 के बीच पंचायत व्यवस्था की उपेक्षा को लेकर एक जीवन्त

बहस हुई। अनेक सदस्यों ने महात्मा गांधी का उद्धरण देते हुए कठोर स्वरों में यह तर्क रखा कि जब तक संविधान में पंचायत व्यवस्था पर आधारित स्वराज्य की परिकल्पना की प्रतिबद्धता परिभाषित नहीं की जाती, तब तक संविधान की रचना का ही कोई अर्थ नहीं है।

सदस्यों की उत्तेजना का एक महत्वपूर्ण कारण डॉ. अम्बेडकर के भाषण का अंश था। उन्होंने भारतीय गांवों की राजनीतिक स्थिति का मर्माहत कर देने वाले शब्दों में खाका खींचा था। अम्बेडकर ने उन सदस्यों को आड़े हाथों लिया था जिन्होंने भावावेश में संसदीय बहस में यहां तक कह दिया था कि पंचायती राज की व्यवस्था संविधान सभा में नहीं हो सकती तो वे केन्द्र तथा राज्य सरकारों का गठन भी नहीं चाहते। अम्बेडकर ने तल्खी में यह कहा कि बुद्धिजीवियों का ग्रामीण प्रेम असीम और कारुणिक दिखाई पड़ता है। उन्होंने व्यंग्य किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि इन कथित बुद्धिजीवियों का ग्रामीण प्रेम सर चार्ल्स मेटकाफ नामक ब्रिटिश बुद्धिजीवी का भारत के गांवों का वर्णन था; जिसे उसने इंग्लैण्ड में हाउस ऑफ कामन्स की विषय समिति के समक्ष 1632 में रखा था। अम्बेडकर ने कहा कि भारतीय गांवों ने भले ही विदेशी आक्रमणकारियों के हमले झेले होंगे, परन्तु उन्होंने लगभग शुतुरमुर्ग की प्रवृत्ति का परिचय दिया और किसी तरह जीवित रहे भर हैं। अम्बेडकर ने बेलाग होकर यह कहा कि यह कथित ग्रामीण गणतंत्र भारत की बरबादी रहे हैं। उन्होंने सदस्यों से मुखातिब होकर पूछा कि गांव क्या हैं, सिवाय इसके कि स्थानीय झगड़ों के नाबदान और अज्ञान, संकीर्णता तथा संप्रदायवाद की मांद हैं। अम्बेडकर ने प्रतिरोधी उत्साह के साथ यहां तक कह दिया कि उन्हें इस बात की प्रसन्नता है कि संविधान के प्रारूप में गांवों की बुनियादी इकाइयों के रूप में उपेक्षा की गई है और उसके बदले व्यक्तियों को इकाई बनाया गया है।

संविधान सभा में विवाद : डॉ. अम्बेडकर के कथन की संविधान सभा में कड़ी आलोचना हुई। एक के बाद एक सदस्य ने उठकर उनके कथन का प्रतिकार किया। दामोदर स्वरूप सेठ, प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना, हरि विष्णु कामथ, लोकनाथ मिश्रा, काजी सैयद करीमुद्दीन, डॉ. पंजाब राव देशमुख, अरुण चन्द्र गुहा, टी. प्रकाशम, के. सन्थानम, आर. के. सिधवा, पं. ठाकुरदास भार्गव, चौधरी रणवीर सिंह, मुनिस्वामी पिल्लई, श्रीमती दक्षयानी वेलायुधन, गोकुल भाई दौलतराम भट्ट, अलादि कृष्णास्वामी अय्यर, प्रोफेसर

एन.जी. रंगा, एम. अनंतशयनम आयंगार, महावीर त्यागी, डॉ. कृष्णास्वामी भारती, किशोरीमोहन त्रिपाठी, विशम्भरदयाल त्रिपाठी, मोटूरी सत्यनारायण, सुरेशचन्द्र मजूमदार, एम. माधवदास आदि ने डॉ. अम्बेडकर के कथन का बड़ा कड़ा प्रतिवाद किया। आर. के सिधवा ने तो संविधान के उस ड्राफ्ट को ही खारिज कर दिया जो पंचायत संस्थाओं की बुनियाद पर नहीं लिखा गया था। सिधवा ने कहा, 'यह संविधान तो इस देश में लोकतन्त्र की स्थापना हेतु बनाया गया है। डॉ. अम्बेडकर ने तो लोकतन्त्र के मूल विचार को ही नकार दिया है क्योंकि उन्होंने स्थानीय प्रशासन एवं ग्रामों की उपेक्षा की है। स्थानीय प्रशासन तो इस देश के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की धुरी है। यदि इस संविधान में स्थानीय शासन के अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है, मुझे आपको यह कहने दीजिए, कि यह संविधान विचार करने योग्य ही नहीं है।'

इन विशिष्ट वक्ताओं ने महात्मा गांधी के वैचारिक सन्दर्भों के अनेक उद्धरण देकर भारतीय स्वराज्य की बुनियादी इकाई के रूप में गांवों को रेखांकित करने की लगातार कोशिश की। दामोदर स्वरूप सेठ ने अपने भावुक भाषण में कहा : 'मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस बड़े कान्स्टीट्यूशन के स्ट्रक्चर में आज जो हमारे सामने हैं, उसमें कहीं भी गांव का कोई जिक्र है और कहीं उसकी कोई तस्वीर है ? नहीं, कहीं नहीं। किसी आज़ाद मुल्क का कान्स्टीट्यूशन का आधार होना चाहिए–लोकल सेल्फ गवर्नमेंट।' यह सारा कान्स्टीट्यूशन बजाय अन्दर और नीचे से खड़ा करने के ऊपर से और बाहर से खड़ा किया जा रहा है और ऐसा कोई स्ट्रक्चर जो बाहर से और ऊपर से खड़ा किया जाय और जिसमें यूनिटों का कोई आधार और उनकी आवाज़ न हो, जिसमें हिन्दुस्तान के हजारों और लाखों गांव का कोई भी जिक्र नहीं है। आप इस कान्स्टीट्यूशन को इस मुल्क को दे सकते हैं; मगर इसको ज्यादा दिनों तक आप अच्छी तरह से चला सकेंगे, इसमें मुझे शक है। जरूरत थी, इस कान्स्टीट्यूशन में इस बात की कि फन्डामैन्टल राइट्स में यह बात शामिल की जाती कि हर आदमी को काम मिलने का, काम पाने का अधिकार होगा। हर आदमी को खाने और पहनने की फिकरों से छुट्टी मिल जायगी। हर आदमी के लिए तालीम हासिल करना, उसका हक होगा.....। अगर इस कान्स्टीट्यूशन के बनाने में देश के हजारों गांवों का हिस्सा होता, तो इस कान्स्टीट्यूशन की शक्ल आज की शक्ल से बिल्कुल मुख्तलिफ हुई होती।'

कामथ ने उन भारतीय बुद्धिजीवियों की खिल्ली उड़ाई जो आज़ाद भारत की रचनात्मक बुनियाद में विदेशों से आयातित मूल्यों के प्रति अपनी नतमस्तकता का बौद्धिक आडम्बर में डूबकर प्रचार करते रहे। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित के उस कथन का भी प्रतिवाद किया जिसके अनुसार श्रीमती पण्डित ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन में गौरवान्वित होकर यह कहा था कि भारत स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों को फ्रांस से ग्रहण कर कृतज्ञ है। उन्होंने नये भारत के निर्माण की पृष्ठभूमि में सुविकसित भारतीय मूल्यों की पुष्टि का अहसास तक नहीं कराया। कामथ ने कहा कि अम्बेडकर आभिजात्य शहरी भद्रपुरुषों की नकचढ़ी वृत्ति के प्रतीक हैं। यदि इस तरह के दृष्टिकोण से भारत के संविधान की रचना की गई तो इस देश का भगवान ही मालिक है। उन्होंने कहा कि गांधी ने पंचायत राज के आखिरी मंत्र के द्वारा इस देश की नई तवारीख लिखने का आह्वान हमसे किया है। कामथ ने आरोप लगाया कि संविधान लिखने की उपसमिति के सभी सदस्यों के कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के अपवाद को छोड़कर भारतीय आज़ादी के सिपाही नहीं रहने के कारण उनकी आत्मा में देश के लिए वह गरमी ही नहीं रही है, जिस ऊष्मा ने गांधी का रूप धारण कर पूरे देश को अभिभूत किया है। कामथ ने भी अपने भाषण में अम्बेडकर से असहमति का इज़हार किया। उन्होंने कहा : ''मेरे विचार से उन्होंने यह कहने में गौरव समझा कि इस विधान में बहुत कुछ भारत शासन अधिनियम से लिया गया है और यथेष्ट मात्रा में ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया के विधानों और कदाचित् कनाडा के विधान में से भी लिया गया है। मैं उनसे यह आशा करता था कि वे हमें यह बताते कि हमारे राजनैतिक अतीत से भारतीय जनता की अपूर्व राजनैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिभा से क्या लिया गया है। इस बारे में सम्पूर्ण भाषण में एक भी शब्द नहीं था। .....एक बात में मैं डॉक्टर अम्बेडकर का विरोध करता हूँ। उन्होंने गांवों का उल्लेख ''स्थानीयता की गंदी नालियां तथा अज्ञानता, विचार संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की कन्दराओं'' के रूप में किया है और ग्रामीण जनता के लिए हमारे करुण विश्वास का श्रेय किसी मेटकाफ नाम के व्यक्ति को दिया है। मैं यह कहूँगा कि यह श्रेय मेटकाफ को नहीं है, वरन् उससे कहीं ज्यादा उस महान व्यक्ति को है जिसने अभी हमें हाल ही में स्वतंत्र कराया है। गांवों के लिये जो प्रेम हमारे हृदय में लहरा रहा है, वह तो हमारे पथप्रदर्शक तथा राष्ट्रपिता के

कारण पैदा हुआ था। उन्हीं के कारण ग्राम जनतन्त्र में तथा अपनी देहाती जनता में हमारा विश्वास बढ़ा और हमने अपने सम्पूर्ण हृदय से उसका पोषण किया। यह महात्मा गांधी के कारण है। यह आपके कारण है और यह सरदार पटेल, पंडित नेहरू और नेताजी बोस के कारण है कि हम अपने देहाती भाइयों को प्यार करने लगे हैं।''

कांग्रेस का दृष्टिकोण : संविधान सभा के दो सदस्य अरुणचन्द्र गुहा और एन.जी. रंगा ने संविधान की रचना को कांग्रेस की विचार-परम्परा के जीवित उद्देश्यों से बिंधकर उसके अगले रचनाकर्म के रूप में व्याख्यायित किया। प्रोफेसर रंगा के भाषण में पंचायतों को लेकर तल्खी और दुःख का घनत्व अभिव्यक्त किया गया था। उन्होंने कहा था : ''मैं बहुत अप्रसन्न हूँ कि डॉ. अम्बेडकर ने ग्राम पंचायतों के बारे में वह कहना जरूरी समझा, जो न कहा जाना था। हमारे देश की सारी लोकतान्त्रिक परम्पराओं को तो वे जैसे भूल ही गए। यदि उन्होंने दक्षिण भारत में ग्राम पंचायतों की एक सहस्त्राब्दी से भी अधिक अवधि की उपलब्धियों के बारे में जरा भी जाना होता, तो उन्होंने निश्चित ही वे बातें नहीं कही होतीं। यदि उन्होंने भारतीय इतिहास को भी उसी ध्यान से पढ़ा होता, जैसा कि उन्होंने अन्य देशों के इतिहासों को पढ़ा है तो उन्हें निश्चित रूप से वे टिप्पणियां करने का दुस्साहस न होता।.....निस्सन्देह यह सत्य है कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के अनेक प्रावधानों का विश्लेषण दिया है तथा दुर्भाग्यवश, इसके कुछ पहलुओं पर अधिक जोर भी दिया है तथा ग्राम-गणतन्त्र, ग्राम-स्वायत्तता एवं लोकतन्त्र पर अपने खुद के विचार भी प्रस्तुत किए हैं। वे हमें तथा इस सभा को इन मुद्दों पर विवादास्पद स्थिति से बचा सकते थे। यदि मुझ पर छोड़ें, तो मैं तो कहना चाहूँगा कि यह संविधान स्वायत्तशासी ग्राम गणतन्त्रों पर ही आधारित होना चाहिए।.....बाद में एक ऐसा समय आएगा, जब इन गणतन्त्रों या स्वायत्तशासी पंचायतों के आधार पर भविष्य में एक संविधान निर्मित किया जा सके। .....डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वे खुश थे, कि ''प्रारूप समिति ने इसमें गांव को स्थान नहीं दिया है।'' उन्होंने इसे ''स्थानीयता का नाबदान तथा साम्प्रदायिकता का ठौर'' माना है। गुलामी के इन्हीं नाबदानों ने स्वतन्त्रता संग्राम में सभी प्रकार का अत्याचार सहा था। डॉ. अम्बेडकर ने ग्रामों के विरुद्ध जो टिप्पणियां की हैं, उनके विरोध में जब तक मैं अपनी आवाज़ नहीं उठा लेता, तब तक मैं मेरे ग्राम के लोगों का

सामना नहीं कर सकता। डॉ. अम्बेडकर को पता ही नहीं है कि स्वतन्त्रता-संग्राम में ग्रामीणों ने कितना त्याग किया है।.....मुझे खेद है कि डॉ. अम्बेडकर ग्रामों के संबंध में संदर्भ देते हुए अपने मार्ग से भटक गए हैं, उनके संदर्भ एवं निरीक्षण इस सदन की इच्छाओं या भावना के अनुकूल नहीं हैं।...''

अरुणचन्द्र गुहा ने कहा कि संविधान के ढांचे में उन्हें कांग्रेस की आत्मा कहीं दिखाई नहीं पड़ती, जबकि संविधान कांग्रेस के सिद्धान्तों की अगली पायदान के रूप में इतिहास में व्यक्त होगा। उन्होंने पुरजोर वकालत की कि संविधान को कांग्रेसी आदर्शों और सिद्धान्तों के साथ सम्पृक्त करके ही लिखा जाना चाहिए था। परन्तु संविधान के मूल रचनाकार बी.एन. राव तथा संशोधन प्रस्तोता डॉ. अम्बेडकर की कांग्रेस समर्थक दृष्टि नहीं होने से वे इस पूरे मामले में राष्ट्रीय आन्दोलन की केन्द्रीय चिन्ता से अनभिज्ञ व्यक्तियों की तरह एक अनगढ़ संविधान लेकर आये हैं। गांधी ने 1920 में कांग्रेस के संविधान में स्वतः भारी उलटफेर की थी। 1920 की कांग्रेस का संविधान लगभग समकोण पर परिवर्तित कर दिया गया था। उस संविधान में 'हिन्द स्वराज्य' की महात्मा गांधी की परिकल्पना के अनेक तत्व उसके रचनाकार की बानगी की बारीकियों के साथ गुंथे दिखाई पड़ते हैं। दुर्भाग्यवश अम्बेडकर को इस साहसिक परन्तु रूमानी अभिभूति के साहचर्य का अवसर नहीं मिला था। कांग्रेस विचारधारा के समर्थकों ने बार बार यही शिकायत की कि उनको भारत के भावी संविधान की परिकल्पना एक पिरामिड के रूप में कराई गई है जिसकी बुनियाद में भारत के गांवों की मजबूत आधारशिला होगी और उसके ऊपर ही विकेन्द्रीकृत केन्द्र का राज्य अपनी नाभिकीय मुद्रा में खड़ा होगा। गुहा ने कहा कि वे इस बात से भी समझौता कर सकते हैं कि भारत के संविधान की आत्मा इस देश का प्रत्येक व्यक्ति उसकी इकाई के रूप में हो परन्तु प्रशासनिक ढांचे की बुनियाद प्रत्येक गांव के रूप में ही स्थापित होनी चाहिए। अरुणचन्द्र गुहा ने विरोध का स्वर जारी रखा और कहा : ''डॉ. अम्बेडकर ने ग्राम इकाईयों के बारे में कुछ टिप्पणियां की हैं। हम कांग्रेस में वर्षों से रहे हैं। प्रशासकीय यन्त्र के भविष्य में आधार के रूप में ग्राम पंचायतों को रखने की शिक्षा हमें मिली है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ग्राम ही देश की बरबादी के सबब रहे हैं। गांव ही अज्ञान के घर रहे हैं। यदि ऐसा मामला है, तो फिर यह हमारे ही कारण है, जो कि शहरों में रह रहे हैं, जो कि विदेशी शासन के अधीन चमक रहे हैं। हमारे

गांवों को भूखा मार दिया गया है। विदेशी सरकारों द्वारा जानबूझकर हमारे गांवों का गला घोटा गया है तथा शहरी लोगों ने इस गन्दे काम में उनके औजार बनकर मनमर्जी की है। ग्रामों का पुनरुज्जीवन मेरे विचार में, भविष्य के स्वतन्त्र भारत का पहला काम होना चाहिए।

टी. प्रकाशम्, के. हनुमंतैया एवं सारंगधर दास भी कांग्रेस की भूमिका को संविधान निर्माण के सन्दर्भ में नकारने वालों के प्रबल विरोधी के रूप में उभर कर आये। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर पर आरोप लगाया कि वे उन लोगों की भूमिका को समझ नहीं पाये हैं जिन्होंने पिछले लगभग तीस वर्षों में भारत की आज़ादी की लड़ाई से खुद को असम्पृक्त रखा है। आज़ादी के संघर्ष का खाका खींचते हुए प्रकाशम ने चुनौती उपस्थित की कि स्वाधीनता संघर्ष की केन्द्रीय ध्वनि की उपेक्षा के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर ने यह क्यों समझ लिया कि केवल ब्रिटिश विद्धान मेटकाफ के उद्धरणों की वजह से ही स्वाधीनता संग्राम के सैनिक पंचायत राज की स्थापना के पक्षधर हैं। उन्होंने कहा कि मेटकाफ अन्यथा भारतीय गांवों की संस्कारशीलता, संघर्षधर्मिता, सहिष्णुता और नैसर्गिकता का पक्षधर रहा है। उसने परेशानहाल अन्तर्द्वन्दों में डूबती उतरती ग्रामीण सभ्यता का परिचय भी कराया है। ग्रामीण पृष्ठभूमि के समसामयिक संलिष्ट सामाजिक कारणों को समझने की जरूरत है। उन्होंने कहा 'डॉ. अम्बेडकर के प्रति पूरी श्रद्धा के साथ, मुझे यह अवश्य कहना चाहिए कि वे अपने को उस स्थिति में रखने में समर्थ नहीं हो पाए, जिसमें कि लम्बे तीस वर्षों तक स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी इस देश की आज़ादी के लिए लड़ते रहे। एक ही झटके में उन्होंने ग्राम पंचायत व्यवस्था की धज्जियां बिखेर दीं। यह कोई ऐसा मामला नहीं है कि जिसे डॉ. अम्बेडकर को इतने हल्के फुल्के ढंग से लेना चाहिए था। अनेक विदेशी शासक जो इस देश में आये थे, उनके अत्याचारों से ग्राम पंचायतें मृत प्रायः हो चुकी थी। फिर भी यह सब होते हुए भी, इतने दबाव के बावजूद वे जीवित रहीं। यही तो मेटकॉफ संसार को तथा हमें समझाना चाहता था, जो कि इनकी उपेक्षा करते आ रहे थे। इसलिए ग्राम पंचायत को उस आधार पर नहीं कोसना चाहिए। आज मैं एक क्षण के लिए भी इस बात की वकालत नहीं करता कि ग्राम पंचायतें वैसी हों, जैसी मेटकॉफ ने उन स्थितियों में वर्णित की हैं। ग्राम पंचायत अधुनातन होनी चाहिए।'

संविधान की रचना का अरुणोदय की तरह धूमिल ख्याल शायद गांधी

के जेहन में उसी वक्त आ गया था, जब उन्होंने तिलक के अवसान के बाद कांग्रेस के शीर्ष पुरुष के रूप में कांग्रेस का एक वांछित संविधान के साथ परिष्कार किया। गांधी ने कांग्रेस के संविधान में इस बात का प्रावधान किया था कि लगभग 80 प्रतिशत सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति में केवल ग्रामीण चुनाव केन्द्रों से निर्वाचित होकर जाएं। उन्होंने अलग प्रस्ताव के द्वारा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना को भी कांग्रेस की क्रेन्दीय घोषणा में शामिल किया था। इसी कारण शायद गांधी 1922 में अंग्रेज सरकार द्वारा छह वर्ष के लिए गिरफ्तार भी किए गए थे क्योंकि ब्रिटिश हुकूमत को इस बात का भय था कि गांधी धीरे-धीरे; बल्कि शायद तेजी से अपने पैर भारत के सात लाख गांवों में पसार कर हुकूमत के लिए मुसीबत खड़ी कर सकते हैं। बापू हालांकि दो वर्ष बाद रिहा कर दिये गये परन्तु उन्होंने उपरोक्त ग्रामीण विचार समुच्चय को अपने मस्तिष्क से कभी रिहा नहीं किया। उड़ीसा के प्रतिनिधि माधवराव ने गांधी के पुराने कथन को उद्धरित करते हुए याद दिलाया कि कांग्रेस के संविधान के संशोधन के पहले गांधी ने खुलकर कहा था कि यदि कांग्रेस में अधिकांश सदस्य गांवों से चुनकर आते हैं तब ही वे हमारे गांवों के लिए कम से कम सफाई के आदर्श मॉडल अपने अनुभव के आधार पर बना सकेंगे।

डॉ. अम्बेडकर की तीखी टिप्पणी भले ही विवादग्रस्त मानी गई, वह विचारोत्तेजक भी रही है। यदि अम्बेडकर ने मेटकाफ की उक्ति का भारतीय गांवों के प्रति कारुणिकता प्रदर्शित करने के लिए उल्लेख नहीं किया होता तो शायद संविधान सभा में पंचायत राज को लेकर उतनी उत्तेजना पैदा नहीं होती। अपनी तल्खी, कटाक्ष, व्यंग्य और निष्कपट साफगोई के रहते अम्बेडकर की टिप्पणी तथ्यात्मक दृष्टि से पूरी की पूरी गलत नहीं थी। कामथ ने अंग्रेजी बुद्धिजीवी मेटकाफ के कथन को उद्धरित करने के लिए अम्बेडकर की न केवल खिंचाई की बल्कि उन्हें सलाह दी कि वे डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल लिखित 'इण्डियन पॉलिटी' और श्री अरविन्द लिखित 'स्पिरिट एण्ड फॉर्म आफ इण्डियन पॉलिटी' अवश्य पढ़े जिससे उनकी दूषित इतिहास दृष्टि शुद्ध हो। महावीर त्यागी अपनी व्यंग्य वृति, साफगोई और अनोखेपन के लिए मशहूर रहे हैं। उन्होंने चेतावनी दी कि जिन भारतीय गांवों को अम्बेडकर ने आपसी झगड़ों के नाबदान की संज्ञा दी है, उन्होंने ही स्वाधीनता संघर्ष में सबसे अधिक क्षति

उठाई है। त्यागी ने कहा कि गुलामी के ये कथित भग्नावशेष आग में झोंके गये हैं। उन्होंने यह चेतावनी भी दी थी कि यदि गांवों के लोगों को आज़ादी में उनका सम्मानजनक हिस्सा नहीं मिला तो वे आगामी इतिहास में क्रान्ति भी करेंगे। महावीर त्यागी ने उच्छ्वास लेकर यह भी कहा कि भारत की धरती बांझ नहीं है। वह किसी ऐसे नेता को जन्म देगी जो इस संविधान में भारतीय जीवन की सांस फूंकेगा। बलवंत सिंह मेहता ने यह चेतावनी दी कि पूरी दुनिया में तनाव और विध्वंस का जीवन व्याप्त है। ऐसे समय पूरा विश्व भारत की ओर आशा भरी निगाह से देख रहा है कि तीसरी दुनिया को कौन-सा रास्ता दिखाया जाए। शंकर राव देव ने चेतावनी दी कि संविधान निर्माताओं को भावुक होने के बदले विचारशील होना चाहिए तथा उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी होना चाहिए। उन्होंने कहा कि राजनीति की कड़ियल दुनिया में स्वप्नलोक का कोई स्थान नहीं होता। याद रखना चाहिए कि जो कुछ हम करेंगे, भविष्य उसका हिसाब हमसे मांगेगा। इतिहास के कर्मगृह में कोई शयनकक्ष नहीं होता। उन्होंने कहा कि इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई वृत्ति, व्यवसाय, विधि या व्यवस्था जल्दबाजी में इस तरह निर्मित की गई हो कि भविष्य उसे सुधार लेगा। शंकर राव देव ने भी सर चार्ल्स मेटकॉफ का उद्धरण देकर इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर याद दिलाया कि भारत के जीवन और संस्कृति की निरन्तरता तथा सुगंधि भारत की ग्रामीण सभ्यता की वजह से ही सुरक्षित रही है, जबकि सत्ताभिमुख लोग पराजित होते रहे है।

पंचायती राज की उपेक्षा को लेकर सदस्यों के मन में सबसे अधिक क्षोभ संविधान की मूल संरचना में भारतीय अस्मिता के अभाव को लेकर रहा है। लोकनाथ मिश्रा ने उत्तेजना में कहा कि उन्हें डॉ. अम्बेडकर के बयान का एक्सरे ही करना पड़ेगा। उनकी दृष्टि में अम्बेडकर अत्यन्त प्रबुद्ध व्यक्ति हैं तथा भारत माँ के सपूत हैं। यह उनका दुर्भाग्य है कि उनका भारत के बारे में ज्ञान अत्यन्त न्यून है। डॉ. पंजाबराव देशमुख ने भारत की प्राचीन सभ्यता को उसके भविष्य की धरोहर बताते हुए इस विचारधारा से असहमति व्यक्त की कि उसका उपयोग भारत के संविधान बनाने में नहीं किया जा सकता। के. संथानम ने संविधान सभा को याद दिलाया कि कुछ अर्थों में गांवों के जीवन में गिरावट भले आई हो परन्तु इसके बावजूद क्रान्तियों और भावना के थपेड़े सहकर हमारे गांवों ने भारतीय जीवन की अस्मिता की रक्षा की है, अन्यथा देश गहरे

अंधकार में डूब जाता। पं. ठाकुरदास भार्गव ने संविधान को भारतीय आत्मा से वंचित दस्तावेज करार देते हुए कहा कि संविधान रूपी कैमरे से पूरे भारत का वास्तविक चित्र खींचा नहीं जा सकता। गोकुल भाई दौलतराम भट्ट ने अम्बेडकर पर कटाक्ष करते हुए यहाँ तक कहा कि इस महान पंडित ने संस्कृत और राजनीति के अथाह ज्ञान के बावजूद भारतीय प्राचीन पंचायत व्यवस्था का संविधान के संदर्भ में विरोध किया है। अलादि कृष्णास्वामी अय्यर ने अम्बेडकर के विचार से असहमति व्यक्त करते हुए संसद को याद दिलाया कि भारतीय धरती पर विदेशी लोकतंत्र का बिरवा गमले में नहीं बोया जा सकता क्योंकि प्रजातंत्र का सिद्धान्त प्राचीन भारतीय संस्था की परम्परा के रूप में इतिहास के पहले परिच्छेद से मनुष्य के ज्ञान के लिए सदैव विद्यमान रहा है। मोटूरी सत्यनारायण ने इतिहास के बदले भूगोल के उपादान का उपयोग करते हुए यह फतवा कसा कि संविधान राष्ट्रीय, स्वराज्यीय अथवा पंचायती व्यवस्था के बदले अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से बनाया जा रहा है। सेठ गोविन्ददास के अनुसार हमारे महान भारतीय उपनिषद तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लेकर हेनरी मेन द्वारा लिखित 'एनशिएंट लॉ, बेडन पावेल' द्वारा लिखित 'इंडियन विलेज कम्युनिटी', और विपिनचन्द्र पाल रचित 'फण्डामेंटल यूनिटी ऑफ इण्डिया', जैसी कृतियों में वह सब कुछ मिलता है जिसके आधार पर संविधान की रचना की जानी चाहिए थी। वी.पी. झुनझुनवाला ने पंचायतों की भूमिका के सम्बन्ध में अम्बेडकर की टिप्पणी को नकारते हुए कहा कि उन्हें चाहिए कि वे असहयोग आन्दोलन का भारतीय इतिहास पढ़ें, जिससे हमारे ग्रामीणों तथा पंचायतों की भूमिका इसी परिप्रेक्ष्य में समझी जा सके। कमलापति त्रिपाठी ने भारतीय इतिहास तथा संस्कृति पर दृष्टिपात नहीं करने तथा भारतीय दृष्टिकोण की उपेक्षा करने को लेकर कहा कि इतिहास इस बात का गवाह है कि भारत ने महान और गौरवशाली परम्परा की थाती राजनीति के क्षेत्र में सुरक्षित रखी है परन्तु हमने ऐसे महान अतीत तक की उपेक्षा की है। ब्रजेश्वर प्रसाद ने बाकुनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन के उद्धरण देते हुए संविधान में विकेन्द्रीकरण की छटा नहीं दिखाने पर गहरा असन्तोष व्यक्त किया।

एक भविष्य वक्तव्य : पंचायत राज की परिकल्पना को लेकर एक ऐसा वक्तव्य भी संविधान सभा में दिया गया था जिसकी प्रासंगिकता आज कहीं अधिक गहरी दिखाई देती है। इस वक्तव्य में एक ओर तो संविधान निर्माताओं

को चेतावनी दी गई थी कि भारतीय आदर्शवादी और भावुक लोग हैं जिन्हें अपने अतीत और व्यतीत से गहरा प्रेम है। वहीं दूसरी ओर ग्राम पंचायत प्रणाली के आग्रही संस्थापकों को भी उन्होंने लगभग झकझोरते हुए कहा कि यदि ग्रामीणों को राज्य व्यवस्था के लिए पूरी तौर पर प्रशिक्षित नहीं किया गया तो उसके दुष्परिणाम भी उन्हें भोगना होंगे। पश्चिम बंगाल के डॉ. मनमोहन दास ने प्रारूप समिति और सदस्यों के बीच हुई सैद्धान्तिक तकरार में लगभग मध्यस्थ की शक्ल में कहा कि यदि संविधान के मूल पाठ में ही ग्रामीण पंचायत का उल्लेख तक नहीं हुआ है तो शायद संविधान निर्माताओं का मकसद रहा होगा कि विधायन का यह दायित्व राज्यों पर छोड़ा जाए क्योंकि अनेक राज्यों ने इस सम्बन्ध में विधायन की प्रक्रिया शुरू भी की है। दास ने बेलाग होकर कहा कि जब तक हमारे ग्रामीण बन्धु पर्याप्त शिक्षित और राजनीतिक दृष्टि से सजग तथा नागरिक अधिकारों के प्रति उत्तरदायी नहीं बन जाते, तब तक केवल उन्हें अधिकार और सुविधाएँ देने से वे उत्तरदायी आचरण का निर्वहन नहीं कर पाएंगे। उन्होंने एक खतरे की ओर भी संकेत किया था कि यदि ग्रामीणों को पूरी तौर पर शिक्षित करने के पहले ही पंचायत की प्रशासनिक व्यवस्था लागू कर दी गई तो सत्ता के दलालों की बन आएगी। जमींदार, तालुकदार, महाजन और सभी तरह से सत्ता के दलाल ग्रामीण प्रतिनिधियों का मुखौटा लेकर इस पूरी प्रणाली का शोषण करेंगे।

गांधी प्रशासन को नीचे से ऊपर की ओर अर्थात् गांवों से देश के केन्द्र की ओर ले जाने के हिमायती थे। एक सामान्य कहावत है कि भवन का निर्माण नीचे से ऊपर की ओर होता है। उसकी सफाई, रंगरोगन या विध्वंस ऊपर से नीचे की ओर। गांधी का सोच था कि प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था में ग्राम गणतंत्र जीवन्त रहे हैं। उस बुनियादी आधार पर ही नगर गणतंत्र और राज्य गणतंत्र की इमारतें खड़ी की जाती रही हैं। प्राचीन भारतीय प्रशासन के अधिकारिक विद्वान काशीप्रसाद जायसवाल सहित अन्य विद्वानों का लगभग ऐसा ही तर्क देखने को मिलता है। इस आशंका का खंडन या बयान ठीक ठीक नहीं मिलता कि ग्राम्य गणतंत्र की प्राथमिक इकाइयों में सामान्य जनता की कितनी भागीदारी रही होगी। सामन्ती और सूबेदारी व्यवस्था में रायशुमारी या मतदान के आधार पर जनता की निर्णायक या प्रतिनिधिक भागीदारी के विश्वसनीय साक्ष्य नहीं मिलते। संभवत: गांधी इस विलोप को जानते हुए भी

ग्राम लोकतंत्र के कट्टर पक्षधर हो गए थे। वे पहली बार आज़ादी मिलने के बाद भारतीय जनता को मतदान जैसे असाधारण संवैधानिक अधिकार के जरिए आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में मौलिक प्रयोग कर रहे थे। गांधी के बरक्स उनके सहयोगी और अनुयायी कांग्रेस के नेतृत्व में होने के कारण संसदीय संस्थाओं में चुने गए थे। उनमें ऊपर से नीचे किए जा रहे ब्रिटिश प्रशासन की नकल का हिन्दुस्तान बनाने की प्रतिबद्धता का यूरोपीय भाव था। संविधान सभा में यही तय किया गया कि हिन्दुस्तान का आईन भारत शासन अधिनियम, 1935 को अपने रोलमॉडल के रूप में स्वीकार कर उसी ढांचे पर भारतीय समझ का पलस्तर चढ़ाएगा। संविधान अंततः यूरोपीय संवैधानिक समझ का भारतीय संस्करण बनकर रह गया। उसमें प्राचीन भारतीय ग्राम्य व्यवस्था और गांधी के सपनों का आधुनिक लेकिन परंपराबिद्ध पंचायती राज गायब है।

असहमति से सहमति : संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने प्रारूप समिति द्वारा भारत के संविधान के मूल पाठ को समर्थन दिया। पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', बेगम एजाज रसूल, सारंगधर दास, रामचन्द्र गुप्ता, ओ.पी. अलगेसन, श्रीमती दुर्गाबाई, सरदार सोचेतसिंह, जसपतराय कपूर आदि ने एक मजबूत केन्द्र की अवधारणा के पक्ष में अपने बयान किए। सारंगधर दास ने संविधान के ड्राफ्ट के बचाव में यह कहा : ''अम्बेडकर के आरोप के उत्तर में मैं कहूँगा कि ग्रामों में कोई स्थानीयता का भाव नहीं है। वहां अज्ञान हैं-हां, अज्ञान अंग्रेजी भाषा का, तथा हमारी विभिन्न लिखित भाषाओं का, और यह स्थिति हमारी सरकार जिस प्रकार की थी, उस कारण बनी, एक सरकार जिसने हमारी शिक्षा प्रणाली बर्बाद कर दी। जहां तक प्रकृति के ज्ञान तथा शास्त्रों एवं पुराणों से प्राप्त बुद्धिमानी का सवाल है, मैं कहूँगा कि हमारे आधुनिक शहरों की अपेक्षा ग्रामों में ज्यादा बुद्धिमानी और ज्यादा ज्ञान है।.....मैं उन सभी आदरणीय मित्रों के प्रति कुछ शब्द कहने की अनुमति चाहता हूँ, जो ग्राम पंचायत प्रणाली के इतने अधिक उत्साही समर्थक हैं। जब तक हमारे ग्रामीण जन शिक्षित न हो जाएं, जब तक वे राजनीतिक रूप से जागृत न हो जाएं, जब तक वे अपने नागरिक अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति सजग न हो जाएं और जब तक वे अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के प्रति सचेत न हो जाएं, तब तक यह ग्राम पंचायत प्रणाली लाभ की अपेक्षा नुकसान अधिक पहुंचाएगी। मैं जानता हूँ कि मैं अपने लिए गंभीर हानि को निमन्त्रित कर रहा हूँ, जब मैं यह कहता हूँ

कि ग्राम पंचायत प्रणाली तो शताब्दियों और शताब्दियों तक यहां रही है, और रही थी। इसने हमारे देश के कल्याण के लिए कितना योगदान दिया, हमारे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उन्नयन के लिए इसने कितना क्या किया ?''

गांधी के निधन के कुछ माह बाद हुए संवैधानिक वाद विवाद में गांधी के विचार धूमिल भी हो रहे थे। यह आश्चर्यजनक था कि आज़ादी के आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी करने वाले कुछ सदस्यों को भी गांधी का ग्राम्य विचार संदर्भहीन नज़र आने लगा था। इस सिलसिले में हिन्दी के कट्टर समर्थक और लेखक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का यह कथन ध्यान देने योग्य है : 'महात्मा गांधी अतिकेन्द्रीयकरण, ओवर सेन्ट्रलाइजेशन के विरुद्ध थे। मेरे मित्र को यह पता होना चाहिए कि इसेन्शियली गांधी वाज़ ए एनार्किस्ट। गांधी एक फिलासाफिकल अनार्किस्ट, एक अराजकतावादी थे। तत्त्व रूप से वह अराजकता को हितकर समझते थे, क्योंकि वह व्यक्ति को इतना ऊंचा बना देना चाहते थे, जहां उसे किसी प्रकार के बाह्य नियंत्रणों की आवश्यकता न हो। हम और आप इतने ऊंचे प्राणी नहीं हैं। हमारे लिए अराजकतावाद और गांधी के शब्दों को दुहरा कर उनके अनुसार कार्य करने का प्रयास हास्यास्पद होगा, और इसलिए गांधी के शब्द यहां पर दुहराना व्यर्थ है।' कुल मिलाकर संविधान सभा की केन्द्रीय बहस में जब पंचायती राज की अवधारणा को मूल अधिकारों के परिच्छेद में उल्लेख नहीं होने पर नीति निदेशक सिद्धान्तों के खण्ड में रखा गया तब अधिकतर सदस्यों की चेतना में गहराता हुआ अपराध बोध घिर आया था। लगभग सभी सदस्यों ने इस बात पर क्षतिपूर्ति मिलने की शैली में सन्तोष व्यक्त किया कि भले ही स्वशासन की इस बुनियादी पाठशाला को मूलभूत अधिकारों में स्थान नहीं मिला, तब भी नीति निदेशक सिद्धान्तों के तहत उसे रखने से अब राज्य की विधायिकाओं का कर्तव्य होगा कि पंचायत राज की अवधारणा को गांधी के सपनों के संदर्भ में बल्कि भारतीय राजनीतिक सिद्धान्तों को पुष्ट किया जाए। संविधान सतत तथा लचीला दस्तावेज है। संविधान में भारत के लगभग सात लाख गांवों की आत्मा आज तक यदि अभिशप्त नहीं है तो मुकम्मिल तौर पर अभिव्यक्त भी नहीं है। संविधान के ताजा संशोधन के बाद राज्य का दायित्व तो बढ़ा है परन्तु ग्राम स्वराज का बोध अब तक संविधान की चेतना के बाहर है। एक परिपक्व संविधान से वक्त पूछने को तत्पर

है कि आज़ादी के महासमर में जो अनगिनत सैनिक गांधी के नेतृत्व में निर्णायक योद्धा थे, उनके वंशज पंचायत व्यवस्था पर आधारित भविष्य का हिन्दुस्तान कब बना पाएंगे ?

गांधी के सामने भारत के गांव निर्विकल्प रोल मॉडल की तरह थे। उनकी ऐतिहासिकता में एक समुन्नत और संतुलित सामाजिक जीवन की अनुगूंज साफ साफ सुनाई पड़ती रही है। इतिहास की अवधारणाओं पर विश्वास करना और उन्हें अपने समय की चुनौतियों को हल करने के लिए प्रेरक संबल बनाने के कारण आलोचकों को गांधी बूर्ज़ुआ या कंजरवेटिव नजर आते रहे हैं। तो भी उन्हें अपनी आलोचना की परवाह नहीं रही है। साम्यवादी विचारकों से अलग हटकर गांधी जनअधिकारों के नए जुमलों के मुकाबले मानव अधिकारों के बड़े पैरोकार के रूप में इतिहास में अपनी दुर्लभ ऊंचाई लिए खड़े नजर आते हैं। इस अर्थ में कि मजदूर और मालिक के संघर्ष से उपजी घृणा की मन:स्थितियों से भारत के भविष्य को बचाया जाए। हृदय परिवर्तन जैसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को गांधी एक सकारात्मक घटित मानते हैं।

गांधी के लिए शहरी-जीवन एक नया सामाजिक उद्‌वेग था। वह जीवन पूरी तौर पर आधुनिक सभ्यता से आच्छादित होता जा रहा था। नगर के जीवन को गांधी इतिहास की स्थापित मान्यताओं के खिलाफ ऐसा प्रयोग समझते थे जो अपनी जड़ों से कट गया हो और आकाश कुसुम बने रहने में गर्वोन्मत्त हो रहा हो। बड़े बड़े औद्योगिक नगरों के मुकाबले गांधी भारत के सात लाख गांवों को आवास की इकाइयां बनाकर एक सुसंस्कृत जीवन की कामना करते रहे थे। ग्रामीण जीवन उनके लिए शुतुरमुर्ग वृत्ति का पलायन प्रक्षेप नहीं था। उसमें जीवन का ऐसा आस्वाद था जो मनुष्य की बुनियादी प्रवृत्तियों को संतुष्ट करता है। कई मनोवैज्ञानिक अवरोधों से उसकी रक्षा भी करता है। गांधी के लिए भारत के गांव एक तरह से जीवन की अहिंसा का विश्वविद्यालय रहे हैं। भारत के संतों के महान आदर्शों के लिए ये गांव प्रयोगशालाएं रहे हैं। ये गांव आधुनिक सभ्यता से कुछ भी आयात करने के इच्छुक नहीं रहे हैं। ये अहिंसा-आधारित समाज व्यवस्था के विकल्प के रूप में आधुनिक सभ्यता के आक्रामक रुख को झेलने को तैयार नहीं थे।

भारत की ग्रामीण सभ्यता में माओ त्से तुंग बल्कि लिन पियाओ की विरोधी-उन्मूलन की नीति की तरह कोई वैचारिक स्वीकार्यता नहीं रही है। इन

गांवों ने अपने मतभेदों को सुलझाने के लिए आपसी सहकार की प्राथमिक संसदीय पद्धतियां चुन रखी थीं। उनके सामूहिक निर्णय के प्रति उनकी आस्था रही है। व्यक्तिगत जीवन में गैर-उच्छृंखलता और सहिष्णु-स्वायत्तता और सामूहिक जीवन में निर्णय-क्षमता का आविष्कार सामाजिक वैज्ञानिकों को भारतीय ग्राम्य जीवन की एक बड़ी देन रही है। गांधी के अनुसार कई अवसरों पर राजाज्ञा का प्रतिरोध करते ग्रामीणजनों ने राज्य से निर्वासित होने को अपना निर्णय बल्कि धर्म बनाया और राजाज्ञा को घुटने टेकने पड़े। 'हिन्द स्वराज' के अध्याय 17 के अनुसार, 'मुझे याद है कि एक रियासत में रैयत को अमुक हुक्म पसन्द नहीं आया, इसलिए रैयत ने हिजरत करना–गांव खाली करना–शुरू कर दिया। राजा घबराये। उन्होंने रैयत से माफी मांगी और हुक्म वापस ले लिया। ऐसी मिसालें तो बहुत मिल सकती हैं। लेकिन वे ज्यादातर भारत-भूमि की ही उपज होंगी। ऐसी रैयत जहां है वहीं स्वराज्य है। इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है।' इस तरह अहिंसा का सर्वज्ञात, सर्वसुलभ और प्रयोगशील सिद्धांत भारतीय वैचारिकी में शुरूआत से शामिल रहा है। भले ही भारत के सामान्य ग्रामीण बौद्धिक दृष्टि से ख्यातनाम संस्था के रूप में विकसित नहीं समझे गए।

स्वराज पाने का सीधा रास्ता गांधी के अनुसार स्वदेशी का ही था। घुमावदार मोड़ नहीं होने से सीधा रास्ता पाथेय तक जल्दी पहुंचा सकता है। यदि गांधी के अर्थों में स्वदेशी आंदोलन को भारत की जनता ने अपना लिया होता तो स्वतंत्रता 15 अगस्त, 1947 को मुकम्मिल तौर पर मिल सकती थी। स्वदेशी के बहुत से आशयों में स्थानिकता का आग्रह भी एक केन्द्रीय बिन्दु है। वह भारत के गांवों का आर्थिक पुनरुत्थान करने का महत्वपूर्ण आंदोलन था। अंबेडकर ने भारत की संविधान सभा में चार्ल्स मैटकॉफ का उद्धरण देते हुए भारत के गांवों को नाबदान तक की संज्ञा दी थी। उनके उद्धार को एक असंभव परिकल्पना बताया था। गांधी इसके बरक्स गांव की गरिमा, स्वायत्तता और नैसर्गिक आध्यात्मिकता के पक्षधर रहे हैं। इसलिए गांधी का आंदोलन अपने देश के लिए भारतीय विकल्प बताते हुए पश्चिमी राष्ट्रवाद के मुकाबले एक ऐसे व्यक्ति की पेशकश थी जिसने उसे स्वदेशी आंदोलन का नाम दिया था। गांधी इस बात को लेकर आश्वस्त थे और ठीक ही कि शहरी भद्र लोक ने भारतीय गांवों की अर्थव्यवस्था पर अपना एकाधिकार कर उसे शोषण का हथियार बना रखा है। गांधी इस अर्थ में शहरों के पूरी तौर पर

विरोधी थे। वे इस पूरी प्रक्रिया को उलट देना चाहते थे। समतामूलक समाज की उनकी अवधारणा कोई रोमांटिक फितूर नहीं था। वह संपूर्ण बराबरी लाने की जिद थी।

माओ त्से तुंग ने भी चीन में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अपने विचारों के केन्द्र में रखा, लेकिन गांधी के लिए गांव भौगोलिक स्थान, सांख्यिकी या सामाजिक वर्गीकरण नहीं थे। वे उनके लिए घटना, सपना, संस्कृति थे। वे गांव शब्द से किसी भौतिक इकाई को नहीं, एक जीवन मूल्य-समुच्चय को ध्वनित करते थे। ग्राम्य जीवन को नगरीय जीवन के ऊपर तरजीह देते गांधी ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जहां राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम हो। ब्रिटिश सांसद जे.सी.मोर यह कहते हैं– 'हमने पाया कि भारत एक प्राचीन सभ्यता है, जो वहां हजारों सालों से रह रही अतिशय बुद्धिमान जातियों के चरित्र का अंग बन चुकी है। उस सभ्यता ने भारत को राजनैतिक संरचना तो दी है। समाज और परिवार के जीवन को चलाने वाली अनेकों विविधतापूर्ण और सम्पन्न संस्थाएं भी दी हैं। अपनी इन संस्थाओं के कारण हिन्दू जाति का चरित्र उन्नत है। वे कुशल व्यापारी हैं, बुद्धिमान, विचारशील और समीक्षाबुद्धि से सम्पन्न हैं, कमखर्च हैं, उदार हैं, संयमी हैं, धर्म पर चलने वाले और नियमों को मानने वाले हैं, मधुर व्यवहार वाले हैं, दयालु हैं, विपत्ति में धैर्यशील हैं और मातापिता की आज्ञा मानने वाले हैं।' 'टॉमस मुनरो के अनुसार, 'भारत के हर गांव में ऐसी पाठशालाएं हैं जो गणित और साहित्य सिखाती हैं। भारत में खेती की श्रेष्ठ पद्धति और उत्तम कारीगरी है। यहां के लोग स्त्रियों के प्रति गहरे आदर, विश्वास और कोमलता का व्यवहार रखते हैं।' विक्टर कज़िन के अनुसार, 'भारत का दार्शनिक चिन्तन गहरे सत्य का साक्षात्कार करने वाला है।'

गांधी की सुनिश्चित राय थी कि राज्य-शक्ति तो हिंसा का एक हथियार है। यह अलग बात है कि भारत पाक विभाजन को लेकर अचानक और अनावश्यक उमड़ा धार्मिक उन्माद सार्वजनिक हिंसा में अभिव्यक्त हुआ था। उसे समाप्त करने के लिए गांधी राज्य की हिंसा का प्रबल विरोध भी नहीं कर पाए थे। स्वातंत्र्योत्तर भारत में राज्य की हिंसा के उत्तरोत्तर प्रकरणों से गांधी के आरोप बिना किसी अतिरिक्त साक्ष्य के सिद्ध होते प्रतीत होते हैं। कई बार राज्य-सत्ता की प्रतिरक्षात्मक हिंसा मूल आक्रामक आतंकी, नक्सली या निजी अपराधी की हिंसा के मुकाबले ज्यादा सघन, पुनरावृत्त और विषादमय हो

जाती है। इसलिए गांधी स्वतंत्रता आंदोलन तक में हिंसा के विरुद्ध थे। व्यवहृत हिंसा का परिणामात्मक कुनबा रक्तबीज की तरह बढ़ता है।

वैश्वीकरण इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा अभिशाप है। गांधी के लिए आधुनिक सभ्यता उन्नीसवीं और बीसवीं सदी का अभिशाप रही है। गांधी के अर्थशास्त्र में स्वदेशी के माध्यम से ग्रामोद्योगों की भूमिका को लेकर स्थानिकता का जो आग्रह है उसे मटियामेट कर बाजार बनती दुनिया और इसलिए हिन्दुस्तान को ही विश्व गांव के रूप में तब्दील करने का झंझावात आ गया है। उसमें 'हिन्द स्वराज' के लिए केवल एक त्रासद संदेश है। गांधी के ग्राम-स्वराज की कल्पना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रियाकलाप प्रत्येक गांव के स्तर पर इस तरह संचालित होंगे कि उनकी निर्भरता शासन की अन्य किसी इकाई पर नहीं हो। ऐसा होने से तात्कालिक दृष्टि से उपलब्ध सहज समाज की वरीयता सामाजिक संरचना में स्थापित होती है। इससे एक अच्छी राजनीति अथवा राजनीति में अच्छेपन की शुरुआत की संभावना गांधी विचार में नज़र आती है। गांधी की दृष्टि में विकेन्द्रीकरण का अर्थ औद्योगिक इकाइयों का बिखराव भर नहीं है। वह समानांतर राजनीति की एक ऐसी रचना है जिसमें लोकशक्ति संस्थागत आचरण करे। वह केन्द्रीकरण और समाज में विभेद पैदा करने वाली आधुनिक राष्ट्र-राज्य की परिकल्पनाओं से टक्कर ले सके। गांधी की इस समझ के आधार पर विकेन्द्रीकृत राजदर्शन में सत्तामूलक समाज इस तरह बनता है। उसमें सत्ता मूल में नहीं होती बल्कि देश के ग्रामीण केन्द्र मूल सत्ता में होते हैं। यह सही है कि 'हिन्द स्वराज' की इस थीसिस को लागू करने की नीयत और इसलिए शायद अब भारत में नियति भी नहीं है। दुनिया की एक इकाई के रूप में भारत पूंजीकृत वैश्वीकरण के मकड़जाल में फंस गया है। विश्व समाज के उद्देश्य और प्राथमिकताएं ही बदल गई हैं। प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन भौतिक संसाधनों की लिप्सा की वजह से औद्योगिक समाज का पाथेय बनता गया है। उस संदर्भ में गांधी पर बात करना एक तरह के पिछड़ेपन और यथास्थितिवाद का पोषण और पारेषण कह दिया जाता है।

गांधी विचारों के अध्येता डॉ. रामजी सिंह ग्रामीण सभ्यता की गांधी की थीसिस को अग्रसर कहते हुए यह तर्क करते हैं, 'बड़े-बड़े नगर बनाये जा रहे हैं।' लेकिन यह बड़े भीमकाय नगरों का जैसा कि स्पेंगलर ने 'डिक्लाइन ऑफ

द वेस्ट' में लिखा है कि भीमकाय नगर पतनोन्मुख संस्कृति के परिचायक हैं। इसीलिए प्रश्न है कि यह औद्योगिक सभ्यता हमारे सामने नगरों की अपसंस्कृति को लाई है। इस औद्योगिक सभ्यता ने हमारे पर्यावरण को प्रदूषित किया है। इसी औद्योगिक सभ्यता ने नागासाकी और हिरोशिमा में मानव का संहार किया है। प्रश्न है कि प्रगति क्या है? मैं तो बराबर उपनिषदों की ओर देखता हूँ। जब याज्ञवल्क्य ने कात्यायनी और मैत्रेयी को, (दोनों पत्नियां थीं) पूछा। जब वह वनवास जाने लगे तो सोचा कि आधा-आधा दोनों में बंटवारा कर दें। तो कात्यायनी सांसारिक थी उसने कहा कि हां–आधा बांट दीजिए। मैत्रेयी को पूछा कि मैत्रेयी तुम्हें आधी सम्पत्ति दे दें। वही प्रश्न आप पूछें और वही प्रश्न गांधी का 'हिन्द स्वराज' में खड़ा है। जब सभ्यता के संबंध में प्रश्न करते हैं कि क्या इससे मुझे सुख और शांति मिलेगी? याज्ञवल्क्य ने कहा कि इसकी तो कोई गारंटी नहीं है। तो मैत्रेयी ने हाथ जोड़कर कहा 'ये नाहम् नामृतास्याम, किमहम् तेनकुरुर्ष्याम्' (जो लेकर मुझे स्थायी सुख और शांति नहीं मिलेगी, वह लेकर मैं क्या करूंगी?)''

हेनरी समर मेन की क्लासिक कृति 'विलेज कम्युनिटीज़ इन द ईस्ट एण्ड वेस्ट' को भी गांधी ने 'हिन्द स्वराज' के परिशिष्ट में शामिल किया। यह गांधी की आश्वस्त समझ थी कि जब तक भारत के गांवों को आजाद होने का अहसास नहीं होगा, तब तक राजनीतिक आजादी को ब्रिटिश हाथों से भारतीय हाथों में अंतरण को स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकेगा। गांधी के लिए भारत के गांव एक साथ चुनौती और उम्मीद की किरण जगाते हैं। अतीत में गांवों के किसानों के साथ अत्याचार हुए होंगे। उनका कोई ब्यौरा 'हिन्द स्वराज' में नहीं मिलता। गांधी के स्वप्न में गांव ऐसे ही हैं जो अपने सामाजिक जीवन के नैतिक बिन्दु से स्खलित नहीं हुए थे। ऐसे गांवों का पुर्नजन्म भारतीय स्वतंत्रता का वास्तविक पर्याय हो सकता था, उससे कमतर नहीं। ग्राम्य जीवन का उत्कर्ष भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में ही नहीं उसकी परिभाषा के अर्थ में महत्वपूर्ण था। यदि उसे उन प्राकृतिक अधिकारों से लैस किया जाता जो नैसर्गिक रूप में अन्यथा भी ग्राम्य जीवन का अंतर्भूत अवयव थे।

भारत के मध्य वर्ग बल्कि कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व ने भी इस तरह की आजादी की कल्पना नहीं की थी। इसलिए महात्मा गांधी का स्वाधीनता का निहितार्थ एक उच्चतर धरातल की प्रतीति था। वह दिवास्वप्न की तरह भले

दिखता हो। उसे साकार करने की कोशिशें भी स्वातंत्र्योत्तर भारत में नहीं की गईं। गांधी गांव को राष्ट्रीय जीवन की आधारभूत इकाई बनाना चाहते थे। उनकी शक्ति को शहरों की संस्थाओं के चोंचलों को नहीं सौंपना चाहते थे। ऐसी जन विरोधी संस्थाओं में से एक न्यायपालिका और इसलिए वकीलों के लिए उन्होंने 'हिन्द स्वराज' के ग्यारहवें अध्याय में निंदात्मक टिप्पणी तक की है। भारत के किसान बहुत बुरी हालत में रहे हैं। सभी शासकीय नीतियां, कार्यक्रम और उनके क्रियान्वयन में या तो गांवों की उपेक्षा हुई है अथवा उनका शोषण। यह सब गांधी की दृष्टि में आधुनिक सभ्यता के कारण हुआ। जब भारत के गांव नर्क बना दिए गए और उसके निवासी औद्योगिक सभ्यता के शिकार। मेन की थीसिस से गांधी ने दो राजनीतिक उद्देश्य हासिल किए। पहला तो यह कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में निवास कर रहे भारतीयों के लिए मतदान का अधिकार मांगा क्योंकि भारतीय सदियों से प्रजातांत्रिक संस्थाओं को समझते और विकसित करते रहे हैं। दूसरी प्रेरणा उन्होंने यह ग्रहण की कि ग्रामोद्धार को उन्होंने अपने जीवन का सबसे बड़ा ध्येय बना लिया।

यह गांधी ने कहा था कि इस देश के केवल शहरी लोग अंगरेजों के गुलाम हैं। अंग्रेजी पोशाक, भाषा, खानपान से लकदक भद्रजन अंगरेज हाकिम-हुक्कामों के हुक्का भरने वाले मनसबदार हैं। भारत के सात लाख गांव अंगरेजों के गुलाम नहीं हैं। अपनी पुश्तैनी पोशाकों में लैस, संस्कृति, परम्पराओं, तहजीब, धर्म में आकंठ डूबे ग्रामीण अपनी निपट सादगी की शक्ति लिए यह जानते ही नहीं हैं कि कौन है अंगरेज और कहां से आया है ? गुलामी एक मानसिकता है, राजनीतिक घटना नहीं। यह गांधी का प्रमेय था। राजनीति विज्ञान के तात्विक विवेचक किताबी दुनिया के लोग हैं। उन्हें ये जुमले समझ ही नहीं आए होंगे। भारत की आजादी के लगभग सभी जननायक पश्चिमी शिक्षा के अध्येता रहे हैं। उन्हें भी गांधी के सूत्रों का सरलीकरण करना नहीं आया। अंगरेज अपने नवोदित ज्ञान के दम्भ में इतना फूला रहा कि उसे गांधी से संवाद करने की इच्छा ही नहीं हुई। इसके मुकाबिल जिन दरिद्रों, पस्तहिम्मतों और पददलितों के लिए गांधी ने सामाजिक विज्ञान की सोच की नई भाषा गढ़ी, उसे उन अशिक्षितों ने अच्छी तरह घोख लिया। इतिहास में जब जनता कोई सबक पढ़ लेती है। तब इन्कलाब ही करती है। कैलेन्डर में 15 अगस्त, 1947 इसी जनभाषा की वजह से छप गया है।

गांधी गांव की आत्मा थे बल्कि गांव गांधी की आत्मा में थे। उन्हें शहरों से परहेज़ भी था। आज होते तो किसानों की हो रही अंधाधुंध आत्महत्याओं का गांधी ने कोई नायाब और असरदार विरोध किया होता। स्वावलंबी गांव की परिकल्पना वाले महात्मा को वैश्वीकरण कतई बर्दाश्त नहीं होता। वे सरकारों को समझाते कि विश्व को गांव बनाने की विश्वयारी के चक्कर में न पड़कर गांव को विश्व बनाने वाले **वसुधैव कुटुम्बकम्** के रास्ते पर चलें। इस तरह के गांधी का आज जगह-जगह इस्तेमाल होता। उनकी बेहद कुरूप मूर्तियां सारे देश में लगी हैं। वे अकेले हैं जो भारत में सभी दफ्तरों और न्यायाधीशों के सर के ऊपर तक टंगे हैं। उनके जन्मदिवस पर पूरी छुट्‌टी होती है। उनकी पुण्यतिथि पर उनकी पूरी छुट्‌टी कर दी गई है। उनके रास्ते पर चलने का वे लोग भी आह्वान करते हैं जो दुनिया की सबसे महंगी शराबें पीते हैं। जो विवाहेतर संबंधों को खुला रखने में परहेज़ नहीं करते। जो बिना रसीद दिए नकद में फीस लेते हैं। जो मांसाहार के समर्थक हैं। जो एयरकंडीशनर के बिना न तो उठते बैठते हैं, न सोते हैं और न ही यात्रा करते हैं। जो उस बूढ़े आदमी की हिदायत के बाद भी छोटे सरकारी मकानों में रहना पसंद नहीं करते। जो अमेरिका और यूरोप में इलाज कराकर ही मरने को प्राथमिकता देते हैं। जो भारतीय विद्यार्थियों को अमेरिका भेजकर उनके पैरों में बेड़ियां डलवाते हैं। आस्ट्रेलिया भेजकर उनका कत्ल करवाते हैं। जो दक्षिण अफ्रीका को क्रिकेट खेलने के नाम से जानते हैं लेकिन जिन्हें सेंट मेरिट्ज़बर्ग स्टेशन का नाम तक नहीं मालूम है।

गांधी विदेशी हुकूमत से लड़े थे। आज़ाद भारत में वह कुल जमा पांच छह महीने जीवित रहे। अपने सपनों के कुचले जाने के बावजूद गांधी ने अपने उत्तराधिकारियों का कोई ठोस विरोध नहीं किया। संविधानसम्मत प्रजातंत्र में यदि सरकारों के भ्रष्टाचार और उनकी कर्तव्यहीनता को लेकर गांधी के नाम पर आंदोलन किए जाएं तो गांधी से बड़ा कोई अराजक व्यक्ति इतिहास में नहीं दिखाई देता। वे होते तो कहते कि सरकार के काले कानूनों को मत मानो। सरकार ने मानव अधिकार विरोधी जितने कानून बनाए हैं, उनको खुली चुनौती दो। वे कहते कि अवैध टैक्स देना बंद करो। वे शराब माफिया के खिलाफ अहिंसक आंदोलनों की झड़ी लगा देते। वे आमरण अनशन भी करते कि एक ओर संविधान में शराब बंदी लागू होने की घोषणा हो गई है तो सरकारें

अतिरिक्त राजस्व की लालच में देश की पीढ़ियों के जिस्म में तेजाब क्यों भर रही हैं। वे किसी भी हालत में 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' नहीं बनाने देते। वे विरोध करते कि धरती के नीचे जितनी भी खनिज संपदा है उसे एक बारगी खोदकर लुटेरों को नहीं दी जाए।

गांधी के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि उन्होंने आदिवासियों के लिए ठोस कुछ नहीं किया। उन्होंने गरीबों को दरिद्रनारायण बनाया। अनुसूचित जाति के बंधुओं को 'हरिजन' कहा। हरिजन यात्राएं निकालीं और 'हरिजन' नाम का पत्र भी। गांधी ने पश्चाताप किया कि देश की सबसे बड़ी आबादी आदिवासी होने के बावजूद गरीबी की रेखा के काफी नीचे है। उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में अलबत्ता आदिवासी सेवा को जगह दी थी। उनके सबसे प्रिय शिष्य और अब तो संघ परिवार के भी आराध्य सरदार पटेल ने संविधान की उपसमिति का अध्यक्ष होने के बावजूद आदिवासी अधिकारों को अमली जामा नहीं पहनाया। गांधी नक्सल-प्रभावित इलाकों में अहिंसा का बिगुल बजाने के साथ-साथ यह सुनिश्चित करते कि देश के खनिज और वनोत्पाद सरकारी बिचौलिएपन के कारण पूंजीपतियों के हत्थे नहीं चढ़ जाएं। गांधी अंगरेज़ी पद्धति की अदालतों और पद्धति के सख्त खिलाफ थे। वे तो वकीलों को यथास्थितिवादी व्यवस्था का दलाल समझते थे। प्रचलित धारणा के विपरीत उन्होंने साफ कहा था कि आज़ादी के आंदोलन में केवल उन वकीलों का योगदान रेखांकित करने योग्य है जिन्होंने वकालत छोड़कर आंदोलन में हिस्सेदारी की थी।

गांधी को आदिवासियों के लिए कुछ सार्थक कर पाने का आत्मसंतोष नहीं था। आज गांधी को झुठलाकर आदिवासियों की जमीनें निर्लज्ज कानूनों के आधार पर छीनी जा रही हैं। एक तरफ सरकारें, दूसरी तरफ उद्योगपति, तीसरी तरफ राजनेता और चौथी तरफ खड़े नक्सलवादियों की चौहद्दी में आदिवासी किसान, परम्पराएं, संस्कृति, ग्राम्य बालाओं का शील, युवकों का भविष्य सब कुछ खतरे में है। दक्षिण अफ्रीका के मूल निवासी भी तो आदिवासी नस्ल के रहे हैं। उनका ही तो उद्धार गांधी ने किया। आदिवासियों को हिंसा की शिक्षा देकर सभी तरह के कुटिल लोग उन कुदरती जीवन तत्वों से वंचित कर रहे हैं जिनके परिष्कार ने गांधी का आविष्कार किया था।

किसान गांधी की आत्मा में थे। वे आज होते तो किसानों की

आत्महत्या जैसे अकल्पनीय सच को सत्याग्रह के हथियार से टटोलने की कोशिश करते। देसी उद्योगों के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं रखने पर भी गांधी के लिए गरीब होना उनकी सम्मान सूची में कहीं ऊपर बैठना था। वे पहले भारतीय थे जिन्होंने अधिकारच्युत लोगों में आत्मविश्वास गूंथते हुए वक्त की नज़ाकत के अनुकूल चतुर रणनीति अख्तियार करने की शैली को भी इतिहास की प्राकृतिक दिशाओं के संदर्भ में बूझ लिया था। उनकी आंखों में आंसू सूख गए थे, लेकिन मरे नहीं थे। उनकी आंखों में आंसुओं के शोले ओलों की तरह दिखाई देते थे। वे आंखें मनुष्य के लिए वक्त के बियाबान के परे तक जाती थीं। लाक्षणिकता गांधी का विचार श्रृंगार नहीं थी। समस्याओं, विचारों, गलतफहमियों और अंतर्विरोधों की जड़ तक जाने में गांधी को जादुई दृष्टि हासिल थी। ऐसा नहीं है कि हर कोई उसी तरह परिश्रम करके गांधी बन सकता है। तवारीख में बड़ा आदमी होना केवल देह धरे का उत्कर्ष नहीं है। कहीं तो कुछ है जो किसी को इंसानियत की सरगनिसेनी बना देता है। सरगनिसेनी का लक्ष्य खुद कहीं पहुंचना नहीं है। वह पाथेय बताने का कुतुबनुमा है। कोई उस पर चढ़े तो!

गांधी ने भारतीय आज़ादी के सन्दर्भ में एक और प्रश्न हमारी जिज्ञासा के कार्यवृत्त पर रखा। यह बात विवादग्रस्त हो सकती है लेकिन गांधी ने राजनीतिक प्रक्रिया का गैरबौद्धिकीकरण किया। इस तरह उन्होंने कोरे बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया जिनकी वजह से क्रान्ति की प्रक्रिया भोथरी होती है। लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविन्द, विवेकानन्द बल्कि भारतीय नवजागरण के लगभग प्रत्येक अशेष हस्ताक्षर ने अपनी समकालीन दुनिया के सामने उगे पश्चिमी सवालों का जवाब देने कि लिए भारतीय इतिहास की प्राचीनता से मदद ली। इनमें से लगभग प्रत्येक विचारक ने पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए महान भारतीय आदर्शों के हथियारखानों में पनाह ली। यह तरीका गलत नहीं था। हमारे प्रामाणिक, पुष्ट और प्रयोगधर्मी भारतीय विचार के मानक सिद्धान्त पश्चिम की हर चुनौती का मुकाबला करने को मानो इन विचारकों द्वारा तत्पर किये गए। इसके समानान्तर चालीस वर्ष के मोहनदास करमचन्द गांधी ने जो विचारक, नेता या अन्य किसी भी रूप में भारतीय जनमानस में प्रतिष्ठित या सक्रिय नहीं हुए थे, 'हिन्द स्वराज' नामक निष्कलंक कृति लिखी। इस कृति में उन्होंने राम के नाम का उल्लेख तक नहीं किया, जिस

रामराज्य की परिकल्पना के लिए वे अन्यथा जीवन भर जूझते रहे। तुलसीदास के नाम का उल्लेख भी उन्होंने चलते चलते ही किया।

'**हिन्द स्वराज**' का मूल सन्देश भारत के ठेठ देहात के किसान हैं, जिनके माध्यम से गांधी ने भारत की आज़ादी का झंडा उठाया था। 'हिन्द स्वराज' की केन्द्रीय चिन्ता भारत के पुरातन इतिहास के ज्ञान की गवेषणा या पुनर्परिभाषा नहीं है। गांधी को चिन्ता है तो केवल हिन्दुस्तान के उन बुद्धिजीवियों की जो पश्चिम की भाषा, संस्कृति, राजनीतिक कौशल और आधुनिकता के समक्ष नतशिर हैं, कायल हैं बल्कि उसके बंधुआ मजदूर हैं। गांधी कहते हैं कि हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग जहाँ यह अंग्रेजों की चाण्डाल सभ्यता नहीं पहुंची है, आज भी आज़ाद हैं। देश में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ। धरती के इतिहास पर किसी भी देश के जन आन्दोलन का ऐसा कोई नायक नहीं हुआ, जिसने उस देश की गुलामी का कारण वहां के बुद्धिजीवियों, नौकरशाहों और समाज के पूरे श्रेष्ठि वर्ग को बताया है। यदि सांस्कृतिक समास का सहारा लिया जाए तो कहा जा सकता है कि देश के लोक जीवन में राम और कृष्ण की कथाएं, आल्हा-ऊदल के गल्प और कुरान शरीफ की आयतों की ऊष्मा हो। उसे इस बात की परवाह ही नहीं थी कि अंग्रेजी राज्य उनके आँगन तक उतर आया है। गांधी भारतीय वातायन के अकेले बौद्धिक हैं, जिन्होंने पश्चिम की सभ्यता के मूल्यों को भारतीय मूल्यों के हथियारों के सहारे चुनौती दी। तो उसके सबूत, उदाहरण और प्रदर्शन के लिए निहत्थे, निस्तेज परन्तु संस्कृति सम्पन्न भारतीय देहातों को चुना। 13/14 नवंबर, 1936 को जॉन आर मॉट के साथ चर्चा में गांधी ने कहा था, 'मैं गांवों का उद्योगीकरण नहीं करना चाहता। मैं तो प्राचीन पद्धति पर उनका नव-संस्कार करना चाहता हूँ, अर्थात् गांवों में हाथ-कताई, हाथ-पिंजाई और अन्य महत्वपूर्ण दस्तकारियों का फिर से चलन करवाना चाहता हूँ। ग्रामोद्धार-आन्दोलन कताई-आन्दोलन से ही फूटकर निकली एक शाखा है। सन् 1908 में इस विषय में मैं इतना अज्ञानी था कि उस समय लिखी हुई अपनी छोटी-सी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में मुझे जहाँ चरखा लिखना चाहिए था वहां मैंने करघा लिख दिया था।'

कभी कभी लगता है कि बुद्धिजीवी के रूप में गांधी जी की यश-यात्रा ऊर्ध्व नहीं थी। वह किसी शास्त्रीय नाटक के विपरीत अपने प्रथम परिच्छेद पर ही चरमोत्कर्ष पर आ खड़ी है। 'हिन्द स्वराज' के मुकाबले खुद गांधी के बाद

के साहित्य में प्रौढ़ता होने पर भी वह जीवंतता, चुनौती और परेशान दिमागी नहीं है। 'हिन्द स्वराज' की उस दृष्टि से यदि आज के भारतीय जीवन पर हम नज़र डालें तो अंग्रेजियत, अंग्रेजी भाषा, आधुनिकता और विश्व गांव के चक्कर में पड़कर लगता है पूरे भारत में यह बुद्धिजीवी वर्ग ही केवल गुलाम है। हिन्दुस्तान के असंख्य लोग अब भी सांस्कृतिक दृष्टि से लगातार अपनी अस्मिता को कायम रहकर आज़ाद हैं।

संविधान के 73 वें संशोधन के अनुसार भाग-9 पंचायतों के संबंध में जोड़ा गया है। अनुच्छेद 243-छ यह कहता है :– 'पंचायतों की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व-संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मण्डल, विधि द्वारा, पंचायतों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों और ऐसी विधि में पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाएं, निम्नलिखित के सम्बन्ध में शक्तियां और उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए उपबन्ध किए जा सकेंगे अर्थात्–

(क) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना;

(ख) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की ऐसी स्कीमों को, जो उन्हें सौंपी जाएं, जिनके अन्तर्गत वे स्कीमें भी हैं जो ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के सम्बन्ध में हैं, कार्यान्वित करना।

इस प्रावधान के अनुरूप पंचायतों के क्षेत्राधिकार को महत्तर बनाते हुए संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची को जोड़ा गया। इसके तहत पंचायतों को इन क्षेत्रों में अधिकार दिए जाने का वादा किया गया– 1. कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि-विस्तार है। 2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण। 3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्धन और जलविभाजक क्षेत्र का विकास। 4. पशुपालन डेरी उद्योग और कुक्कुट-पालन। 5. मत्स्य उद्योग। 6. सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी। 7. लघु वन उपज। 8. लघु उद्योग, जिनके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी हैं। 9. खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग। 10. ग्रामीण आवासन। 11. पेयजल। 12. ईंधन और चारा। 13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन। 14. ग्रामीण

विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण है। 15. अपारमपरिक ऊर्जा स्त्रोत। 16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम। 17. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं। 18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा। 19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा। 20. पुस्तकालय। 21. सांस्कृतिक क्रियाकलाप। 22. बाजार और मेले। 23. स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिनके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं। 24. परिवार कल्याण। 25. महिला और बाल विकास। 26. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है। 27. दुर्बल वर्गों का और विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनतातियों का कल्याण। 28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली। 29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

नगर सुधार कितना ?

गांधी ने स्वतंत्र भारत का ढांचा गांवों के चतुर्दिक विकास की बुनियाद पर रखने का आह्वान किया था। यह अलग बात है कि संविधान की इबारतों में गांधी के सपनों के चकनाचूर होने की कथा मर्माहत स्वर में गूंजती रहती है। फिर भी किसी न किसी रूप में स्वायत्तशासी राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने से एक महत्वपूर्ण राजनीतिक उपक्रम की शुरुआत का श्रेय उन अवधारणाओं को दिया जा सकता है जो गांवों और नगरों के आर्थिक विकास को लोकतंत्र की रीढ़ मानती हैं। यहाँ ठहरकर यह देख लेना भी मुनासिब होगा कि ग्राम पंचायतों का अर्थतंत्र पूरी तौर पर राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के श्रेष्ठि वर्ग पर आवंटन, व्यय और पश्चातवर्ती जांच को लेकर लगभग एकाधिकार की मुद्रा में निहित होता है। संविधान की इस आर्थिक व्याख्या के संदर्भ में आम आदमी लगभग पराजय की भूमिका में है। उसे लगता है कि संविधान में ऐसा कुछ अंतर्निहित है जो उसकी समझ के लिए नहीं रचा गया है। वह संविधान की पोथी को हाथ लगाने से भी डरता है क्योंकि उसमें उसके लिए ऐसा कोई पाठ नज़र नहीं आता जिसे वह आत्मसात कर सके।

यह भी नहीं है कि संसद को पंचायती राज की अवधारणा के प्रति चिंता नहीं रही है। आज़ादी के बाद यह तय किया गया कि यद्यपि संविधान में पंचायती राज लागू करने की बुनियादी प्रतिबद्धता को अनुच्छेद 40 (ग्राम

पंचायतों का संगठन-राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।) में हिदायत के रूप में शामिल किया गया है लेकिन राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा। वह उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों। लोकसभा के पहले निर्वाचन के बाद ग्राम पंचायतों को शक्ति, अधिकार और उत्तरदायित्व देने के सरकारी प्रकल्प हाथ में लिए गए। उचित विधायन और व्यवस्थाओं के अभाव के कारण वैसा करना संभव नहीं हुआ। 1957 में बलवंत राय मेहता समिति का गठन किया गया। मेहता कमेटी ने पंचायतों के कृत्य, प्राधिकारियों और वित्तीय संसाधनों की सुनिश्चितता करते हुए अपनी रपट पेश की। उसे राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकार भी किया गया। परिणाम वही ढाक के तीन पात की तरह हुआ। वाचाल तथा आश्वासनयुक्त योजनाएं भी टांय टांय फिस्स होती रहीं। लंबे अंतराल के बाद युवा नेता राजीव गांधी के प्रधानमंत्री काल में उनके इर्द गिर्द के गैरराजनीतिक जमावड़े ने यह वैचारिक तंतु बुना कि पूरी शासन व्यवस्था को केन्द्र और राज्य के संवैधानिक अधिकारों को कमतर करते हुए निचले पायदान की स्वायत्त संस्थाओं को समृद्ध और शक्तिशाली बनाया जाए।

यह संयोग है कि बीसवीं सदी के आखिरी दशक में पूरी दुनिया में क्षेत्रीय, स्थानीय और ग्राम्य स्तर की राजनीतिक शक्तियों ने केन्द्रीय शासन की जकड़न को ढीला करने की कोशिशें तेज़ कीं। नागरिक संस्थाओं ने लगातार दबाव बनाए रखा कि संवैधानिक, वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियों का कुछ हिस्सा इन संस्थाओं में वेष्ठित किया जाए। मुख्यतः तीन बिंदु सुझाए गए– राजनीतिक वैधता, प्राधिकार का विकेन्द्रीकरण और संसाधनों की उपलब्धता का दोहन। अशिक्षा, दब्बूपन, सूचनातंत्र का अभाव और एकजुटता नहीं होने के कारण नगर तथा ग्राम स्तर के जनप्रतिनिधियों ने कभी कोई सार्थक संवैधानिक जन आंदोलन अधिकारों के बटवारे के लिए खड़ा नहीं किया। बीसवीं सदी के अंत में शिक्षा और तकनीकी के प्रसार तथा वैचारिक वैश्वीकरण की बयार में नागरिक आवाज़ें छिटपुट शोर के बदले आग्रही नारों में तब्दील हुईं। इसलिए दुनिया के महत्वपूर्ण लोकतंत्रों में एक वैधानिक सिविल सोसायटी की इयत्ता

को तरज़ीह दी गई। नई सामाजिक स्थिति को संवैधानिक दृष्टि से सामासिक बनाने के लिए संविधान में ही संशोधन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इन शक्तियों को मुहैया कराने का अर्थ गांधी की परिकल्पना को साकार करना कतई नहीं था। वह प्राचीन ग्राम्य गणतंत्र की अवधारणाओं से उपकृत होकर परिवर्तित परिस्थितियों में पुष्ट करने जैसा भी नहीं था। वह किसी उपवन के वनस्पति जीवन में लोकप्रिय फूलों और फलों की प्रजातियों को भारतीय मिट्टी में रोपने जैसा था। उसके बीज विदेशों से आयात किए गए थे। इसलिए इन फूलों और फलों में भारतीय नस्ल की गंध और स्वाद का अभाव आना लाजिम़ी था। ऐसा नहीं है कि संविधान संशोधन के पहले देश में किसान आंदोलन, मज़दूर हड़तालें, छात्र संघर्ष और पर्यावरण सम्मेलन आदि नहीं हुए होंगे। जनसमर्थक इन गतिविधियों का भी संसद के सोच पर सीमित असर अवश्य हुआ है। कुल मिलाकर विधानवेत्ताओं की नीयत की आंत में वह जज़्बा दिखाई नहीं देता जो इन प्राथमिक संस्थाओं को विधायिका का लघु रूप मान ले। संविधान के ये संशोधन अपनी भाषा और जिरह में पुश्तैनी विचार के अग्रसरकर्ता और पवित्र तो लगते हैं, परंतु कवि मित्र मधुकर खरे के इस कथन की तरह– 'लगता था जीते तो हैं, पर मनुष्य ही नहीं रहे।'

विकास की अवधारणा को लेकर संविधान में महत्वपूर्ण संशोधन हुआ जब नीति निदेशक सिद्धांतों के अध्याय में उल्लिखित पंचायती राज और नगर पालिक संस्थाओं को संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के द्वारा संवैधानिक दर्जा दिया गया। अनेक तरह के प्राथमिक और मैदानी विकासों की जिम्मेदारियों से इन संस्थाओं को युक्त घोषित किया गया ताकि विधायिका संस्थाओं पर उनकी निर्भरता कम हो। किसी न किसी रूप में स्वायत्तशासी राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने से एक महत्वपूर्ण राजनीतिक उपक्रम की शुरुआत का श्रेय उन अवधारणाओं को दिया जा सकता है जो गांवों और नगरों के आर्थिक विकास को लोकतंत्र की रीढ़ मानती हैं। यहाँ ठहरकर यह देख लेना भी मुनासिब होगा कि ग्राम पंचायतों का अर्थतंत्र पूरी तौर पर राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के श्रेष्ठि वर्ग पर आवंटन, व्यय और पश्चातवर्ती जांच को लेकर लगभग एकाधिकार की मुद्रा में निहित होता है। संविधान की इस आर्थिक व्याख्या के संदर्भ में आम आदमी लगभग पराजय की भूमिका में है। उसे लगता है कि संविधान में ऐसा कुछ अंतर्निहित है जो उसकी समझ के लिए नहीं

रचा गया है। वह संविधान की पोथी को हाथ लगाने से भी डरता है क्योंकि उसमें उसके लिए ऐसा कोई पाठ नज़र नहीं आता जिसे वह आत्मसात कर सके। एक संवैधानिक मुगालता देश के ज़ेहन में पिछले बीस वर्षों से पक रहा है कि प्रशासनिक व्यवस्था त्रिस्तरीय हो गई है। संसद और विधानसभाओं के बाद पंचायतों और नगरपालिक संस्थाओं के संविधान सम्मत गठन के कारण लोकतंत्रीय प्रशासन का व्यावहारिक विस्तार हो गया है।

1992 में 73वें और 74वें संविधान संशोधन के जरिए पंचायतों और नगरपालिक संस्थाओं को संवैधानिक अधिकार और स्वायत्तता से लबरेज़ किया गया है। ये संस्थाएं राजनेताओं और नौकरशाही के दुर्लक्ष्य के कारण अचानक भंग नहीं की जा सकतीं। छह माह की अवधि के भीतर ही आवश्यकतानुसार उनके नए निर्वाचन कराने होंगे। हकीकत लेकिन कुछ और है। संविधान की ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूची के अनुसार पंचायती तथा नगरीय स्वायत्तशासी संस्थाओं को अधिकार प्रावधानित हैं। वस्तुत: वे राज्य सरकारों द्वारा उन्हें अब तक दिए ही नहीं गए हैं। संविधान के भाग 9 तथा 9 (क) में पंचायत तथा नगरीय स्वायत्त संस्थाओं को दिए गए तमाम अधिकारों को राज्यों के विधानमंडलों के जिम्मे कर दिया गया है। राज्य आवश्यकतानुसार इन संस्थाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेंगे जिससे वे वांछित कार्य करने में समर्थ हो जाएं। संविधान में राज्यों के मुकाबले केन्द्र को बहुत अधिक अधिकार हैं। भले ही संवैधानिक व्यवस्था को राज्यों का फेडरेशन कहा गया हो। इसकी तह में मुस्लिम लीग का संविधान सभा में शिरकत करने को लेकर नकार था और साथ-साथ पाकिस्तान के निर्माण की घोषणा। विघटनकारी शक्तियों के अचानक सियासी सतह पर आ जाने के कारण मजबूत केन्द्र की अवधारणा संविधान के पाठ में कारगर बना दी गई। राज्यों को इसलिए लगातार यह बोध होता है कि उन्हें और अधिक शक्तियां मिलनी चाहिए। यही वह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है जिसमें राज्यों को लगता है कि उन्हें पहले से ही मिली कम शक्तियों में से यदि कुछ स्वायत्त संस्थाओं को आवंटित कर दी जाएंगी तो केन्द्र के संवैधानिक टीम टाम के सामने वे बौने नज़र आएंगे। एक दूसरा खतरा भी उत्पन्न हुआ है। राज्यों की असफलता तथा उन पर नकेल कसने के सियासी इरादों के चलते केन्द्र सरकार ने पिछले पैंसठ वर्षों में केन्द्रीय योजनाओं और प्रकल्पों में लगातार इजाफा किया है। भले ही

धन का आवंटन और व्यय राज्यों की नौकरशाही के जरिए किया जाए। केन्द्र सरकार द्वारा स्वायत्तशासी संस्थाओं को राज्यों के अधिनियमों के जरिए अधिक शक्तियां देने के उपक्रम का यह भी कूटनीतिक निहितार्थ हो सकता है कि राज्यों के प्रशासनिक अधिकार कुछ कम तथा विकेन्द्रीकृत हो जाने से केन्द्र की उन पर पकड़ अपेक्षाकृत मज़बूत हो जाएगी। दूसरा लाभ स्वायत्तशासी संस्थाओं और केन्द्र के बीच सीधे संबंध स्थापित होने का भी हो सकता है। उदाहरणार्थ पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1980 के द्वारा केन्द्र ने राज्यों की वन भूमियों को अन्य प्रयोजनों के लिए अंतरित करने का राज्यों का अधिकार स्वयं में वेष्ठित कर लिया।

एक विशेषज्ञ अनुमान के अनुसार 2030 तक भारत का सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी. पी.) पांच गुना बढ़ जाने की उम्मीद है। तब देश की नगरीय आबादी 60 करोड़ हो सकती है जो संयुक्त राज्य अमेरिका की मौज़ूदा आबादी से दुगुनी होगी। केवल शहरों के लिए देश के सत्तर प्रतिशत नियोजन उपलब्ध होंगे। नगरों तथा महानगरों में सुलभ यातायात के लिए 7400 किलोमीटर लंबी मेट्रो तथा अन्य रेल सेवाओं की आवश्यकता होगी। (मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट 2010)। दरअसल शहरों की भूमिका, चुनौतियां, समस्याएं और तरक्की के नए आयाम बीसवीं सदी के सातवें दशक में लगभग झंझावात की तरह आए। इसी दशक में विकासशील देशों के लिए विकसित देशों से नगरीय समस्याओं को सुलझाने के लिए धन की आवाजाही शुरू हुई। इसी दशक के आसपास तरह तरह की नगर विकास संहिताएं केन्द्र और राज्य के विधायन के ज़रिए रची गईं। मसलन मध्यप्रदेश में नगरपालिक निगम अधिनियम 1956 में हुए संशोधन सहित नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम 1973 और गृह निर्माण मण्डल अधिनियम 1972 के विधायन के ज़रिए नगरीय विकास को व्यवस्था और दिशा देने की कोशिश की गई। यह अलग बात है कि उनमें जिस तरह के नागर समाज की परिकल्पना की गई, वैसा समाज न तो विकसित होना था और न ही वह हुआ। संभावित समाज रचना के कारकों अर्थात जनप्रतिनिधियों एवं नौकरशाहों ने अपनी उस भूमिका का पालन नहीं किया जो अन्यथा समय की मांग थी। सामाजिक विकास तयशुदा सरकारी मानकों पर कभी भी निर्भर नहीं होता। समाज की आवश्यकता ऐसे कई अज्ञात तथा संभावित तत्वों पर निर्भर होती है जिनका अकादमिक पूर्वानुमान लगाना

मुश्किल है। उनके उपस्थित हो जाने के बाद उनका परीक्षण भले कर लिया जाए। आगे चलकर 2005 में संयुक्त प्रगतिशील दल की सरकार ने जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन की स्थापना के ज़रिए दो हज़ार करोड़ रुपयों का बजट प्रावधान किया जिसे सात वर्षों में खर्च किया जाना था।

शहरों की मुख्य समस्याओं का उद्‌गम बढ़ती आबादी के अनुपात में रहायशी इलाकों के लिए भूमि का संकुचन है। तमाम विषमताओं तथा विवशताओं के चलते ग्रामीण आबादी में उतना घनत्व अभी भी नहीं है, भारत के शहर जिसका शिकार हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और बंगलुरु जैसे महानगरों में यह समस्या लाइलाज होने के कगार तक जा पहुंची है। इस वजह से रियल इस्टेट के धंधे में घोटालों का युग आया। जबरिया भूमि अधिग्रहण, झोपड़पट्टियों का क्रूर उजाड़, शहरी बेरोजगारी, न्यूनतम वेतन, अमानवीयकृत जीवनशैली और राक्षसी अहंकार के साथ बढ़ता प्रदूषण आदि नगरीय जीवन की कुछ कड़ियल सच्चाइयां हैं। इन कारणों से भारत समेत पूरे एशिया में नगरीय जीवन के चरित्र का कंटूर बहुत तेज़ी से बदल रहा है। नगर संभावित विकास और उसके आड़े आ रहे अवरोधों का युद्धस्थल बनते जा रहे हैं। तमाम तरह के आदर्श, स्वप्न, नवउदारीकरण, माओवाद, नई राजनीतिक पहचान, गांधीवादी समाजवाद, हिन्दू राष्ट्रवाद, पर्यावरणीय चिंताएं और इन सबका आपसी घालमेल शहरी जीवन में अपना स्पेस ढूंढ़ रहा है। यही वह स्थान है जहां पेयजल, विद्युत, आवास, स्वच्छ हवा, बाग बागीचे सहित अन्य सामाजिक उपयोगिता के स्थल, वैधानिक तथा स्थानीय कानूनों की रचना, उपभोक्तावाद, कारपोरेट बाज़ार, पब्लिक ट्रांसपोर्ट, ट्रैफिक में भीड़भाड़, लोक स्वास्थ्य, शहरों का फैलाव, प्रवजन और निकटस्थ ग्रामीण क्षेत्रों पर शहरी सभ्यता और संस्कृति का दबाव आदि महत्वपूर्ण हो रहे हैं।

राज्यों ने वैसे भी सर्वशिक्षा अभियान, एकीकृत शिशु विकास योजना और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन वगैरह की अनदेखी की है। उन सब अधिकार क्षेत्रों, जिनके लिए स्वायत्त संस्थाओं के पक्ष में संवैधानिक आज्ञप्तियां हैं, में राज्यों ने भारी भरकम विभाग भी खड़े किए हैं। उनमें मंत्री, सचिव, डायरेक्टर और अन्य कई स्तरों पर सरकारी मुलाजिमों की लंबी चौड़ी जमात लोककल्याणकारी योजनाओं के मद में आवंटित राशियों को वेतन एवं

भत्तों के रूप में राज्य सरकारें खर्च कर रही है। वित्तीय संसाधनों और अनिवार्य कृत्यों के रूप में स्वायत्त संस्थाओं को अधिकार मिल जाने के बाद सफेद हाथियों को लाल फीताशाही के जरिए अपनी काली करतूतों को अंजाम देने के युग की समाप्ति करनी होगी। राज्यों के सरकारी तंत्र फिलहाल आत्महत्या करने की मानसिकता में प्रतीत नहीं होते। संविधान सात्विक और तात्विक उपदेशों का चलता फिरता संग्रहालय है। वह पूर्वज वचन का संकलन है। पूर्वजों को इक्कीसवीं सदी के विश्व नागरिक जीवन और ग्रामीण समस्याओं की परिकल्पनाएं बहुत विस्तार में उपलब्ध नहीं रही होंगी। लोकतंत्र निखालिस देशज प्रकृति का कहां है ? यदि संविधान गोरी यूरोपीय अवधारणाओं पर आधारित पाठ है तो उसका आचरण भी तो संविधान के क्रियान्वयनकर्ताओं को उपलब्ध होता रहता है और न्यायालयों को भी। संविधान की व्याख्याओं के अमल करने के द्वन्द्व को लेकर प्रशासक और न्यायाधीश कई बार पश्चिम की समकालीन व्याख्याओं को भारतीय परिवेश में बूझने का काम आसानी से कर लेते हैं। नगरपालिकाओं के अवयवों अर्थात सदस्यों और पार्षदों को यह लगातार गुमान है कि वे अंततः छोटे-मोटे सांसद या विधायक समझे जा सकते हैं। संविधान के उर्वर लगते प्रावधानों का प्रजनन अपनी अर्थमयता में एक मिथक का सृजन करता है, यथार्थ का नहीं। आने वाली पीढ़ियां इससे ही दो चार होती रहेंगी।

वैश्विक अर्थव्यवस्था में शहर शक्तिशाली चरित्र अभिनेताओं की तरह भूमिका अदा करते हुए कभी कभी खलनायकी भी कर रहे हैं। उनमें भी महानगरों की भूमिका निर्णायक प्रकृति की होती जा रही है। शहरीकरण और वैश्वीकरण दोनों की समानांतर प्रक्रियाओं में परीक्षण के केन्द्र बने महानगर संविधान की ग्राम सुधार संबंधी तथाकथित अवधारणा से मुक्त हो रहे हैं। मसलन दिल्ली एक साथ महानगर कार्यपालिका क्षेत्र, प्रदेश का केन्द्र और देश की राजधानी के रूप में तिहरी भूमिका में है। वह एक तरह का राष्ट्र-राज्य है, केवल महानगर नहीं। नगरीय जीवन की आवश्यकताओं, क्रियाकलापों और विकास के मानकों की संयुक्त दृष्टि से वह बहुलनगरीय नगर है। भारतीय संविधान के 74वें संशोधन में व्यक्त उम्मीदों के बावजूद दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों का विकास एक अलग पैटर्न पर हो रहा है। वहां अंतर्राष्ट्रीय मानकों की महत्वाकांक्षाओं का स्थानीयकरण हुआ है। उन्हें देश के अन्य नगरों

से तुलनात्मक स्थिति में नहीं रखा जा सकता। ये नगर न्यूयार्क, लंदन, टोकियो और पेरिस वगैरह से अपनी तुलना करते हुए कृतकृत्य होना चाहते हैं। उनके लिए जयपुर, भोपाल, रायपुर या देहरादून आदि का अर्थ अपेक्षाकृत उन पिछड़ी राजधानियों से है जो विकास की अवधारणाओं को लेकर प्रयोगशील दिखने पर भी परंपराबिद्ध हैं। ऐसे महानगर विकास के पारंपरिक राष्ट्रीय मानकों पर चेतावनी बिखेरते नज़र आते हैं। उनकी लेकिन व्यावहारिक चिंता यही है कि संसदीय और प्रादेशिक विधायनों में देश के सभी नगरों के विकास के लिए स्वायत्तशासी नागर संस्थाओं को बराबर का क्षेत्राधिकार दिया गया है। ऐसा विधायन महानगरों के तेज़ गति से होते दैत्याकार विकास की संभावनाओं के आकाश को अपने क्षेत्राधिकार में समेट नहीं सकता। ठीक वही विधायन अपेक्षाकृत छोटे नगरों के लिए न केवल पर्याप्त समझा जा रहा है, बल्कि उसमें निकट भविष्य में राज्यों के विधानमंडल संशोधन की संभावना भी नहीं देख पा रहे हैं। वह वक्त आ गया है जब 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम पर पुनर्विचार किया जाए। यही वक्त है जब नगरों और महानगरों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा को पढ़ लेना भी आवश्यक है। ग्रामीण और नगरीय संस्थाओं के निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को संविधान के तहत विधायन करने की छूट नहीं दी गई है। उनका विकास मात्र अवलंबित संस्थाओं के रूप में किया गया है। यही अवधारणा उनके विनाश का भी कारण है। महानगरों के स्वशासी प्रशासन के सफल संचालन के लिए उन्हें कनिष्ठ विधायन का क्षेत्राधिकार दिया जाना समय की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय झुकाव भी इसी ओर है।

गांधी का आप्त वाक्य 'भारत की आत्मा गांवों में बसती है', का नकारात्मक उपयोग विकास को अवरुद्ध करने के लिए स्वाधीनता के बाद जीवित और सक्रिय रहा। कई तरह के प्रशासनिक प्रयोग भी हुए। ग्रामीण सहकारी संस्थाओं को बहुआयामी तथा समर्थ बनाने के उपक्रम भी केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर किए गए। धीरे-धीरे यूरोप और अमेरिका से आयातित पछुआ हवा ने भारतीय विचार फलक को प्रभावित बल्कि प्रदूषित करना शुरू किया। विशेषकर बंगलुरु तथा हैदराबाद जैसी राजधानियों में कई कारणों से सार्वजनिक उपक्रमों तथा तकनीकी के नए युग का शोध तथा शिक्षण संस्थानों के साथ प्रवेश हुआ। ऐसे तमाम संस्थानों को प्रचलित नियमों, व्यवस्थाओं तथा कठिनाइयों के चलते मोटे तौर पर नगरपालिक संस्थाओं के भौगोलिक

क्षेत्राधिकार के बाहर स्थापित किया गया। इसके बावजूद नगरपालिक संस्थाओं के क्षेत्राधिकार के अंदर निवास कर रहे लोगों पर ही ऐसी संस्थाओं का आर्थिक प्रक्षेपण हुआ। मोटे तौर पर ऐसा ही तर्क मुंबई के लिए भी गढ़ा जा सकता है और चेन्नई के लिए भी। कोलकाता एक प्रतिगामी साध्य है। वहां 1970 के दशक तक औद्योगिक प्रगति का क्षरण ही क्षरण हुआ। ऐसा कोलकाता में नगर या महानगरपालिका की संरचना के कारण नहीं बल्कि उन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुआ जो देश को बंगाल की देन है। वहां के कम्युनिस्ट शासन ने मोटे तौर पर आर्थिक उदारवाद को भी पश्चिमी आर्थिक साम्राज्यवाद के उत्पाद के रूप में ही देखा।

संविधान के भाग 9 तथा 9 (क) में पंचायत और नगरपालिक संस्थाओं को लेकर व्यापक संशोधन किया जाने का दावा किया गया है। अनुच्छेद 243 (झ) तथा 243 (म) के अनुसार पंचायत और नगरपालिक संस्थाओं की वित्तीय स्थिति के पुनर्विलोकन के लिए वित्त आयोग के गठन के प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 280 (3) (ग) के अनुसार वित्त आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर राज्य में नगरपालिकाओं के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करें। यह प्रावधान संविधान के भाग 12 में वर्णित है। अनुभव लेकिन बताता है कि इन प्रावधानों के अनुरूप सरकारें और वित्त आयोग आचरण नहीं कर रहे हैं। संविधान के साथ यही तो है कि वह अकादमिक उपदेशों का एक आध्यात्मिक संग्रहालय बनाया गया है। वह अपनी संततियों अर्थात केन्द्र और राज्य के अधिनियमों से बहुत कुछ अमल करने की अपेक्षा करता है। अमल लेकिन होता नहीं है क्योंकि अमल करने से राजनेताओं के पारस्परिक हितों का टकराव होता है। ऐसी स्थिति में संविधान एक पराश्रित और सेवानिवृत्त पिता की तरह संतानों से अपेक्षा नहीं करते हुए भी उम्मीदों को वाचाल बनाता रहता है। संविधान में अमूमन ऐसे प्रावधान नहीं हैं कि कार्यपालिका द्वारा उसकी हिदायतों के अनुरूप आचरण नहीं करने से वह उनके विलोप के कारण व्यवहार योग्य निर्देश जारी कर सकें।

उपरोक्त प्रावधान राज्य सरकार ने संविधान की सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत राज्य सूची के अन्तर्गत दिए गए अधिकारों के तहत हैं। लेकिन इसके

विपरीत भारतीय संसद ने संविधान के 74वें संशोधन विधेयक के ज़रिए संविधान में नगरपालिकाओं से संबंधित जोड़े गए भाग 9 क के अंतर्गत नगरपालिकाओं के क्षेत्राधिकार और क्रियाकलापों को संविधान की 12 वीं अनुसूची के अनुसार व्याख्यायित किया है जो निम्नलिखित अनुसार है : 1. नगरीय योजना, जिसके अन्तर्गत नगर योजना भी है। 2. भूमि उपयोग का विनियमन और भवनों का निर्माण। 3. आर्थिक और सामाजिक विकास योजना। 4. सड़कें और पुल। 5. घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जल प्रदाय। 6. लोक स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई और कूड़ा करकट प्रबन्ध। 7. अग्निशमन सेवाएं। 8. नगरीय वानिकी, पर्यावरण का संरक्षण और पारिस्थितिक आयामों की अभिवृद्धि। 9. समाज के दुर्बल वर्गों के, जिनके अन्तर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मंद व्यक्ति भी हैं, हितों की रक्षा। 10. गंदी-बस्ती सुधार और प्रान्नयन। 11. नगरीय निर्धनता उन्मूलन। 12. नगरीय सुख-सुविधाओं और सुविधाओं, जैसे पार्क, उद्यान, खेल के मैदानों की व्यवस्था। 13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौंदर्यपरक आयामों की अभिवृद्धि। 14. शव गाड़ना और कब्रिस्तान; शवदाह और शमशान और विद्युत शवदाह गृह। 15. कांजी हाउस; पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण। 16. जन्म-मरण सांख्यिकी, जिसके अन्तर्गत जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रेशन भी है। 17. सार्वजनिक सुख-सुविधाएं, जिनके अन्तर्गत सड़कों पर प्रकाश, पार्किंग स्थल, बस स्टाप और जन सुविधाएं भी हैं। 18. वधशालाओं और चर्मशोधशालाओं का विनियमन।

निर्वाचित पार्षदों की कर्तव्यहीनता, अधिनियमों की असमर्थता तथा नौकरशाही के अधिनियमित अनावश्यक हस्तक्षेप के प्राधिकार के चलते नगरीय संस्थाओं के आदेशात्मक और विवेकसम्मत उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए सिविल सोसायटी का मज़बूत हस्तक्षेप स्वायत्तशासी प्रशासन की एक आवश्यक परिणामधर्मी घटना है। कई नगरनिगम क्षेत्रों में वार्ड के मतदाताओं की समितियों ने भी ज़रूरी स्वायत्तशासी उत्तरदायित्वों को पूरा करने में अपना सहयोग तथा विरोध दोनों समय-समय पर समायोजित किया है। व्यवहार में वांछित नगरीय विधायन के अभाव में निर्वाचित पार्षदों द्वारा वह सब कुछ करना संभव नहीं होता, जिनकी पूर्ति के लिए इन संस्थाओं का गठन किया गया है। उस पर भी तुर्रा यह कि राज्यों के नगरपालिक अधिनियमों में नौकरशाहों को

निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के सामूहिक निर्णयों को कुंठित, स्थगित या बातिल करने के अनावश्यक और असाधारण विवेकाधिकार दिए गए हैं। आम तौर पर ऐसे विशेषाधिकारों का उपयोग राज्यों के सत्तारूढ़ तबके के लिए किया जाता है। ऐसे प्रावधान लोकतंत्र की विश्वसनीयता, अनुपालन तथा व्यवहार्यता के खिलाफ साजिशी चरित्र के होते हैं। मतदाताओं और नगरवासियों को अधिनियमों में व्यक्त कुटिलता का आभास नहीं होता। वे निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के मुकाबिल खड़े होकर व्यवस्था को कोसने लगते हैं। इस संघर्ष का अंत लोकतांत्रिक प्रतिनिधियों के प्रति सामूहिक अविश्वास में अधिकतर होता है।

ऐसा नहीं है कि जनप्रतिनिधि पूरी तौर पर दूध के धुले होते हैं, लेकिन अधिनियमों का ढांचा इस तरह है कि नौकरशाही की पकड़ और सख्त हो गई है। इससे संविधान में किए गए 73वें और 74वें संशोधन का कोई असरकारी जनतांत्रिक योगदान दिखाई नहीं पड़ता। महीनों की मशक्कत के बाद अन्ना हज़ारे को छोड़कर अरविन्द केजरीवाल और साथियों ने अंततः दिल्ली के उन प्रशासनिक विलोप-बिंदुओं पर लगातार प्रहार किया जिनके कारण आम जनता का जीवन दूभर हो रहा था। इस लगातार आंदोलन-प्रक्रिया के बाद आम आदमी पार्टी को सिविल सोसायटी के प्रतिरूप राजनीतिक संगठन के रूप में पहली बार सार्थक पहचान मिली। ऐसे नए राजनीतिक प्रयोग का एक अवलोकनीय बिन्दु यह भी है कि सिविल सोसायटी का नेतृत्व तथाकथित एलीट तथा कुलीन वर्ग के हाथों में होता है। वह पिछले वार्डों के विकास की आवाज़ तो बुलंद करता है, लेकिन गरीबी रेखा के आसपास के रहवासियों को नेतृत्व सक्षम नहीं बनाता। कुल मिलाकर नगरीय संस्थाओं संबंधी स्थानीय प्रतिरोध समाज के निचले स्तर से उठी हुई स्वतः स्फूर्त आवाज़ के बदले पिछलग्गू नारों में तब्दील होती रहती है।

केन्द्र में जवाहरलाल नेहरू की पुण्यतिथि के दिन 2004 में पंचायती राज मंत्रालय का गठन किया गया। इस मंत्रालय ने संविधान की आज्ञाओं और आग्रहों के मद्देनज़र पंचायतों की बहुआयामी संभावनाओं के लिए अध्ययन दल गठित किए तथा सेमिनार आदि आयोजित किए। मंत्रालय ने अपनी विस्तृत और वार्षिक रपटें भी प्रकाशित कीं। इन रपटों में केरल की स्वायत्त संस्थाओं के अधिकारों और कर्तव्यों को रोल मॉडल की तरह समझा गया। कहा गया कि

केन्द्र सरकार के कई निर्देशों और आदेशों तक का राज्यों ने पालन करना आवश्यक नहीं समझा। राज्यों ने तो वैसे भी सर्वशिक्षा अभियान, एकीकृत शिशु विकास योजना और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन वगैरह की अनदेखी की है। उन सब अधिकार क्षेत्रों, जिनके लिए स्वायत्त संस्थाओं के पक्ष में संवैधानिक आज्ञप्तियां हैं, राज्यों ने भारी भरकम विभाग भी खड़े किए हैं। उनमें मंत्री, सचिव, डायरेक्टर और अन्य कई स्तरों पर सरकारी मुलाजिमों की लंबी चौड़ी जमात लोककल्याणकारी योजनाओं के मद में आवंटित राशियों को वेतन एवं भत्तों के रूप में खर्च कर रही है। वित्तीय संसाधनों और अनिवार्य कृत्यों के रूप में स्वायत्त संस्थाओं को अधिकार मिल जाने के बाद सफेद हाथियों को लाल फीताशाही के जरिए अपनी काली करतूतों को अंजाम देने के युग की समाप्ति करनी होगी।

वजीरों और हुक्मरानों की मुट्ठी में गांव और नगर पंचायतें

लोकतंत्र और संविधान के रिश्ते समधियों जैसे हैं। एक का बेटा दूसरे की बेटी से ब्याह में खटपट का कारण है। संविधान बनाने देश के चुनिंदा जनप्रतिनिधि विचार सभा में बैठे। पहले ही खटपट हुई कि भविष्य का भारत यूरोपीय अवधारणाओं पर चलेगा या देशज अनुभवों की परंपरा पर। भारत में इंगलिस्तानी परंपराएं देशज अनुभवों पर हर समय भारी पड़ती हैं। मसलन घटिया अंगरेजी को व्याकरणसम्मत हिन्दी पर तरजीह मिलती है। धोती, कुरते, पाजामे, साड़ी वगैरह को पिछड़ा और देहाती समझा जाता है। अधनंगी पोशाकें, फटी हुई जींस और रंगबिरंगे अजीबोगरीब यूरोपीय परिधान सांस्कृतिक बैरोमीटर हैं। घर घर में बर्गर, पिज्जा, हैम्बरगर, पास्ता वगैरह भारतीय व्यंजनशाला के छप्पन भोग पर काबिज हैं। बहुत चाहा गांधी और चहेतों ने देश में पंचायती राज के आधार पर हुकूमत तंत्र चले। अंबेडकर अड़ गए और नेहरू भी अपने बहुत से सत्ताधारी समर्थकों के साथ। गांधी समर्थक सांसद दूध की मक्खी की तरह समझे गए। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना, श्री हरिविष्णु कामथ, सेठ गोविंददास, श्री लोकनाथ मिश्रा, काज़ी सैय्यद करीमुद्दीन, डॉ. पी.एन. देशमुख, श्री अरुणचंद्र गुहा, श्री टी. प्रकासम, श्री के. सन्थानम, श्री आर.एस. सिध्वा, पंडित ठाकुरदास भार्गव इतना ही हासिल कर पाए कि पंचायती राज व्यवस्था को संविधान के नीति निदेशक तत्वों में क्रमांक 40 पर जगह मिली। उसमें लिखा है 'ग्राम पंचायतों का संगठन-राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने

के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।' यही हाल शहरों के लिए नगरपालिक संस्थाओं का हुआ। निर्वाचित पंच और पार्षदों को स्वायत्त शासन और पंचायत मंत्री अपने अंगूठे तले मसलते रहे। चुने गए प्रतिनिधि भ्रम और हताशा में जीते रहे। मंत्री का अट्टहास लोकतंत्र में भैरव संगीत की तरह गूंजता है। नौकरशाह तबले या तानपूरे बजाकर संगत करते हैं।

राजीव गांधी ने जनतांत्रिक दबाव और भारी संसदीय बहुमत के कारण पंचायती राज और नगरपालिका संस्थाओं को नीति निदेशक तत्त्वों के परिच्छेद से उठाकर संवैधानिक हैसियत देने का साहसिक निर्णय किया। प्रधानमंत्री अश्वगति से काम करना चाहते थे। संसदीय कार्यव्यवहार हाथी की गति से चलता है। श्रेय उत्तराधिकारी प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहराव की सरकार को मिला। संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के जरिए पंचायत और नगरपालिक संस्थाओं को संविधानसम्मत दर्जा मिला। जीवन की गारंटी मिली कि पांच सालाना पुनर्जन्म लेने के लिए छह महीने से अधिक का दंभ नहीं भोगना पड़ेगा। ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियां जोड़ी गईं। उनमें स्वायत्त संस्थाओं के संवैधानिक अधिकारों का उल्लेख है। इस क्रांतिकारी कदम से पंचायत और नगरपालिक संथाओं और फिर सहकारी संस्थाओं की संवैधानिकता से लोकतंत्र के पैरों को मजबूती मिलती।

स्वायत्त संस्थाओं के लिए कानून बनाना राज्य सरकारों और विधानसभाओं के पास है। मंत्रियों और उनको फुसलाने बहलाने वाले वरिष्ठ नौकरशाह अरबों रुपयों के विकास कार्यक्रमों की राशि को अपनी मुट्ठी से ढीलना नहीं चाहते। अभिशाप है कि लोकतंत्र मंत्रियों और वरिष्ठ नौकरशाहों की सामंतवादी वहशी हरकतों का शिकार है। डंके की चोट पर कहा जा सकता है राज्य सरकारें स्वायत्त संस्थाओं को अधिकार देने के लिए अपने राजसी अहंकार और चौधराहट छिनने के भय का शिकार हैं। नगरपालिक संस्थाओं और पंचायतों प्रतिनिधियों की खुली बैठक में सोच-विचार कर लिए गए प्रस्ताव कलेक्टर या सचिव हस्ताक्षर की चिड़िया से एक क्षण में स्थगित, बाधित या निरस्त कर देता है। युवा आईएएस और मंत्रियों को अचानक मिल गए असाधारण अधिकार के अहंकार भारत की प्राचीन व्यवस्था के संवैधानिक

प्रतिनिधियों का मजाक उड़ाते हैं। चाहते हैं मंत्रियों और अफसरों के सरकारी दफ्तरों तो क्या उनके घरों की ड्योढियों में नाक रगड़ें।

जनता की बुनियादी समस्याओं की जिम्मेदारी स्वायत्त संस्थाओं पर है। गंदी बस्तियों में मोरियां बजबजा रही हैं। स्वायत्त शासन मंत्री एक नगर के विधायक भी हैं। वह नगर भयंकर गंदा है। आग लग जाए तो दमकल या तो है नहीं या है तो इतनी निरीह कि किसी भवन के राख हो जाने पर पानी छिड़कती रहे। स्कूलों की हालत पर तो गुनहगार मंत्रियों और अफसरों पर फौजदारी मुकदमा चलना चाहिए। करोड़ों बच्चों की शिक्षा मंत्री और अफसर बरबाद कर रहे हैं। दिल्ली में लेफ्टिनेंट गवर्नर और अरविंद केजरीवाल का झगड़ा सबसे बड़ा सबूत है। केजरीवाल ने हिम्मत की। सुप्रीम कोर्ट को दिल्ली सरकार के अनुरोध पर हालिया बड़े फैसले में लोकतंत्र की परिभाषा को प्याज के छिलकों की तरह छील छीलकर नौकरशाह शासकों को समझाना पड़ा। संविधान में स्वायत्त संस्थाओं का अलग योजना आयोग है। वह केन्द्र से आवंटित धन का बंटवारा लोकतांत्रिक आर्थिक वैज्ञानिक आधारों पर करेगा। राज्य सरकारें नगरपालिक और पंचायत अधिनियमों में इसे लागू नहीं कर रही हैं। लोकतंत्र को संविधान की मंशा और ऐलान के मुताबिक नहीं चलाया जाता। मंत्रियों और नौकरशाहों को वैभव महल भरभरा कर गिर जाने का डर है। संसद की मंशा को राज्य सरकारें अपने अधिकारों के तहत अपमानित या शिथिल कर रही हैं। गांवों में और शहरों में अननिगन समस्याएं हैं। सरकारों की तमाम योजनाएं इन संस्थाओं की उपेक्षा के कारण दम तोड़ती हैं।

चुंबक मंत्री चुंबक पर पार्षद और पंच लोहे के कण बने चिपकते हैं। गुड़ की डली नौकरशाह पर पार्षद और पंच मक्खियों की तरह-तरह भिनभिनाते रहें। रहा होगा ग्राम स्वराज भारत में और यूनान में भी। उससे गांधी प्रभावित हुए थे। सर चार्ल्स मेटकाफ बहुत पहले भारत आए थे। उन्होंने सत्ता के प्रबंधन और विवरण को भारत में देखा। फिर लौटकर अंगरेजी संसद में प्रशंसा की कि भारतीय ग्राम गणतंत्र अनोखा और अद्‌भुत है। जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप संविधान बनाने का दावा अब तो बार-बार एक गंभीर जिरह मांगता है। यूरोपीय अवधारणाएं भारतीय बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क में कुंडली मारकर बैठी थीं। उन्होंने अपनी पकड़ अब भी बनाए रखी है। कलेक्टर और सेक्रेटरी साहब हैं, मंत्री लोकतांत्रिक बादशाह और पार्षद और पंच गिड़गिड़ाती जनता के

हरकारे। सरकारों में हिम्मत नहीं जनसभाओं में अपनी नीयत के संबंध में चुनौती दें। अफसर और हुक्काम तैश में आकर आदेश करते हैं। हाई कोर्ट तक त्वरित गति से चलने वाले संवैधानिक यंत्र नहीं हैं। फैसले होते हैं। कभी गलत, कभी सही और यदि सही तो इतनी देर से कि निचली संस्थाओं का कचूमर ही निकल जाए। कभी-कभार जज संविधान की मंशा समझकर कौंधता हुआ फैसला दे तो अंधेरा चिरता है। दिल्ली सरकार के प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट का फैसला रोशनी की तरह है। फिर वही ढाक के तीन पात। राज्य सरकारें उसके पूरक सिद्धांतों की समझाइश में पंचायतें और नगरपालिका संस्थाओं के प्रतिनिधियों को जिबह करना बंद करें भी या नहीं ? यही यक्ष प्रश्न है।

Shri Kanak Tiwari
HIG 155
Padamnabhpur
Durg 491001
Chhatisgarh
Mob. 9131255864

❑❑❑

राजनीति में आध्यात्मिकीकरण के गांधी के लक्ष्य का एक आलोचनात्मक विश्लेषण

सुनिता मौर्य • अफरोज अहमद

महात्मा गांधी के राजनीतिक विचारों में नैतिकता, आचार-विचार और नेतृत्व के बीच अभिसरण का एक दुर्लभ क्षण था, जो उनके आध्यात्मिक विश्वासों से काफी प्रेरित था। यह अभिसरण एक दुर्लभ घटना थी। राजनीति के आध्यात्मिकीकरण की गांधी की अवधारणा ने सत्य (सत्य), अहिंसा (अहिंसा) और निस्वार्थ सेवा को राजनीतिक कार्रवाई में शामिल करने की कोशिश की। यह अध्ययन राजनीति के आध्यात्मिकीकरण के लिए गांधी के प्रस्ताव का गहन विश्लेषण प्रदान करता है। गांधी ने राजनीतिक सफलता के लिए आध्यात्मिक शुद्धता की आवश्यकता पर जोर दिया, साथ ही साधनों और लक्ष्यों के मिलन पर भी। दूसरी ओर, विश्लेषण उन बिंदुओं पर गौर करता है जो गांधी की तकनीक के खिलाफ हैं। इन तर्कों में समकालीन प्रशासन द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों के साथ-साथ उनकी कार्यप्रणाली से जुड़ा आदर्शवाद भी शामिल है। यह आलोचनात्मक परीक्षण आधुनिक सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों में गांधी के दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है, साथ ही उन प्रतिबंधों को भी रेखांकित करता है जिनका सामना वह कर रहा है। यह धर्म और राजनीति के बीच हमेशा मौजूद संबंधों के बारे में भी अंर्तदृष्टि प्रदान करता है।

खोज शब्द : *सविनय अवज्ञाएं साधनों और उद्देश्यों की एकता, मानवतावाद, सत्ता का विकेंद्रीकरण, भारतीय राष्ट्रवाद*

प्रस्तावना

1920-21 में महात्मा गांधी द्वारा भारत में असहयोग आंदोलन के संदेश के प्रसार के बाद, उड़ीसा में गांधीवादी विचारों का प्रवाह और

राष्ट्रवादियों द्वारा गांधीवादी रणनीति का अनुप्रयोग देखा गया। उत्कल दीपिका और आशा जैसे उड़िया समाचार पत्रों ने महात्मा गांधी के संदेश को स्पष्ट किया और उड़ीसा में कांग्रेस की राजनीति को पेश करने का प्रयास किया। 1921 और 1922 में महात्मा गांधी की महिमा और महानता का वर्णन करने वाली उड़िया में कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 20वीं सदी के दूसरे दशक में गांधीजी के साबरमती आश्रम के एक निवासी के रूप में, दासपल्ला के गोविंद मिश्र ने महात्मा गांधी का जीवन इतिहास उनके भारतीय राजनीति में प्रवेश तक लिखा था। उड़िया में इस पुस्तक (महात्मा गांधी का जीवन चरित) के बाद महात्मा पर अन्य लेख लिखे गए। पुरी के पद्म चरण पटनायक ने 1921 में महात्मा गांधी के जीवन को तेरह अध्यायों में लिखा था गांधी का स्वराज्य (महात्मा गांधी का स्वराज) 1921 में चिंतामणि आचार्य द्वारा लिखा गया था। उस गांधी महात्म्य एक आलोचनात्मक विश्लेषण कैलाश चंद्र दास पुस्तक में, उन्होंने उड़िया लोगों को महात्मा के संदेश और असहयोग की रणनीति को समझने की आवश्यकता के बारे में बताया था। यह परिचय और निष्कर्ष को छोड़कर पाँच अध्यायों में पूरा हुआ।

गांधी महात्म्य में महात्मा के 1921 तक के प्रारंभिक जीवन पर रोचक छंद हैं और इसका उद्देश्य ग्रामीण अशिक्षित उड़िया लोगों के समक्ष गांधीवादी विचारों को स्पष्ट करना था। महात्मा गांधी पर अभिजात्य दृष्टिकोण उड़िया के समाचार पत्रों में प्रस्तुत किया गया था, लेकिन जगबंधु ने एक सरल शैली अपनाई जिसके द्वारा ग्रामीण उड़िया दुनिया महात्मा गांधी और उनके संदेश को जानती थी। यह मोहन दास के जन्म और उनके प्रारंभिक जीवन से सरल भाषा में शुरू होता है। यह दक्षिण अफ्रीका में उनकी गतिविधियों का विवरण देता है। औपनिवेशिक प्राधिकरण के अनुवाद के आधार पर दक्षिण अफ्रीका में उनके दिनों से लेकर 1921 तक गांधी महात्म्य का सारांश नीचे प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्य

1. सामाजिक विषमताओं के निराकरण के लिये गांधी द्वारा अपनाये गये मार्ग का विवेचनात्मक अध्ययन करना।
2. राष्ट्र को स्वावलंबी एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिये गांधी द्वारा बताये गये उपायों का मूल्यांकन करना।

3. सुशासन की स्थापना एवं राजनीति में सुचिता लाने के लिये गांधी द्वारा किये गये प्रयासों का गहनता से अध्ययन करना।

गांधी द्वारा प्रस्तुत अवधारणा

महात्मा गाँधी एक जन नेता थे और उनकी मान्यताओं ने आने वाली पीढ़ियों को भी प्रभावित किया। जैसा कि यह माना जाता है कि सभ्यता की भावना का होना एक अच्छा विचार है। उनके मन में पश्चिमी सभ्यता और भारतीय सभ्यता के बीच का अंतर काफी स्पष्ट था। वह जीवन जीने की पश्चिमी विधा और नैतिकता की भावना के प्रबल आलोचक थे। उन्होंने यह कभी नहीं माना कि पश्चिम द्वारा वैज्ञानिक और तकनीकी विकास से उनकी सही मायने में प्रगति हुई है। गाँधी द्वारा अंग्रेजों और पश्चिमी भौतिकवाद के खिलाफ उनके लंबे राजनीतिक और दार्शनिक संघर्ष में इस्तेमाल किए गए अधिकांश शब्द और प्रतीक एक तरफ भारतीय परंपरा के प्रतीक थे और दूसरी तरफ आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के आलोचक थे। इन शब्दों और प्रतीकों के एक से अधिक अर्थ हैं। वे कई संदेश भी देते हैं और उनमें से सबसे महत्वपूर्ण है आधुनिकता की आलोचना। इन भारतीय शब्दों और प्रतीकों का उपयोग गाँधी द्वारा राष्ट्रवाद, औद्योगीकरण और पश्चिमी शिक्षा की तीन महत्वपूर्ण अवधारणाओं की आलोचना करने के लिए किया गया था, जो भारत की आधुनिकता का मूल आधार हैं। इससे यह पता चलता है कि गाँधी ने आधुनिक सभ्यता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, जिसे उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के रूप में निर्दिष्ट और वर्णित किया था। उन्होंने सक्रिय रूप से भारतीय शब्दों, प्रतीकों, अवधारणाओं, परंपराओं, मूल्यों और दर्शन के आधार पर उनका विरोध किया।

गाँधी का सभ्यता का विचार

गाँधी ने अपने विचारों और सभ्यता की अवधारणाओं, पश्चिमी सभ्यता की सकारात्मक और नकारात्मक विशेषताओं, आधुनिक सभ्यता और भारतीय और पश्चिमी सभ्यताओं के बीच तुलना के बारे में विशेष रूप से अपने भाषणों में बताया और 1909 में हिंद स्वराज में गुजराती भाषा में लंदन से दक्षिण अफ्रीका की वापसी यात्रा के दौरान लिखा। यह दक्षिण अफ्रीका में गाँधी द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक, इंडियन ओपिनियन के गुजराती संस्करण में उसी वर्ष दो

किस्तों में प्रकाशित हुआ। इसे 1910 में गुजराती में एक पुस्तिका के रूप में जारी किया गया जिसे ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा देशद्रोही सामग्री होने के आरोप में प्रतिबंधित कर दिया गया था। शाही अधिकारियों के इस कदम की परवाह न करते हुए, गाँधी ने बाद में हिंद स्वराज में व्यक्त विचारों को विकसित किया और उन्हें जीवन भर नए योगदानों से समृद्ध करते रहे। उनके विचार मुख्य रूप से घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रिया और कई सामाजिक सुधारों और राजनीतिक आंदोलनों को प्रोत्साहन देने के उनके प्रयास से निकले। उनके विचारों में एकरूपता विद्यमान थी और गाँधी के विचारों में यह एकरूपता एक नैतिक दृष्टिकोण जो खुद के लिए नहीं बल्कि अपने देशवासियों के लिए सक्रिय और रचनात्मक जीवन जीने की इच्छा से उत्पन्न हुई थी।

हिंद स्वराज भौतिक शक्ति पर आधारित पश्चिमी सभ्यता पर एक विस्तृत टिप्पणी थी। हिंद स्वराज में उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के हर पहलू पर हमला किया ताकि यह साबित किया जा सके कि यह कितना भयंकर और कितना हानिकारक था। इस पाठ में गाँधी ने आधुनिक सभ्यता के विकल्प के तौर पर कई गतिविधियों के बारे में बताया है जिसका पालन करके भारतीय इस विकल्प को वास्तविकता बना सकते हैं। गाँधी ने आधुनिक सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता को एक समान माना क्योंकि पश्चिम सभी प्रकार की आधुनिकता का उद्‌गम स्थल था। उन्होंने वास्तव में जिसकी आलोचना की, वह पश्चिमी सभ्यता का एक विशेष रूप था, जो प्रबुद्धता और औद्योगिक क्रांति के साथ उभरा गाँधी के अनुसार, आधुनिक पश्चिमी सभ्यता में लालच, आक्रामकता, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, युद्ध तकनीक, असमानता, शोषण, गरीबी, अपव्यय और विलासिता, शारीरिक सुख, अपरिग्रह व्यक्तिवाद और अश्लीलता, अनैतिकता, वैधता और व्यावसायिक शिक्षा, अलगाव इत्यादि जैसी कई नकारात्मक तथ्य शामिल हैं। गाँधी ने इन सबकी आलोचना की। आधुनिक मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक पहलुओं पर इन तथ्यों के बारे में विस्तार से जानने और उनके प्रभाव की व्याख्या करने से पहले गाँधी की पश्चिमी सभ्यता की समग्र आलोचना जो उनके व्यापक कार्यों में बिखरी हुई है, यह जानना जरूरी है कि गाँधी के भारतीय सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता के बारे में क्या विचार थे? गाँधी के अनुसार, सभ्यता आचरण की वह विधा हैं जो मनुष्य को कर्तव्य पथ की ओर

अग्रसर करती है। कर्तव्य का प्रदर्शन और नैतिकता का पालन परिवर्तनीय शब्द है। नैतिकता का पालन करना हमारे दिमाग और हमारे जुनून पर महारत हासिल करना है। ऐसा करते हुए ही हम खुद को जान सकते हैं।

पहले लोग खुली हवा में उतना ही काम करते थे जितना वे चाहते थे। अब कारखानों और खानों के रखरखाव के लिए हजारों श्रमिक एक साथ काम करते हैं। उनकी हालत जानवरों से भी बदतर है। वे करोड़पति लोगों की खातिर, सबसे खतरनाक व्यवसायों में, अपने जीवन के जोखिम पर काम करने के लिए बाध्य हैं। पहले लोगों को शारीरिक ताकत के बल पर गुलाम बनाया जाता था। अब वे पैसे के प्रलोभन और उन विलासिता की वस्तुओं के गुलाम बन गए हैं, जिन्हें पैसा खरीद सकता है। अब ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनके बारे में लोगों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था और डॉक्टरों की पूरी फौज उनके इलाज का पता लगाने में लगी हुई है, और इसलिए अस्पतालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। यह सभ्यता की परीक्षा है। पहले, संदेश भेजने के लिए विशेष दूतों की आवश्यकता होती थी और पत्र भेजने में बहुत खर्च होता था, आज, कोई भी अपने साथी को एक पैसा खर्च करके पत्र के माध्यम से गाली गलौज कर सकता है। और ये भी सच है, कि इसी कीमत पर कोई धन्यवाद और शुभकामनाएं भी भेज सकता है। पहले लोग घर में बनी रोटी और सब्जियों से दो या तीन बार भोजन करते थे। अब, उन्हें हर दो घंटे में कुछ खाने की आवश्यकता होती है क्योंकि अब उन्हें मुश्किल से ही आराम करने का समय मिल पाता है। यह सभ्यता न तो नैतिकता का ध्यान रखती है और न ही धर्म का। यह सभ्यता भौतिक सुख-सुविधाओं में वृद्धि करना चाहती हैं, और ऐसा करने में भी यह बुरी तरह से विफल हुई है। यह सभ्यता अधार्मिक है, और इसने यूरोप के लोगों पर ऐसी पकड़ बना ली है कि इसका पालन करने वाले आधे पागल प्रतीत होते हैं। यह सभ्यता ऐसी है कि बस धैर्य रखना है और यह स्वयं ही नष्ट हो जाएगा। मोहम्मद की शिक्षा के अनुसार इसे शैतानी सभ्यता माना जाएगा। हिंदू धर्म इसे काला युग कहता है।

गाँधी की बहुत प्रशंसा हुई और इसलिए भारतीय सभ्यता को भी उन्होंने बहुत गौरवान्वित किया। लेकिन, भारतीय सभ्यता की प्रशंसा करते हुए, गाँधी इस तथ्य से अनजान नहीं थे कि समसामयिक भारत वैसा नहीं था जैसा उन्होंने वर्णित किया था। वह भारतीय समाज के काले पक्ष जैसे बाल-विवाह, बाल विधवा, किशोर माता, सती प्रथा, विधवा के पुनर्विवाह की अमान्यता,

महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखना, कन्या शिशुहत्या, बहुपत्नी प्रथा, नियोग की प्रथा का अस्तित्व, जहाँ, लड़कियों से धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति करवाई जाती है, धर्म के नाम पर भेड़ और बकरियों को मारना, अस्पृश्यता इत्यादि के नाम पर समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों से अवगत थे। उन्होंने इन बुराईयों को स्पष्ट रूप से बुराई माना। उन्होंने घोषणा की कि प्राचीन सभ्यता के नाम पर कोई भी भारतीय सभ्यता में व्याप्त बुराइयों और कुप्रथाओं का पालन नहीं करें। उन्होंने इन कुप्रथाओं को दूर करने के लिए अतीत में किए गए प्रयासों को मान्यता दी और माना कि भविष्य में भी उन्हें दूर करने के लिए ऐसे प्रयास किए जाएंगे। उन्होंने स्वीकार किया कि अन्य सभ्यताओं की तरह भारतीय सभ्यता भी हर मायने में परिपूर्ण नहीं थी, लेकिन उनके अनुसार भारतीय सभ्यता में नैतिकता को बढ़ाने की प्रवृत्ति है, जबकि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता का प्रचार करती है। पश्चिमी सभ्यता ईश्वरविहीन है जबकि भारतीय सभ्यता ईश्वर में विश्वास पर आधारित है।

आधुनिक सभ्यता और भारत की स्वतंत्रता का नुकसान

गाँधी ने कहा कि भारतीयों ने अपनी सभ्यता से खुद को दूर कर लिया जो अनिवार्य रूप से आध्यात्मिक था और इसके बजाय, भौतिक समृद्धि की ओर बढ़ रहा था, जिस पर पश्चिमी सभ्यता आधारित थी और यही भारत की स्वतंत्रता को खोने का आंतरिक और मूलभूत कारण था। वह भारतीय राजाओं के उस दुलमुल रवैये की निंदा करते हैं जिसने अंग्रेजों को यहां अपनी सैन्य उपस्थिति बढ़ाने का अवसर दिया। वह हिंदुओं और भारत के मुसलमानों के बीच दुश्मनी का भी हवाला देते हैं जिससे भारतीयों ने उन परिस्थितियों का निर्माण किया जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी को ऐसे अवसर प्रदान किए जिसके कारण धीरे-धीरे कंपनी का भारत पर नियंत्रण होता गया। और गाँधी का निष्कर्ष है कि, इसलिए यह कहना ज्यादा सही है कि हमने भारत को अंग्रेजी को दे दिया, न कि भारत हारा।

गाँधी का दृढ़ मत था कि जब भारतीय अपनी सभ्यता की महानता का एहसास करेंगे और अपनी प्राचीन जड़ों तक जाएंगे तो वे अपनी गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंकने में सक्षम होंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि उनका मानना था कि यह भारतीय सभ्यता की कमजोरी का दौर था, जिस दौरान अंग्रेजों ने भारत को अपने नियंत्रण में ले लिया। गाँधी का मानना था कि अंग्रेजों ने आधुनिक

रेलवे, टेलीग्राफ, पश्चिमी शिक्षा, वकीलों और डॉक्टरों के पेशे आदि को भारतीयों को लाभ पहुँचाने के लिए नहीं बल्कि उन्हें (अंग्रेजों को) आगे बढ़ाने के लिए पेश किया था।

आधुनिकता के आलोचक के रूप में शिक्षा

भारत में आधुनिकता की शुरुआत के लिए बुनियादी शिक्षा यकीनन सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र था। यह औपनिवेशिक हुक्मरानों द्वारा डिजाइन किया गया था, इसके अलावा आमतौर पर भारतीय परंपरा से अलग होने के साथ, यह ग्रामीण इलाकों में लाखों लोगों की जरूरतों और समस्याओं से बेखबर था। गाँधी की बुनियादी शिक्षा योजना मुख्य रूप से ग्रामीण शिक्षा और हस्तशिल्प का एक तंत्र था जो शिक्षा का माध्यम था। कताई और बुनाई गाँधी की प्राथमिकता थी और इसलिए उनका पूरा शिक्षाशास्त्र और शैक्षिक दर्शन उनके जीवन के लिए खादी-आधारित दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ था। गाँधी शिक्षा की पश्चिमी व्यवस्था के घोर आलोचक थे। उन्होंने महसूस किया कि यह भारत की जरूरतों के लिए पूरी तरह से अनुपयुक्त और पश्चिमी मॉडल की एक बुरी नकल थी। उन्होंने आगे कहा कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली का माध्यम विदेशी भाषा होने के कारण हमारे स्कूलों और कॉलेजों के युवाओं की ऊर्जा का पूरा उपयोग नहीं हो पाता था और वे बस क्लर्क और कार्यालय के कामगार की फौज बनते जा रहे थे। उनका दृढ़ मत था कि इसने सारी मौलिकता का नाश कर दिया है, विभिन्न भारतीय भाषाओं को कमजोर कर दिया है और जनता को उच्च ज्ञान के लाभ से वंचित कर दिया है जो अन्यथा उनके साथ शिक्षा वर्गों के मिलन के माध्यम से सही रहता। इस शिक्षा प्रणाली ने शिक्षित भारत और आम जनता के बीच एक खाई पैदा की इसने मस्तिष्क को तेज किया। लेकिन धर्म पर आधारित शिक्षा और हस्तशिल्प प्रशिक्षण को दूर कर दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि इस प्रणाली ने कृषि प्रशिक्षण की सबसे बड़ी जरूरत को उपेक्षित कर दिया।

गाँधी ने शिक्षित भारतीयों के लिए काफी कठोर रूप में आवाज उठाई होती क्योंकि उन्होंने उनके शैक्षिक प्रशिक्षण और उनके मूल्यों को भुनाया था और उन्हें बताया था कि वे प्रचलन में शिक्षा प्रणाली के पीड़ित होने के कारण अपनी मातृभूमि के प्रति गद्दार थे। यह एक रोचक तथ्य है कि ब्रिटिश शासन के विरोध के बावजूद, अधिकांश राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश शासन को अस्वीकार

नहीं किया। उसी दौरान अधिकांश अन्य राष्ट्रवादियों ने शिक्षा की ब्रिटिश प्रणाली को सिरे से खारिज नहीं किया, क्योंकि वे इसे एक ऐसे साधन के रूप में देखते थे जिसके द्वारा भारत भौतिक रूप से उन्नत राष्ट्र बन सकता था। हालाँकि, गाँधी की अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत से ही अलग सोच थी। वह शिक्षा को स्वावलंबी बनाना चाहते थे, बच्चों के शरीर के साथ-साथ उनके दिमाग को भी प्रशिक्षित करना चाहते थे और विदेशी धागों और कपड़ों का पूर्ण बहिष्कार चाहते थे। इस प्रकार, बच्चे आत्मनिर्भर और स्वतंत्र हो जाएंगे।

ऐसे मौके आए जब गाँधी ने आधुनिक पश्चिमी सभ्यता पर टिप्पणी करते हुए उसे एक अच्छा विचार बताया। वे पूरी तरह से आधुनिक सभ्यता के खिलाफ नहीं थे, लेकिन पश्चिम में हो रही भौतिक प्रगति और आधुनिकता की अवधारणा में उन्हें संदेह था। उन्हें यह मालूम था कि आधुनिक सभ्यता में भी कुछ अच्छे तत्त्व थे, जैसे कि लोकतांत्रिक राजनीतिक दर्शन, जो भारत के लिए उपयोगी हो सकता था। हिंद स्वराज के अंग्रेजी संस्करण की प्रस्तावना में, उन्होंने अपने देशवासियों से भी आग्रह किया कि वे आधुनिक सभ्यता के ऐसे सकारात्मक पहलुओं को अपनाएं, जिससे अंग्रेजों को बाहर किया जा सके।

सामाजिक विषमताओं का निराकरण

टॉयनबी के अनुसार, 20वीं सदी के दो सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व जॉन लेनिन और महात्मा गांधी थे। गांधीजी के स्वभाव की जटिलता के कारण उनका विश्लेषण या व्याख्या करना बहुत मुश्किल है। ऐसा करने का कोई भी प्रयास एक बड़ी चुनौती होगी। एक आध्यात्मिक नेता और मुक्ति सेनानी के रूप में, गांधीजी एक राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक और राजनीतिक नेता भी थे, जिनकी अर्थशास्त्र और राजनीति के बारे में विशिष्ट मान्यताएँ थीं। एक ओर, वे एक आध्यात्मिक नेता और मुक्ति योद्धा थे। गांधीजी ने जो आदर्श बताए, वे लोगों के दिलों में गहराई से उतर गए। वे एक शानदार व्यक्ति थे।

एक ऐसा व्यक्ति जो मौजूदा स्थिति को बनाए रखने के बजाय, नए मानदंड और मानक स्थापित करने की पहल करेगा, वह व्यक्ति था जिसे वेबर ने भविष्य में देखने की कल्पना की थी। वेबर की करिश्माई नेताओं की सूची का एक महत्वपूर्ण हिस्सा ऐसे व्यक्तियों से बना है जो धार्मिक समूहों से जुड़े हैं।

इस संबंध में, हिटलर और ईसा मसीह के बीच के रिश्ते को समेटना संभव नहीं है। वेबर के अनुसार, करिश्माई व्यक्ति रहस्यवादी और भविष्यवक्ता होते हैं, जिनके कार्यों को किसी भी कारण से समझाया नहीं जा सकता। इसलिए, वेबर के मानदंडों के अनुसार, गांधीजी को करिश्माई के रूप में परिभाषित करना किसी के लिए भी संभव नहीं है। न ही वे कोई ऐसा व्यक्ति हैं जो पूरी तरह से नए बदलावों की शुरुआत करते हैं या जो व्यवस्था के विनाश के लिए जिम्मेदार हैं। यह दावा करने में सक्षम होना कि गांधीजी का लक्ष्य अतीत को उसकी संपूर्णता में वापस लाना है, स्थिति का अति सरलीकरण होगा। दूसरी ओर, वे परंपरा के महत्व पर काफी जोर देते रहे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि गांधीजी व्यवस्था को उसकी संपूर्णता में बनाए रखना चाहते थे, वे इसकी कमियों को भी खत्म करना चाहते थे। गांधीजी ने जिन रणनीतियों का इस्तेमाल किया, वे उनके करिश्मे का एक महत्वपूर्ण घटक थे, जैसा कि पहले कहा गया था। गांधीजी के करिश्मे और उनके करिश्मे की अनूठी अभिव्यक्ति के बारे में उचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए गांधीजी के जीवन दर्शन की स्पष्ट समझ होना आवश्यक है। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उस व्यक्तित्व का स्रोत है जिसे गांधीजी के कार्यों में देखा जा सकता है। अपने पूरे जीवन में, उन्हें महात्मा की उपाधि से सम्मानित किया गया, जो एक ऐसी उपाधि है जो उन लोगों को दी जाती है जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है और अस्तित्व के रहस्यों में महारत हासिल कर ली है। टॉयनबी ने उन्हें एक संत के रूप में संदर्भित किया है, और वे एक राजनेता हैं जो हिंदू धर्म के हैं। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में, उन्होंने एक नास्तिक से निम्नलिखित कथन कहा– 'ईश्वर के प्रति भक्ति मित्रता की भावना है जो आपको अपने भाई के दुख पर दुखी महसूस कराती है।' आप खुद को नास्तिक के रूप में पहचानने के लिए स्वतंत्र हैं। हालाँकि, जब तक आप अन्य लोगों के साथ संबंध बनाए रखते हैं, तब तक आप ईश्वर के और करीब होते जा रहे हैं। उनके समकालीनों द्वारा उन्हें समझने के लिए संघर्ष करने के बाद काफी समय तक, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व ने जीवनीकारों को चकित करना जारी रखा। गांधीजी के जीवनकाल के दौरान, ऐसे लोग थे जो बिना किसी सवाल के उनका अनुसरण करते थे, लेकिन काफी संख्या में ऐसे लोग भी थे जो उनकी मान्यताओं पर संदेह करते थे।

गांधी ने जिन शांतिपूर्ण रणनीतियों और आदर्शों की वकालत की, उनकी कुछ लोगों ने अव्यावहारिक, असंगत और विरोधाभासी होने के कारण

आलोचना की है। अहिंसा की अवधारणा जिसे उन्होंने प्रस्तावित किया है, उन लोगों द्वारा विवादित है जो इसकी नैतिकता और प्रभावशीलता पर सवाल उठाते हैं। गांधी को उपायों और परिणामों के बीच मौजूद जटिल संबंधों की पूरी समझ नहीं थी। परिणामों और मापों का सही तरीके से उपयोग करने के लिए, उन्हें संदर्भ में रखना महत्वपूर्ण है। गांधीवादी सिद्धांत के सबसे आवश्यक सिद्धांतों में से एक-एक शासक वर्ग स्थापित करने की क्षमता है जो न तो दमनकारी है और न ही हिंसक।

इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गांधीजी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के खिलाफ थे। समाज की अंतर्निहित निरंतरता, जैविक एकता और अपरिवर्तनीयता को उजागर करने के साधन के रूप में, उन्होंने अपने हिंद स्वराज में एक बीज और एक पेड़ की तुलना का उपयोग किया। गांधीजी की शिक्षाओं की कई तरह से व्याख्या की जा सकती है, जिनमें से एक यह है कि वे रैखिक प्रगति के विरोधी थे, जिसे ऐसी उन्नति के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें एक दृष्टिकोण दूसरे सोचने के तरीकों की कीमत पर आगे बढ़ता है। वे तथ्य-मूल्य द्वंद्व, परंपरा से आधुनिकता के विचलन और महत्वहीन राजनीतिक और सार्वजनिक गतिविधियों के भी विरोधी हैं। ऐसा इस तथ्य के कारण है कि गांधीजी का मानना है कि भौतिक वास्तविकता की जिम्मेदारियाँ आदर्शवादी अमूर्तता से अलग नहीं हैं।

यही कारण है कि उनका दृष्टिकोण नव-मार्क्सवाद की तरह निराशावादी नहीं है। नव-मार्क्सवादी सोच ने, बिना किसी संदेह के, वर्तमान औद्योगिक उत्तर-औद्योगिक समाज में मौजूद विरोधाभासों की एक व्यापक दार्शनिक जांच प्रदान की है। इन विरोधाभासों में मानवीय रचनात्मकता का ह्रास, पारस्परिक संबंधों का विघटन और शून्यवाद की ओर निरंतर प्रवृत्तियाँ शामिल हैं। फिर भी, ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बौद्धिकता उस निराशावाद पर विजयी होती है जो पहले प्रस्तुत किए गए विश्लेषण में सतह के नीचे निहित है, जो विकल्पों की बहुत ही तस्वीर को अस्पष्ट करता है। नव-मार्क्सवादी मानवतावाद का संवेदनशील चरित्र एक तर्क है जो इस घटना को समझा सकता है। दूसरे कारण के बारे में, यह इस तथ्य के कारण है कि नव-मार्क्सवादी दृष्टि पारंपरिक भेदों को पार करने में असमर्थ रही है। इसके अलावा, मूल्य विभाजन को एक असाध्य मुद्दे के रूप में देखते हुए, बुद्धिजीवियों ने ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की

ताकत से सावधान रहना शुरू कर दिया है और साबित कर दिया है कि मनुष्य की क्षमता अनंत है। इसके आलोक में, विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करने पर नव-मार्क्सवादी सिद्धांत कमजोर प्रतीत होता है।

निष्कर्ष

नैतिकता, आचार और शासन सभी राजनीति के आध्यात्मिकीकरण की गांधी की धारणा में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, जो एक आकर्षक ढांचा है जो सत्ता से प्रेरित राजनीति के पारंपरिक प्रतिमानों पर सवाल उठाता है। सत्य, अहिंसा और आत्म-अनुशासन की परिवर्तनकारी शक्ति पर उनका जोर उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है जो नैतिक नेतृत्व का अभ्यास करना चाहते हैं जो स्थायी है और निर्णय लेने वाला है जो समावेशी है। इस तथ्य के बावजूद कि गांधी के दृष्टिकोण की बहुत आदर्शवादी होने और वर्तमान राजनीतिक प्रणालियों की पेचीदगियों को ध्यान में न रखने के लिए आलोचना की गई है, हिंसा, असमानता और पर्यावरण की तबाही जैसे वैश्विक मुद्दों को संबोधित करने के लिए उनकी शिक्षाएँ अभी भी बहुत आवश्यक हैं। राजनीति में आध्यात्मिकीकरण के गांधी के लक्ष्य को पूरा करने के लिए समकालीन राजनीतिक प्रवचन और कार्रवाई में नैतिकता का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है, जो प्रेरणादायक और कठिन दोनों है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गनी.एच.ए. (1998) राजनीतिक दल और लोकतांत्रिक और नैतिक मूल्यों का पतन, रेडिकल ह्यूमनिस्ट, खंड, 62 संख्या, 2 मई, पृष्ठ 28।
2. गांधी, एम.के., यंग इंडिया, 3.4.1924 पृष्ठ 112।
3. पांडे उपासना (2010) उत्तर आधुनिकतावाद और गांधी, नई दिल्ली, रावत प्रकाशन, पृष्ठ 204।
4. लाल, विनय। (2013)। गांधी का धर्म राजनीति, आस्था और हेर्मेनेयुटिक्स। जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी एंड सोशल एंथ्रोपोलॉजी।
5. डोमिंगो, राफेल. (2021)। राजनीति के आध्यात्मिकीकरण की ओर। चर्च और राज्य का जर्नल.।
6. प्रभु, आर.के. और राव, यू. आर (कॉम्प. और संपादित) (1967) द माइंड ऑफ महात्मा गांधी, अहमदाबाद नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.पी.43.।

7. चौधरी रामानंद (2007) गांधीज़ व्यू ऑफ़ पॉलिटिक्स, गांधी मार्ग, खंड, 29, संख्या 2 जुलाई-सितंबर, पृष्ठ 216।
8. गांधी, एम.के., (1994) सत्य के साथ मेरे प्रयोग की कहानी, अहमदाबाद।
9. गांधी, मो.क., आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग-नवजीवन प्र. म. अहमदाबाद, 2001 गांधी, मो.क., आत्म संयम, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-1954।
10. गांधी, मो.क., विश्व शांति का अहिंसक मार्ग, नवजीवन प्र.म., अहमदाबाद, 1959।
11. गांधी, मो.क., मेरा धर्म, नवजीवन प्र.म. अहमदाबाद, 1958।
12. गांधी, मो.क., गांधी शिक्षा (भाग-1-3) सस्ता सा.म., नई दिल्ली, 1952।
13. गांधी, मो.क., दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह, नवजीवन प्र.म., 1928।
14. गांधी, मो.क., धर्मनीति, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1947।
15. गांधी, मो.क., गीता माता, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1950।
16. गांधी, मो.क., मेरा धर्म नवजीवन प्र.म. अहमदाबाद, 1958।

सुनिता मौर्य
शोधार्थी

अफरोज अहमद
सहायक प्रोफेसर

राज. विज्ञान विभाग
आरएनबी ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
(UGC- NAAC B++ GRADE)
email: sunitajatolia1982@gmail.com

❑❑❑

डिजिटल युग में अंबेडकर के सिद्धांत : ग्रामीण भारत में डिजिटल समावेशी समाज का निर्माण

• नेहा मीना

डिजिटलीकरण की दिशा में भारत की यात्रा ने विकास, शासन तथा समावेशन के नए अवसर पैदा किए हैं। हालाँकि, ग्रामीण समाज में सभी के पास डिजिटल संसाधनों तक समान पहुँच नहीं है। इससे एक असमानता पैदा होती है, जिसे डिजिटल डिवाइड के रूप में जाना जाता है। यह ग्रामीण समुदायों को डिजिटल तकनीक द्वारा प्रदान किए जाने वाले अवसरों का पूरा लाभ उठाने में असमर्थ बनाता है। भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता और सामाजिक न्याय के प्रणेता, डॉ. बी. आर. अंबेडकर के सिद्धांत-सामाजिक न्याय, समानता, सशक्तिकरण, डिजिटल युग में इस असमानता का समाधान करने के लिए एक शक्तिशाली ढाँचा प्रदान करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, प्रस्तुत शोधपत्र इस बात पर प्रकाश डालता है कि अंबेडकर के सिद्धांत ग्रामीण भारत में डिजिटल रूप से समावेशी समाज के निर्माण का मार्गदर्शन कैसे कर सकते हैं, जहाँ ग्रामीण समुदाय डिजिटल तकनीकी प्रगति से पूरी तरह लाभान्वित हो सकें। इस दृष्टिकोण से यह डिजिटल विभाजन का विश्लेषण करता है, डिजिटल समावेशन के लिए अंबेडकर के सिद्धांतों की प्रासंगिकता का अध्ययन करता है तथा डिजिटल समावेशी विकास को प्राप्त करने के लिए रणनीतियों का सुझाव देता है। निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि सच्चा डिजिटल समावेशन केवल एक डिवाइस या इंटरनेट तक पहुँच के बारे में नहीं है– यह एक ऐसे समाज निर्माण के बारे में है, जहाँ सभी व्यक्तियों को, उनकी भौगोलिक स्थिति या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि प्रतिबंधों के बिना, डिजिटल दुनिया में सार्थक और समान रूप से भाग लेना का अवसर मिले। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में अंबेडकर के आदर्श महत्वपूर्ण हैं।

***मूल शब्द :** अंबेडकर, डिजिटल समावेशन, ग्रामीण भारत, सामाजिक न्याय, समानता, डिजिटल विभाजन, सशक्तिकरण, प्रौद्योगिकी तक पहुंच, डिजिटल साक्षरता*

परिचय

भारत में डिजिटल तकनीक तेजी से बदलाव ला रही है। यह ऑनलाइन शिक्षा, ई-गवर्नेंस, टेलीमेडिसिन, डिजिटल भुगतान प्रणाली, आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में सेवाओं और जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए एक समाधान मंच प्रस्तुत करती है। लेकिन शहरी और ग्रामीण समुदायों के बीच डिजिटल विभाजन होने से इसका लाभ सबको समान रूप से नहीं मिल रहा है क्योंकि ग्रामीण आबादी, विशेष रूप से दलित, आदिवासी और महिलाएँ, डिजिटल बुनियादी ढांचे की अनुपस्थिति, सीमित डिजिटल साक्षरता के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक कारकों और भौगोलिक सीमाओं के कारण स्वयं को डिजिटल क्रांति से बाहर पाती हैं।[1]

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने समाज में सामाजिक न्याय, समानता और समावेशिता के आदर्शों को स्थापित करने के लिए संघर्ष किया।[2] जातिगत भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार के अनुभवों पर आधारित उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में जाने जाने वाले अंबेडकर एक महत्वपूर्ण समाज सुधारक भी थे जिन्होंने वंचितों, खासकर ग्रामीण भारत में रहने वाले लोगों के अधिकारों की पुरजोर वकालत की। उनके दार्शनिक विचारों ने स्वतंत्रता और समानता के साथ-साथ बंधुत्व को एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए आवश्यक मूलभूत तत्वों के रूप में रखा।[3] हालाँकि, अंबेडकर के विचार डिजिटल युग से पहले के है लेकिन वे आज के तकनीकी संदर्भ में भी बहुत प्रासंगिक हैं क्योंकि जाति एवं वर्ग की पृष्ठभूमि और लैंगिक पहचान के आधार पर लोगों के विभिन्न समूहों को अभी भी डिजिटल संसाधनों से लाभ उठाने में बाधाओं का सामना करना पड़ता है और अंबेडकर के विचारों का उद्देश्य इस सामाजिक जाति-विभाजन को मजबूत होने से रोकना है तथा उनके विचार डिजिटल युग में व्याप्त असमानता का समाधान करने के लिए एक शक्तिशाली आधार प्रदान करते हैं।

यह अध्ययन ग्रामीण भारत में डिजिटल असमानता की समस्याओं के समाधान के लिए डॉ. अंबेडकर के सिद्धांतों को आवश्यक मार्गदर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है। डिजिटल शासन नीतियों में अंबेडकर के सिद्धांतों को शामिल करने से हम ग्रामीण भारत में ऐसा डिजिटल समाज विकसित करने में सक्षम होंगे, जो न्याय, समावेशिता एवं लोकतांत्रिक संरचनाओं से दृढ़ता से जुड़ा होगा।

उद्देश्य

1. ग्रामीण भारत में डिजिटल डिवाइड का विश्लेषण करना,
2. डिजिटल समावेशन के लिए अंबेडकर के सिद्धांतों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना,
3. समावेशी डिजिटल विकास को प्राप्त करने के लिए रणनीतियों का सुझाव देना।

डिजिटल डिवाइड : एक आधुनिक असमानता

डिजिटल डिवाइड का आशय उन व्यक्तियों और समुदायों के बीच असमानता से है जिनके पास डिजिटल तकनीक तक पहुँच है और जिनके पास नहीं है। भारत में, यह विभाजन मुख्यतः शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच स्पष्ट देखा जा सकता है। नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन रिपोर्ट (जुलाई 2017, जून 2018) के अनुसार, भारत में जहां शहरी क्षेत्रों में कंप्यूटर की उपलब्धता और इंटरनेट तक पहुंच क्रमशः 23.4%, 42% थी, वही ग्रामीण क्षेत्रों में यह मात्र 4.4% व 14.9% ही देखी गई।

भारत		
	शहरी	ग्रामीण
कंप्यूटर की उपलब्धता	23.4%	4.4%
इंटरनेट तक पहुंच	42%	14.9%

स्रोतः Report_585_75th_round_Education_final_1507_0.pdf (mospi.gov.in)

इसके अतिरिक्त, ट्राई (TR-I) की रिपोर्ट 2023-24 के अनुसार, भारत के शहरी क्षेत्रों में टेली घनत्व और इंटरनेट सब्सक्राइबर ग्रामीण भारत की तुलना में बहुत अधिक है। ग्रामीण भारत में टेली घनत्व सिर्फ़ 59.19 है, जबकि शहरी इलाकों में यह 133.72 है तथा प्रति 100 लोगों पर इंटरनेट सब्सक्राइबर की संख्या ग्रामीण इलाकों में 44.16 है, जबकि शहरी इलाकों में यह 111.75 है।

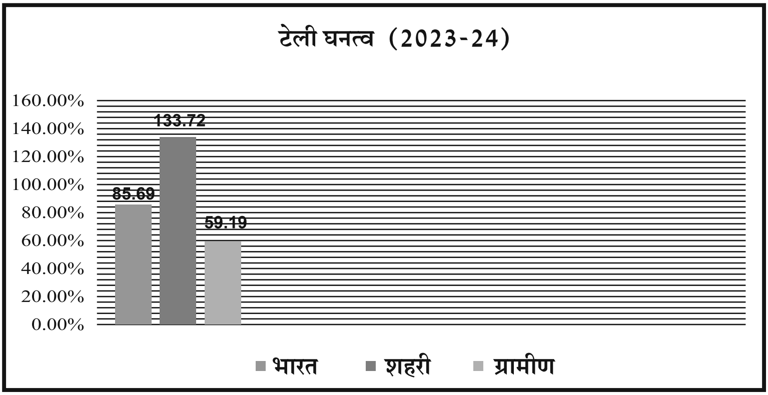

स्रोत: Report_14082024_0.pdf (trai.gov.in)

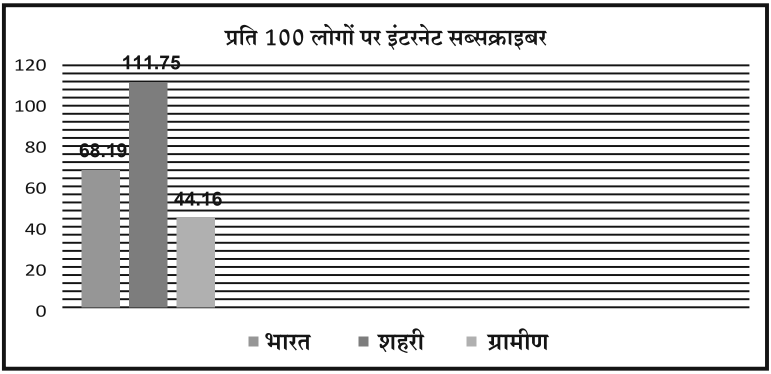

स्रोत: Report_14082024_0.pdf (trai.gov.in)

डिजिटल विभाजन भारत की ग्रामीण आबादी के एक बड़े हिस्से को प्रभावित करता है। इंटरनेट और डिजिटल संसाधनों तक पहुँच के बिना ग्रामीण समुदाय शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, आर्थिक गतिविधियों एवं शासन में अवसरों से

वंचित रह जाते हैं।[4] उदाहरण के लिए, ग्रामीण छात्रों के पास ऑनलाइन शैक्षिक संसाधनों और ई-लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म तक पहुँच की कमी हो सकती है, जो उनके शैक्षणिक विकास में बाधा बन सकती है।[5] किसान मौसम, फसल की उचित कीमतों और आधुनिक कृषि पद्धतियों के बारे में बहुमूल्य जानकारी से वंचित हो सकते हैं। इंटरनेट तक पहुँच के बिना ग्रामीण लोग सरकारी योजनाओं, सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों व नौकरी के अवसरों से वंचित रह सकते हैं। डिजिटल विभाजन को खत्म करने का सबसे बड़ा उपाय सामाजिक एवं आर्थिक विभाजन को समाप्त करना है।[6]

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की समानता और सामाजिक न्याय के लिए लड़ाई इन असमानताओं को दूर करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करती है। ग्रामीण समुदायों के उत्थान एवं समाज के सभी पहलुओं में उनकी समान भागीदारी सुनिश्चित करने के उनके सिद्धांत डिजिटल समावेशन को कैसे प्राप्त किया जाए, के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

अंबेडकर का सामाजिक समानता एवं न्याय का सिद्धांत तथा डिजिटल समावेशन के लिए इसकी प्रासंगिकता

डॉ. बी.आर. अंबेडकर का सामाजिक समावेशन का दृष्टिकोण दलित समुदाय के सदस्य के रूप में उनके अनुभवों से जुड़ा हुआ था, जहाँ उन्हें सामाजिक अन्याय और बहिष्कार का सामना करना पड़ा।[7] उन्होंने जाति व्यवस्था को एक ऐसी सामाजिक संरचना के रूप में पहचाना, जो असमानता पैदा करती है तथा लोगों को मौलिक मानवाधिकारों से वंचित करती है। यही कारण है कि अंबेडकर ने जाति व्यवस्था की हमेशा आलोचना की और सच्ची सामाजिक समानता पाने के लिए इसके उन्मूलन की मांग की। उनका मानना था कि अगर समाज जाति के बजाय व्यक्तियों की योग्यता के आधार पर आधारित हो तो एक न्यायपूर्ण एवं सभ्य समाज प्राप्त किया जा सकता है। अंबेडकर, विशेष रूप से निचली जातियों को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक भागीदारी के अवसरों से वंचित किए जाने से चिंतित थे। उनका मानना था कि इन समुदायों को अक्सर उन संसाधनों तक पहुंच से वंचित रखा जाता है, जो उनके विकास में उनकी मदद कर सकते हैं।

अंबेडकर का दृष्टिकोण सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र से आगे कानूनी

और संवैधानिक सुरक्षा उपायों तक विस्तृत था। भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार के रूप में, उन्होंने ऐसे प्रावधान सुनिश्चित किए जो वंचित समूहों के अधिकारों की रक्षा करेंगे। संविधान के अनुच्छेद 15 और 17 इस संबंध में प्रमुख हैं : अनुच्छेद 15 जाति, धर्म, नस्ल, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी तरह के भेदभाव को रोकता है और अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करता है। ये कानूनी सुरक्षा उपाय भारत में वंचित समूहों की गरिमा और अधिकारों की रक्षा के लिए अंबेडकर की प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं।

आर्थिक न्याय भी अंबेडकर की सामाजिक समावेशन की अवधारणा का केंद्र था।[8] आर्थिक असमानता सामाजिक बहिष्कार का एक प्रमुख कारण है, इसलिए उन्होंने आर्थिक रूप से वंचित लोगों के उत्थान के लिए भूमि सुधार, श्रम अधिकार और शैक्षिक अवसरों जैसी नीतियों को बढ़ावा देने के लिए काम किया।[9] सामाजिक समावेशन के एक साधन के रूप में आर्थिक सशक्तिकरण में उनका विश्वास आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि आर्थिक असमानताएँ समाज के बड़े वर्ग को मूलभूत सुविधाओं से वंचित रखती हैं।

इस प्रकार, उनका दृढ़ विश्वास था कि सच्ची समानता तभी प्राप्त की जा सकती है जब जाति, लिंग या आर्थिक स्थिति की चिंता किए बिना सभी व्यक्तियों को संसाधनों और अवसरों तक समान पहुँच प्राप्त हो। डिजिटल युग में, इन सिद्धांतों को मौलिक अधिकार के रूप में 'डिजिटल संसाधनों तक सभी की पहुँच' को शामिल करने के लिए विस्तारित किया जा सकता है। साथ ही, डिजिटल डिवाइड के संदर्भ में, अंबेडकर का समानता का सिद्धांत सरकार द्वारा ऐसी नीतियों और पहलों की आवश्यकता में परिवर्तित हो जाता है जो यह सुनिश्चित कर सके कि ग्रामीण समुदायों सहित सभी को डिजिटल संसाधनों तक समान पहुंच प्राप्त हो।[10] उनके सिद्धांत आर्थिक, सामाजिक या भौगोलिक बाधाओं को दूर करने की बात करते हैं जो ग्रामीण समूहों को डिजिटल तकनीक से लाभान्वित होने से रोकते हैं।

डिजिटल युग का उदय अंबेडकर के सामाजिक समावेश के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए अवसर और बाधाएँ दोनों प्रदान करता है। हालाँकि तकनीक से शिक्षा, सूचना तक पहुँच और आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सकता है, लेकिन डिजिटल संसाधन एवं डिजिटल कौशल की कमी

से उत्पन्न डिजिटल विभाजन पहले से मौजूद असमानताओं को बढ़ा भी सकता है।

आज डिजिटल मीडिया एक शक्तिशाली साधन बन गया है, जिसके माध्यम से लोग अपनी शिकायतें व्यक्त कर सकते हैं और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा सकते हैं। यह नागरिक मामलों में प्रतिनिधित्व और भागीदारी पर अंबेडकर के विचारों के अनुरूप है। लेकिन गलत सूचना का प्रसार और ऑनलाइन उत्पीड़न जैसी समस्याओं के लिए डिजिटल तकनीक के प्रभावों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। अंततः, सामाजिक समावेशन एवं तकनीक के न्यायसंगत उपयोग को बढ़ावा देने के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ग्रामीण लोग डिजिटल क्रांति से वंचित न रहें।

सशक्तिकरण के साधन के रूप में डिजिटल साक्षरता

शिक्षा के लिए अंबेडकर का आजीवन संघर्ष इस विश्वास पर आधारित था कि ज्ञान सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता की कुंजी है। शिक्षित बनो, आंदोलन करो, संगठित रहो का उनका प्रसिद्ध आह्वान शिक्षा को सशक्तिकरण के साधन के रूप में देखने के उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है। उनका मानना था कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच एक विशेषाधिकार नहीं बल्कि एक मौलिक अधिकार है जो सभी के लिए सुलभ होना चाहिए। वह समझते थे कि शिक्षा के बिना, ग्रामीण समूह उन्नति के अवसरों से वंचित रह जाएँगे। अंबेडकर ने शिक्षा को एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में महत्व दिया, जो व्यक्तियों को अज्ञानता और गरीबी से मुक्त होने में सक्षम बनाती है। अंबेडकर के लिए, शिक्षा व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण साधन थी।[11] इसलिए सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में शिक्षा को नियोजित करने का अंबेडकर का दृष्टिकोण आज विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि यह शिक्षा तक समान पहुँच की आवश्यकता और समानता, न्याय व आलोचनात्मक सोच के सिद्धांतों को बढ़ावा देने वाले पाठ्यक्रम के महत्व को रेखांकित करता है। शिक्षा न केवल ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में काम करती है, बल्कि सशक्तिकरण तथा सामाजिक गतिशीलता के लिए उत्प्रेरक के रूप में भी काम करती है।[12] सभी के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण समुदाय के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुँच के

महत्व पर उनका बल, शिक्षा की परिवर्तनकारी क्षमता में उनके दृढ़ विश्वास को दर्शाता है।

इसी तरह, डिजिटल युग में, डिजिटल साक्षरता यह सुनिश्चित करने की कुंजी है कि ग्रामीण समुदाय डिजिटल दुनिया में सक्रिय रूप से शामिल हो सकें। डिजिटल साक्षरता में न केवल प्रौद्योगिकी का उपयोग करने की क्षमता निहित है, बल्कि डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र को समझने के लिए आवश्यक कौशल भी शामिल हैं। इससे यह समझ आती है कि ऑनलाइन संसाधनों तक कैसे पहुँचा जाए, डिजिटल उपकरणों का उपयोग करके प्रभावी ढंग से संवाद कैसे किया जाए और व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक विकास के लिए इंटरनेट का उपयोग कैसे किया जाए।[13] ग्रामीण भारत में, जहाँ अधिकांश लोग डिजिटल तकनीकों से परिचित नहीं होते हैं, वहाँ डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम आवश्यक हैं। ये कार्यक्रम ग्रामीण लोगों को सशक्त बना सकते हैं, जिससे डिजिटल अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी को बढ़ावा मिलेगा।

डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए, शिक्षा पर अंबेडकर के विचारों को सरकारी योजनाओं के माध्यम से लागू किया जा सकता है। 2017 में प्रारंभ किया गया प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (पीएमजीदिशा) इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जिसका लक्ष्य छह करोड़ ग्रामीण परिवारों को डिजिटल रूप से साक्षर बनाना है, जिससे वे इंटरनेट पर जानकारी खोजने, सरकारी सेवाओं तक पहुँचने, इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन करने आदि के लिए कंप्यूटर एवं अन्य डिजिटल डिवाइस (जैसे स्मार्टफोन, टैबलेट) का उपयोग कर सकें।[14] हालाँकि, इस पहल को और अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है, जिसमें डिजिटल सुरक्षा, ऑनलाइन वित्तीय लेनदेन और ई-गवर्नेंस जैसे क्षेत्र शामिल हों।

डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देकर ग्रामीण समुदाय आवश्यक सेवाओं तक पहुँचने, ऑनलाइन सीखने में संलग्न होने तथा ई-कॉमर्स, कृषि व डिजिटल उद्यमिता के माध्यम से आर्थिक अवसरों का लाभ उठाने के लिए आवश्यक कौशल विकसित कर सकते हैं। डिजिटल साक्षरता व्यक्तियों को लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने के लिए भी सशक्त बनाती है, क्योंकि आज अधिकांश सरकारी सेवाएँ और मतदान तंत्र डिजिटल हो रहे हैं।

ग्रामीण भारत में डिजिटल समावेशन प्राप्त करने में चुनौतियाँ

ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रॉडबैंड की सुविधा राष्ट्रीय औसत से कम है क्योंकि प्रायः वहाँ की तकनीकी अवसंरचना पुरानी या अविकसित होती है। ट्राई (2023) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में केवल 34% ग्रामीण परिवारों के पास विश्वसनीय इंटरनेट तक पहुंच है। यह कमी लोगों को डिजिटल सेवाओं का उपयोग करने से रोकती है।

हालाँकि भारत में मोबाइल डेटा सस्ता है, लेकिन कंप्यूटर या स्मार्टफोन की अपेक्षाकृत अधिक कीमत के कारण बहुत से लोग इसे खरीद नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त, मोबाइल स्वामित्व एवं इंटरनेट उपयोग में लैंगिक अंतर भी असमानताओं को बढ़ाता है। जीएसएमए (GSMA) की मोबाईल जेन्डर गैप रिपोर्ट 2022 में पाया गया कि भारत में मोबाइल स्वामित्व में 14% तथा मोबाइल इंटरनेट उपयोग में 41% का लैंगिक अंतर है।

डिजिटल साक्षरता डिजिटल उपकरणों और ऑनलाइन सेवाओं के उचित उपयोग के लिए आवश्यक है, लेकिन भारत की समग्र डिजिटल साक्षरता 38% है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह केवल 25% है। सही प्रशिक्षण के बिना संसाधन सम्पन्न लोग भी तकनीक का पूर्ण उपयोग करने में असमर्थ होते हैं, इसलिए शिक्षित व्यक्ति भी ऑनलाइन धोखाधड़ी का शिकार हो जाते हैं तथा उनका प्रतिशत गांवों में अधिक है।

नीतिगत कमियों और कार्यान्वयन की समस्याओं के कारण कई सरकारी योजनाएँ कार्यान्वयन के चरण में विफल हो जाती हैं। पारदर्शिता का अभाव, भ्रष्टाचार और अपर्याप्त अनुवर्ती कार्रवाई अक्सर उन्हें अप्रभावी बना देती है।

अंबेडकर के सिद्धांतों पर आधारित समावेशी डिजिटल विकास प्राप्त करने की रणनीतियाँ

समुदाय आधारित डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम–डिजिटल प्रशिक्षण को समुदाय स्तर पर डिज़ाइन और विकसित किया जाना चाहिए। स्थानीय नेताओं, स्कूली शिक्षकों और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा संचालित कार्यक्रम ग्रामीण लोगों को डिजिटल संसाधनों से जोड़ने के लिए एक मंच के रूप में काम कर सकते है।

डिजिटल उपकरणों पर सब्सिडी–प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान जैसी सरकारी योजनाओं में डिजिटल उपकरणों की खरीद पर सब्सिडी को भी शामिल किया जाना चाहिए। सार्वजनिक-निजी भागीदारी भी डिजिटल संसाधनों की लागत को कम कर सकती है और सभी तक इसकी समान पहुंच को सुनिश्चित कर सकती है।

समावेशी नीति–अंबेडकर के समावेशी नीति के विचार सकारात्मक कार्रवाई को बढ़ावा देते हैं। डिजिटल नीति में, इसका आशय है ब्रॉडबैंड रोलआउट में कम सेवा वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता देना, तकनीकी पहलों में समावेशन नीति को अनिवार्य करना और गरीबी उन्मूलन रणनीतियों में डिजिटल समावेशन को एकीकृत करना हो सकता है।

स्थानीय भाषा की सामग्री–डिजिटल संसाधनों की प्रासंगिकता और पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सामग्री क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध होनी चाहिए। शैक्षिक वीडियो, मोबाइल ऐप और सरकारी प्लेटफॉर्म पर भाषायी विविधता को ध्यान में रखा जाए। यह भाषा की बाधा को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण है जो ग्रामीण लोगों को डिजिटल लाभ से वंचित करती है।

ग्रामीण स्कूलों में आईसीटी–ग्रामीण स्कूलों को स्मार्ट कक्षाओं, डिजिटल लाइब्रेरी और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म से जोड़कर शिक्षा का लोकतंत्रीकरण किया जा सकता है। शिक्षण में इन उपकरणों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए शिक्षकों को डिजिटल प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

डिजिटल उपकरणों और सस्ती इंटरनेट सेवाओं तक पहुँच–अधिकांश ग्रामीण परिवार स्मार्टफोन, लैपटॉप, यहाँ तक कि इंटरनेट सेवाएं भी खरीदने में असमर्थ होते हैं। सरकारी योजनाओं के माध्यम से सब्सिडी वाले उपकरण, किफायती डेटा प्लान और अन्य डिजिटल संसाधन प्रदान करके इस बाधा को कम किया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त, कंप्यूटर और इंटरनेट एक्सेस सुविधाओं वाले सामुदायिक केंद्र डिजिटल शिक्षा तथा कौशल निर्माण केंद्र के रूप में काम कर सकते हैं।

निष्कर्ष

सामाजिक समानता, न्याय और सशक्तिकरण के प्रणेता के रूप में डॉ. बी.आर. अंबेडकर की चिरस्थायी विरासत ग्रामीण डिजिटल असमानता के

समकालीन मुद्दे को हल करने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है। अंबेडकर द्वारा प्रस्तुत सामाजिक समानता के दृष्टिकोण में जाति-आधारित और सामाजिक-आर्थिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करना और साथ ही शैक्षिक अवसरों और न्यायसंगत संस्थागत प्रणालियों के माध्यम से वंचित समूहों को सशक्त बनाना शामिल था। डिजिटल युग के संदर्भ में, ये सिद्धांत नए महत्व लेते हैं। डिजिटल विभाजन को समाप्त करने के लिए व्यापक कार्रवाई की आवश्यकता है जो संरचनात्मक विकास से शुरू होकर डिजिटल कौशल सिखाने, न्यायसंगत डिजिटल पहुँच बनाने और समावेशी नीतियाँ बनाने तक विस्तारित हो।

ग्रामीण भारत में उसी गति और दृढ़ संकल्प के साथ डिजिटल समावेशन को लागू करना चाहिए जो अंबेडकर सामाजिक न्याय के लिए चाहते थे। डिजिटल उपकरणों के साथ इंटरनेट की सुविधा केवल एक शुरुआती बिंदु के रूप में कार्य करती है। सशक्तिकरण तब होता है जब ग्रामीण आबादी शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सरकारी सेवाओं और आर्थिक अवसरों तक पहुँचने के लिए इन उपकरणों का उपयोग करने में सक्षम होती है। अंबेडकर के आदर्शों को डिजिटल नीतियों और कार्यक्रमों में एकीकृत करके, भारत एक ऐसे भविष्य की ओर बढ़ सकता है, जहाँ सभी भारतीय, चाहे वे कहीं भी रहते हों, डिजिटल क्रांति से लाभान्वित हो सकें। इस प्रकार अंबेडकर के सिद्धांत एक डिजिटल समावेशी समाज के निर्माण के लिए नैतिक आदर्श और रणनीतिक मार्गदर्शक दोनों के रूप में कार्य करते हैं।

संदर्भ सूची

1. Raghavendra, R.H. (2016). Dr B.R. Ambedkar’s Ideas on Social Justice in Indian Society. Contemporary Voice of Dalit, 8(1), 24-29. https://doi.org/10.1177/2455328X16628771
2. Pandey, Atul, (2021). Relevance of Ambedkar’s vision on social inclusion in contemporary time. http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.5007383
3. Stroud, Scott R. (2017). The Influence of John Dewey and James Tufts’ Ethics on Ambedkar’s Quest for Social Justice, Relevance of Dr. Ambedkar: Today and Tomorrow, Pradeep Aglave (ed.), Nagpur University Press, 32-54.
4. Nguyen, A. (2022). Digital Inclusion. In: Liamputtong, P. (eds) Handbook of Social Inclusion. Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-030-89594-5_14

5. Lone, Z. A. (2017). Technology in Education in Rural India. International Journal of Engineering Science and Computing, 7(7).

6. Reisdorf, Bianca & Rhinesmith, Colin (2020). Digital Inclusion as a Core Component of Social Inclusion. Social Inclusion, 8(2), pp. 132–137.

7. Sharma, R.K. (2025). Dr. B.R. Ambedkar's Contribution to Social Justice: A Review Study. International Journal of Innovations in Science, Engineering and Management, 4(1), 227–233. DOI: https://doi.org/10.69968/2025v4i1227-233.

8. Lincoln, Dr K. Abraham (2024). Dr. B.R. AMBEDKAR'S APPROACH TO LABOUR MANAGEMENT AND SOCIAL EQUITY. Journal of Engineering and Technology Management, 2226-2236.

9. Ara, Zinat (2023). Dr. B. R. Ambedkar's Vision of India: A Path Towards Social Equality and Justice. Contemporary Social Sciences, 32(2), 165-172.

10. Meka, James Stephen (2023). Digital India - Ambedkar's Vision and Modi's Provision. Journal of Engineering Sciences, 14(6).

11. Simatwal, Dr. Narendra (2024). Contribution of Dr. Ambedkar's Philosophy in Present India: A Critical Study. International Journal of Contemporary Research in Multidisciplinary, 3(2), 131-137.

12. Behera, D. K., & Paul, S. (2025). Voice Matters for Viksit Bharat: Dr. Ambedkar's Visions Realized Through NEP 2020. The Oriental Anthropologist. https://doi.org/10.1177/0972558X251317483

13. Mendez-Dominguez, P., Carbonero Munoz, D, Raya Diez, E. and Castillo De Mesa, J. (2023). Digital inclusion for social inclusion. Case study on digital literacy. Frontiers in Communication, 8. https://doi.org/10.3389/fcomm.2023.1191995

14. https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1811370

15. Sharma, Ravi S. and Mokthar, Intan Azura (2008). Bridging the Digital Divide in Asia- Challenges and Solutions. International Journal of Technology, Knowledge & Society, 1(3).

16. Nagrale, H., Zare, B. & Wakade, A. (2023). B. R. Ambedkar as Visionary Educator. The Palgrave Handbook of Educational Thinkers, Palgrave Macmillan. https://doi.org/10.1007/978-3-030-81037-5_218-1

17. Agrawal, S. (2021). Education and Its Influence on the Nation-Building Process: A Reflection on Ambedkar's Views in Colonial India. Contemporary Voice of Dalit, 13(2), 132-140. https://doi.org/10.1177/2455328X211008451

18. Mervyn, K., Simon, A., & Allen, D. K. (2014). Digital inclusion and social inclusion: a tale of two cities. Information, Communication & Society, 17(9), 1086–1104. https://doi.org/10.1080/1369118X.2013.877952
19. Report_585_75th_round_Education_final_1507_0.pdf (mospi.gov.in)
20. Report_14082024_0.pdf (trai.gov.in)
21. gsma: Growth in smartphone ownership, mobile internet user stalled in 2021: GSMA - The Economic Times
22. http://www.ideaforindia.inO

नेहा मीना

शोधार्थी

राजनीति विज्ञान विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221005

पत्राचार पता- वार्ड नं. 13, 421, मीना कॉलोनी, गोविंदगढ़, तहसील– चौमूं, जिला–जयपुर, राजस्थान, पिन कोड-303712

ई-मेल : nehameena18@gmail.com

मोबाइल नंबर : 9971883996

❑❑❑

मनु स्मृति के महिला-संबंधी प्रावधानों की वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में प्रासंगिकता—एक अध्ययन

• डॉ. अलका सैनी

आधुनिक महिलाएं समाज की रूढ़ियों को तोड़कर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रही हैं। अतीत में भारतीय समाज मनुस्मृति जैसे ग्रंथों से प्रभावित था, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बढ़ावा देते हुए महिलाओं पर सामाजिक बंधन थोपता था। कुछ विद्वान उस समय को महिलाओं के लिए बंधनकाल और वर्तमान को उनके लिए स्वर्णकाल मानते हैं। आज महिलाएं शिक्षा, पेशा, जीवन साथी और जीवन शैली चुनने के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र हैं, लेकिन समाज में उनके प्रति अपराध और समस्याएं अब भी गंभीर चिंता का विषय हैं। यह लेख मनुस्मृति के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति, शक्ति, सामाजिक समस्याओं और अधिकारों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में मुख्यतः द्वितीयक और गुणात्मक डेटा का उपयोग किया गया है, जिसे ऐतिहासिक सामग्री विश्लेषण पद्धति के माध्यम से एकत्रित किया गया है। मनुस्मृति के स्त्री संबंधी श्लोकों और प्राचीन समाज की ऐतिहासिक व्याख्याओं को आधार बनाकर यह समझने का प्रयास किया गया है कि महर्षि मनु का उद्देश्य महिलाओं के प्रति क्या था। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि मनुस्मृति में स्त्री-पुरुषों की भिन्न क्षमताओं और सामाजिक व्यावहारिकता के आधार पर संतुलन की कोशिश की गई है। हालांकि, इसके सभी प्रावधान आधुनिक समय में पूरी

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2025

तरह प्रासंगिक नहीं हैं। फिर भी, महिलाओं की कई मौजूदा समस्याओं के समाधान मनुस्मृति में निष्पक्ष और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर ढूंढे जा सकते हैं।

कुंजी शब्द : *मनुस्मृति, पितृसत्ता, संरक्षण, स्वतंत्र, महिला, हिन्दू*

प्रस्तावना :

भारत में महिलाओं की प्राचीन काल में स्थिति को दर्शाने के लिए मनुसंहिता/मनुस्मृति को उद्‌धृत किया जाता है जिसके विभिन्न श्लोकों के अर्थ के आधार पर यह दर्शाने की कोशिश होती है कि ''मनु के ग्रंथ में स्त्रियों को मिथ्या, तुच्छ और बेकार प्राणी बताकर स्त्रियों को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं दी गई है तथा उन्हें पुरुषों के अधीन रहना पड़ता था।''13 महिलाओं के लिए, आज के समय को बेहतर करने कि दिशा में विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ सत्तासीन सरकारों नें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह भारत के साथ-साथ लगभग पूरे विश्व में महिलाओं की सामाजिक और कानूनी स्थिति में निरंतर सुधार हुआ है। ''इसके परिणामस्वरूप आज की महिला सशक्त है और उन क्षेत्रों में भी अपना दमखम दिखा रही है जो क्षेत्र कभी विशुद्ध रूप से पुरुषों के लिए आरक्षित माने जाते थे जैसे सैनिक का कार्य, भारी वाहन चालक का कार्य, पायलट का कार्य, अन्तरिक्ष यात्रा का कार्य आदि।''5 ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि आज हम भारतीय महिलाओं के इतिहास में एक महान क्रांति के दौर में हैं। भारत में संविधान ने शुरू से ही महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की आवाज़ संसद, अदालतों और सड़कों पर तेजी से सुनी जा रही है। जबकि पश्चिम में महिलाओं को वोट देने के अधिकार जैसे अपने कुछ बुनियादी अधिकारों को पाने के लिए एक सदी से अधिक समय तक संघर्ष करना पड़ा था।''11 ''इस तरह आज की बालिग महिला अपने लिए मनवांछित शिक्षा का क्षेत्र, कार्य का क्षेत्र, जीवन साथी, जीवन जीने का तरीका आदि चुनने के लिए कानूनी तौर पर एकदम स्वतंत्र है।''[1] मगर कानूनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के बाद भी आज के समाचार-पत्र महिलाओं से सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं और अपराधों से भरे रहते हैं जो आभास कराते हैं कि आज की महिला के सामाजिक जीवन एवं उनसे जुड़ी समस्याओं पर एक गहन चिंतन की आवश्यकता है।

आज के समय में कच्ची उम्र के प्रेम के फलस्वरूप लड़कियां अनचाहे गर्भ जैसी समस्या झेल रही हैं। ''पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होकर, आजाद ख्यालात की मदहोशी में बिना विवाह बंधन के पुरुष के साथ लीव इन रिलेशनशिप में रहने का चलन बढ़ा है तो उसके परिणाम भी महिलाओं के लिए ही भयावह साबित हो रहे हैं।''[1] अधिकतर लीव इन वाले पुरुष अपनी लीव इन पार्टनर महिला से विवाह करते ही नहीं और जब महिला विवाह के लिए दबाव बनाती है तो हिंसा की शिकार होती है और कई बार तो पुरुष द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है। आज के समाज में विवाहोत्तर संबंधो के मामले बहुतायत में हो रहे हैं। ऐसे मामलों की संख्या बढ़ रही है जिनमें विवाहित महिलाएं अपनी स्वतन्त्रता को आधार बनाकर अपने पति और बच्चों को छोड़कर अपने प्रेमी संग जिंदगी बिताने का निर्णय ले रही हैं मगर उनमें से अधिकतर मामलों में प्रेमी द्वारा बाद में महिला को त्याग दिया जाता है या फिर उसकी हत्या कर दी जाती है। चूंकि ऐसी महिला अपने साहसिक निर्णय के कारण पहिले ही अपने निकटतम रिश्तेदारों से दूर हो चुकी होती है, ऐसे में उनके विरुद्ध अपराध करना आसान हो जाता है। इतना ही नहीं कुछ महिलाएं अपने पुरुष मित्रों के साथ मिलकर हनी ट्रेप का कार्य कर रही हैं। तो ऑनलाइन ठगी जैसे अपराधों के क्षेत्र में भी महिलाएं अपना नाम कमाने में लगी हैं। आज यूट्यूब, फेसबुक आदि जैसे सोशल मीडिया मंचों पर महिलाओं द्वारा धन कमाने के लिए अश्लील कन्टेंट उपलब्ध कराना सामान्य सी बात होने लगी है। आजकल सड़क पर झगड़ों की वीडियो वायरल होती रहती हैं जिनमें महिलाएं बिना किसी संकोच या लज्जा के ऐसी भद्दी भद्दी गालियाँ देती हुई दिखती हैं जो पहिले केवल पुरुष ही आपसी लड़ाई-झगड़ों में सुनी जाती थी। ऐसी घटनाओं से समाज में महिलाओं के प्रति सम्मान का स्तर गिरा है।

यह सर्वविदित है कि समाज में महिलाओं की अहम् भूमिका होती है, क्योंकि वे मानव जाति के भविष्य का निर्माण करती हैं। एक महिला अपने बालक की प्रथम शिक्षिका होती है। मनुजी ने मानव समाज में महिलाओं की भागीदारी की महत्ता को खुले मन से स्वीकार किया है मगर महिलाओं की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाने की अनुशंसा भी की है। ''इस तरह बहुत से विद्वानों का मानना है कि प्राचीन भारत में महिलाओं को

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2025

जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त था मगर, कुछ अन्य विद्वान इसके विपरीत विचार रखते हैं।''[3] ऐसे में एक बार फिर से मनुस्मृति को पढ़ने की जरूरत है ताकि उसमें लिखे श्लोकों और उनके अर्थों को आज की इन सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में जांचा परखा जा सके। इस लेख में हम मनुसंहिता में दर्शाई गई महिलाओं की स्थिति की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करना चाहेंगे।

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण : आचार्य 'मनु' द्वारा बनाये गये सामाजिक नियमों को बताने वाली पुस्तक 'मनुस्मृति' कहलाती है। मनुसंहिता को मनुस्मृति या मानवधर्म शास्त्र भी कहा जाता है। मनुसंहिता में 2,685 श्लोक हैं जो 12 अध्यायों में विभाजित हैं। ''वेंडी डोनिगर के अनुसार, मनुस्मृति 'विश्वकोशीय दायरे की एक रूपरेखा' के रूप में हिंदूओं में प्रचलित विभिन्न संस्थाओं यथा परिवार, विवाह, कानून और न्याय, शिक्षा, महिलाओं की स्थिति, सामाजिक स्तरीकरण, धार्मिक प्रथाओं आदि को दुनिया के सामने उजागर करती है और जीवन जीने का एक तरीका प्रकट करती है।'' 12 मनुस्मृति का निर्माण हिन्दू संस्कृति की चरम प्रगति का सूचक माना जाता है। हिंदू धर्म के विकास के लिए 'मनु' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेकिन 'मनु' कौन थे? उनकी जन्मतिथि, जन्मस्थान आज भी रहस्य है। ''मिथकों के अनुसार, पहले पुरुष को आचार्य मनु के रूप में जाना गया था जिनकी पत्नी का नाम सतरूपा था। कालांतर में मनु और सतरूपा की संतानें मनुष्य कहलायीं।''[4] ''वर्तमान नेपाली सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएँ और रीति-रिवाज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुनस्मृति से ही प्रभावित हैं।''13 श्रुति और स्मृति को मोटे तौर पर पर्यायवाची शब्द माना गया है।''14 हिंदू संस्कृति में, 'श्रुति' वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यक और उपनिषदों को संदर्भित करता है, जबकि 'स्मृति' शब्द षड्वेदांग, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि को संदर्भित करता है। स्मृति के चार प्रमुख भाग और विषय ग्रंथ माने जाते हैं। पहला भाग 'आचरण', दूसरा भाग 'व्यवहार', तीसरा भाग 'प्रायश्चित' और चौथा भाग 'कर्म' से सम्बन्धित है। ''स्मृति का उल्लेख मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, उशनस, हारीत, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद और भृगु के निर्माता के रूप में किया है जाता है।''14 ''रामास्वामी के अनुसार, धर्म-सूत्रों और धर्म शास्त्रों या स्मृतियों का कालक्रम अभी भी एक

अनसुलझा प्रश्न है।''15 ''हिंदू धर्मग्रंथों में वेदों के बाद मनुस्मृति का विशेष महत्व दर्शाया गया है और ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन हिंदू सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से इसी पाठ पर आधारित थी।''11

राधाकृष्णन ने मनुस्मृति को महाभारत और पुराणों के समकक्ष पुस्तक माना जिसके श्लोकों की व्याख्याएं कानून और धर्म के बीच एक पुल के रूप में करती हैं। उन्होंने मनुस्मृति की व्याख्या करते हुए कहा कि यह मूलतः एक धर्मग्रंथ और नैतिक नियमों का समूह है।''8 ''इसी प्रकार, गैरोला ने मुनस्मृति को एक वयस्क विद्वान का परिचय देने वाली पुस्तक माना है और कहा कि मनुस्मृति के विषय की चर्चा में वैदिक पद्धति और दार्शनिक विचारधारा का समावेश है।''14 ''कौंडिननायन ने मनुस्मृति को मनु द्वारा रचित कार्य न मानकर इसको भृगु ऋषि या उनके शिष्यों द्वारा संकलित एक कृति के रूप मानने का विचार रखा।''10 ''वैदिक, महाकाव्य, जैन और बौद्ध काल के दौरान महिलाओं की गौरवशाली स्थिति में धर्मशास्त्र, मनुस्मृति के बाद काफी गिरावट आई। मनु के सामाजिक कानूनों का संकलन, भारतीय समाज पर ब्राह्मणवादी नियंत्रण, सामाजिक जाति व्यवस्था की कठोर बाधाएं, और आर्यों और गैर-आर्यों के बीच विवाह संबंध आदि सभी कारक महिलाओं की स्थिति में गिरावट के लिए जिम्मेदार थे।''6 ''मनुस्मृति समाज के अस्तित्व के सभी पहलुओं को प्रतिबिंबित करती है लेकिन इसमें बताए गए बहुत से नियम वर्तमान समय के अनुसार बदले हुए समाज के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते हैं मगर इसके महत्व को पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता, क्योंकि हिंदू समाज को इसके सिद्धांतों के बिना समझना बेहद मुश्किल है।''9

अध्ययन का उद्देश्य एवं विधि : यह पेपर मनु स्मृति की व्याख्या के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति, शक्ति, कर्तव्य और अधिकार का विश्लेषण करने पर केंद्रित है। यह शोध गुणात्मक शोध दृष्टिकोण द्वारा निर्देशित है। इस अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों डेटा का उपयोग किया गया है। द्वितीयक डेटा ऐतिहासिक सामग्री विश्लेषण विधियों द्वारा एकत्र किया गया है जो विभिन्न पुस्तकों, विभिन्न शोध पत्रों, लेखों, पत्रिकाओं, वेबसाइटों आदि से प्राप्त किया गया है। प्राथमिक डेटा मुख्य रूप से विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित मनु स्मृति नामक मूल पुस्तकों से एकत्र किया गया है। एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए सामग्री विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया

गया है। अतः इस अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है। पिछली पीढ़ी के लेखकों और वक्ताओं के बीच नस्लवादी और नारीवादी चर्चाओं और बहसों में मनु स्मृति का उपयोग करने की प्रवृत्ति भी रही है हालांकि नई पीढ़ी में ऐसे ग्रंथों के अध्ययन और उन पर बहस की संख्या घटती दिख रही है। इस अध्ययन में मनु संहिता में नारी के सन्दर्भ को जोड़कर बनाये गये एवं वर्णित नियमों का अध्ययन कर नारी से संबंधित श्लोकों को चर्चा का विषय बनाया गया है।

मनुस्मृति में महिलाओं पर प्रमुख चर्चाए एवं उनकी व्याख्याः

1. स्त्री अर्थात माता को सर्वोच्च स्थान

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणांशतं पिता।

सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्येते।। (2-145)

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तु वर्षशतैरपि।। (2-227)''7

शब्दार्थ–एक आचार्य दस उपाध्यायों से बढ़कर है और एक पिता सौ आचार्यों से बढ़कर है जबकि एक माता एक हजार पिताओं से भी बढ़कर है। सौ वर्षों के भीतर भी कोई पुत्र उस कष्ट का बदला नहीं चुका सकता जो उसके माता-पिता ने उसके पालन-पोषण के लिए उठाया है।

व्याख्या– मनुस्मृति में माता का स्थान पिता और आचार्य से भी ऊंचा माना गया है। माता को इतना उच्च स्थान इसलिए दिया गया है क्योंकि वही अगली पीढ़ी को संसार में लाने में सक्षम होती है। संतान का पालन-पोषण माता-पिता दोनों का दायित्व है जिसे वे विभिन्न कष्टों को सहन करके पूर्ण करते हैं। अतः संतान को चाहिये कि जीवन भर अपने माता-पिता के प्रति अनुगृहीत का भाव रखे, उनका सम्मान करें और यथोचित ध्यान रखें। वर्तमान में संतानों द्वारा माता-पिता के तिरस्कार किए जाने की घटनाएँ निरंतर बढ़ रही हैं। बहुत से माता-पिता घरों में अलग-थलग हैं तो बहुत से बुजुर्ग माता-पिता वृद्धाश्रम में रहने को मजबूर हैं। अतः मनुस्मृति का यह श्लोक सार्वकालिक प्रभावी होने के कारण आज के युवाओं के लिए भी पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। इससे प्रेरणा लेकर आज के लोग समाज में माता-पिता के लिए समुचित मान-सम्मान सुनिश्चित कर सकते हैं।

2. **स्त्रियों में स्वाभाविक आकर्षण**

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।

अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।। (2-213)

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।

प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम्।। (2-214)''7

शब्दार्थ–यह स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वो पुरुषों पर दोष लगा देती हैं। इसलिए बुद्धिमान स्त्रियों से सदा सावधान रहते हैं।.संसार में पुरुष पण्डित हो या मूर्ख, उसको काम व क्रोध के वश कुमार्ग पर ले जाने में स्त्रियाँ बड़ी समर्थ होती हैं।

व्याख्या– स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति मध्य आकर्षित होना प्रकृतिजन्य हैं। यदि पुरुष सावधान नहीं है तो वो हनी ट्रेप जैसी ठगी का शिकार हो सकता है। स्त्री किसी पुरुष को एक बार ऐसे ट्रेप में फंसाने के बाद उससे ब्लैकमेलिंग द्वारा दूसरे गलत कार्य करा सकती है। आजकल, हनी ट्रेप के माध्यम से जासूसी कराना, महिलाओं के माध्यम से पुरुष को अश्लील वीडियो कॉल द्वारा ठगी का शिकार बनाना, सोशल मीडिया पर महिला की फेंक आईडी बनाकर ठगी करना आदि घटनाएँ सिद्ध करती हैं पुरुष महिलाओं की और आकर्षित होकर अपना धन तो गंवा ही रहें है, साथ ही अपना सम्मान भी खो रहे हैं। एक सच्चरित्र पुरुष अपनी पत्नी के अलावा अन्य सभी महिलाओं से समुचित दूरी बनाए रखता है। जिससे संभ्रांत महिलाओं के बीच उसका का आदर बढ़ता है और दुष्ट महिलाओं को उसका अहित करने का मौका ही नहीं मिल पता है।

3. **वधू मूल्य की पूर्णतः अस्वीकृति**

नकन्यायाः पिताविद्वाङ्गृहीयाच्छुल्कमण्वपि।

गृहंश्छुल्कमंहिलोभेनस्यान्नरोऽपत्यविक्रयी।। (3-51)''7

शब्दार्थ– विद्वान पिता, कन्यादान में, कुछ भी उसके बदले में मूल्य न ले। यदि लोभवश कुछ ले लेता है तो वह संतान बेचने वाला है।

व्याख्या– एक पिता को अपनी पुत्री का विवाह बिना किसी लालच के एक सुयोग्य वर के साथ ही करना चाहिये। पुत्री के कन्यादान के बदले में धन

या कोई लाभ की इच्छा करने वाला पिता कभी भी समाज में सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार मनु स्मृति द्वारा समाज में वधू मूल्य को अस्वीकार करने तथा बेटी की सामाजिक सुरक्षा करने का प्रावधान किया गया है। वर्तमान समय में लड़कियों की तस्करी और खरीद-फरोख्त एक बड़ी सामाजिक समस्या है। जो पुरुष विभिन्न कमियों या कारणों से शादी नहीं कर पाते, वे पैसे देकर भी अपने लिए पत्नी की व्यवस्था करने के लिए उत्सुक रहते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए गरीब परिवार के माता-पिता, रिश्तेदार आदि पैसों के लालच में उस व्यक्ति की उम्र और शारीरिक, मानसिक या अन्य कमियों को नजरंदाज कर देते हैं और उससे अपनी बेटी की शादी करने के लिए राजी हो जाते हैं। ऐसे में वह महिला जीवन भर समझौते वाला जीवन जीने को मजबूर हो जाती है। अतः इस श्लोक के माध्यम से समाज को प्रेरित कर बेटी की सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

4. पारिवारिक पुरुषों द्वारा स्त्रियों का सम्मान आवश्यक

पितृभिर्भ्रातृभिश्चौताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।। (3-55)
यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवतः।
यत्रैतस्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। (3-56)
शोचान्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलं।
न शोचान्ति तु यत्रैतावर्धंते तद् हि सर्वदा।। (3-57)
जामयोयानिगेहानीशपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानिक्र्त्याहतानीवविनश्यन्तिसमन्नतः।। (3-58)''7

शब्दार्थ–पिता, भाई, पति और देवर द्वारा स्त्रियों का सत्कार करना चाहिए और आभूषण आदि से उनको विभूषित करना चाहिए। इससे बड़ा शुभ फल होता है। जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार,पूजन किया जाता है, उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं। जहां सत्कार,सम्मान नहीं किया जाता वहाँ सभी धर्म कर्म निष्फल होते हैं। जिस कुल में स्त्रियाँ शोक में रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही बिगड़ जाता है और जहां प्रसन्न रहती हैं, वह सदा बढ़ता ही जाता है। जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वह उनके शाप से नष्ट हो जाता है जैसे विष आदि के मारण से हो जाता है।

व्याख्या–स्त्रियों की मूल प्रकृति में प्रेम,त्याग, समर्पण,लालन-पालन, देखभाल, परिश्रम आदि गुण शामिल होते हैं। उन्हें सिर्फ मान-सम्मान की आकांक्षा होती है। अतः मानव समाज में, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर नारियों की उनके प्राकृतिक गुणों के साथ, सम्पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये पुरुषों द्वारा नारी का समुचित मान-सम्मान होना ही चाहिये। जिस परिवार में स्त्री चिंतित, शोकग्रस्त और असंतुष्ट रहेगी, वह परिवार नारी के मूल गुणों का पूरा उपयोग करने से वंचित रह जायेगा और अंततः उसकी समृद्धि, प्रगति और सामाजिक सम्मान नष्ट होने लगेगा। इस प्रकार, मनु स्मृति महिलाओं के पक्ष में सामाजिक नियंत्रण के एक तंत्र की भूमिका निभाती है। इससे समाज में एक प्रकार का डर पैदा होता है जो पुरुषों को महिलाओं के प्रति सम्मानजनक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है।

5. पति-पत्नी की पारस्परिक संतुष्टि आवश्यक

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। (3-60)''7

शब्दार्थ–जिस कुल में पत्नी अपने पति से और पति अपनी पत्नी से संतुष्ट रहते हैं, उस कुल का कल्याण अवश्य ही होता है।

व्याख्या–स्त्री और पुरुष के अपने-अपने नैसर्गिक गुण होते हैं जो उनके परस्पर मिलने पर ही सम्पूर्ण होते हैं। अतः पति और पत्नी एक दूसरे के पूरक होते हैं और दोनों मिलकर ही एक सामाजिक इकाई का निर्माण करते हैं। अर्थात विवाह के बाद पति-पत्नी का अलग-अलग अस्तित्व न रहकर वे एक यूनिट हो जाते हैं। और ऐसा केवल पति-पत्नी के बीच आपसी घनिष्ठता, सहयोग और पारस्परिक संतुष्टि से ही सम्भव हो सकता है। इसके लिये पति-पत्नी दोनों को एक दूसरे के मनोभावों, आवश्यकताओं और इच्छाओं समझना और उनका सम्मान करना चाहिए। जिस समाज के परिवारों में पति-पत्नी के मध्य समुचित तालमेल और पूर्ण विश्वास होता है, वह समाज निरंतर प्रगति करते हुए अपना कल्याण सुनिश्चित करता है। जिन परिवारों में पति-पत्नी की आपसी समझ और तालमेल नहीं होता वे एक-दूसरे पर शंका करने लगते हैं और परस्पर चरित्र-हनन व दोषारोपण के द्वारा समाज में अपनी और अपने परिवार की छवि धूमिल करने लगते हैं। ऐसे

लोग न्यायालय में कुछ सच्ची तो कुछ मिथ्या आरोपों के साथ कानूनी लड़ाई में अपना धन भी गंवाते हैं। और सबसे बड़ा नुकसान उनके जीवन के उन स्वर्णिम वर्षों का होता है जिसे उन्होंने इस लड़ाई-झगडे में नष्ट कर दिया होता है जबकि उक्त समय उनके जीवन के आनंद के लिये सर्वोत्तम समय हो सकता था। मनुस्मृति के इस एक श्लोक से आज के समाज में टूटते परिवार और बढ़ते हुए तलाक, लिव इन रिलेशन, विवाहोत्तर सम्बन्धों आदि के मामलों पर प्रभावी रोक लग सकती है, बशर्ते कि सभी स्त्री-पुरुष इसके भाव को गहराई से समझे और अपने व्यवहार में लायें।

6. दैनिक जीवन में महिला प्रथम

सुवासिनीः कुमारिश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन्।। (3-114)''7

शब्दार्थ– नवविवाहिता, कन्या, रोगी और गर्भवती, इनको अतिथि से पहिले ही बिना विचार किए भोजन करा देना चाहिए।

व्याख्या– अतिथि को भोजन कराने के लिए सामान्यतः कई औपचारिकताओं का पालन किया जाता है। ऐसे में घर में मौजूद उन महिलाओं को जिनके लिए समय से भोजन करना शारीरिक तौर पर आवश्यक है, पहिले ही भोजन करा देने का प्रावधान मनुस्मृति में किया गया है। अर्थात सामाजिक स्तर पर सबसे पहिले नवविवाहिता बेटियों और बहुओं, गर्भवती महिलाओं,शिशुओं और बीमार लोगों को भोजन के लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में मनु जी के अनुसार दैनिक जीवन में व्यवहारिकता और आवश्यकता को औपचारिकता के ऊपर प्राथमिकता दी जानी चहिये।

7. स्त्रियों की सुरक्षा एवं संरक्षण आवश्यक

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वाऽपि योषिता।
न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं किं चिद् कार्यं गृहेष्वपि।। (5-147)
बाल्ये पितुवर्शे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतंत्रताम्।। (5-148)
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वाऽपि नेच्छेद् विरहमात्मनः।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले।। (5-149)

 ISSN 2278-4632

सदा प्रहृष्टया प्रहृष भाव्यं गृहकार्ये च दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।। (5-150)
यस्मै दड्यात् पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लड्घ्येत्।। (5-151)''7

शब्दार्थ– स्त्री चाहे बालिका, युवती अथवा वृद्ध हो, उनको घर में कोई काम स्वतंत्रता से नहीं करना चाहिये। स्त्री बालकपन में पिता की आज्ञा में, जवानी में, पति की आज्ञा में और पति के बाद पुत्र की आज्ञा में रहे परंतु स्वतंत्रता का भोग कभी न करे। स्त्री, पिता पति वा पुत्रों से अलग रहने की इच्छा न करें। अलग रहने से पिता और पति दोनों कुल-दोषी होते हैं। सदा प्रसन्नचित्त चित्त और घर के काम में निपुण रहे, घर के सामान को पवित्र रखे और खर्च सम्हाल कर करें। पिता या पिता की सम्मति से भाई जिसके साथ विवाह कर दे, उस पति की सेवा जीवन भर स्त्री को करनी चहिये और उसकी मृत्यु होने पर ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये।

व्याख्या– किसी भी आयु की महिला को अपनी सभी गतिविधियों के बारे में अपने परिवार के सदस्यों को बता कर रखे। एक महिला को एकदम स्वतंत्र होकर अर्थात परिवार से छिपाकर कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। बाल्यावस्था में उसे अपने पिता को विश्वास में लेकर ही अपने सभी कार्यो को संपादित करना चाहिए। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय आदि में पढ़ने वाली बालिकाओं को अपने परिवार को वहाँ के लोगों के आचरण, माहौल आदि के बारे में परिचित कराना चाहिए और किसी भी असामान्य घटना को तत्काल अपने परिवारजनों को बताना चाहिए। इसी प्रकार विवाहित महिला को अपने पति को विश्वास में लेकर और पति के बाद अपने पुत्र को विश्वास में लेकर ही किसी कार्य के बारें में कोई निर्णय करना चाहिए ताकि किए जाने वाले कार्य में सभी की सहमति हो। आज भी हम देखते हैं कि यदि कोई महिला अपने परिवार से अलग-थलग होकर रहती है तो उसका जीवन आसान नहीं होता है। समाज के दुष्ट पुरुष उसको अपने चंगुल में फँसाने का प्रयास करते रहते हैं। उसके चरित्र पर उंगली उठते देर नहीं लगती। इसके विपरीत जो महिला अपने परिवार का ध्यान रखती है, अपने घर का प्रबंधन दक्षता से करती है एवं परिचित के साथ अच्छा व्यवहार रखती है, समाज में उसकी छवि बहुत सकारात्मक बन जाती है। आज भी जिन विवाहो में युवती अपनी पसंद के

युवक से विवाह करने से पहिले अपने माता-पिता और भाई की सहमति प्राप्त कर लेती है, ऐसे विवाह सामान्यतः अधिक सफल रहते हैं। ऐसे विवाहो में पति-पत्नी के बीच पारस्परिक संबंध मजबूत रहते हैं।

8. स्त्रियों की सुरक्षा पारिवारिक पुरुषों का दायित्व

अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैदिर्वानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे।। (9-2)
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षंति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। (9-3)
कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्य्श्चानुपयन् पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता।। (9-4)
सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसग्ड़ेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः।। (9-5)
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यंतो धर्ममुत्तमम्।
यतंते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि।। (9-6)''7

शब्दार्थ– पुरुषों को अपनी स्त्रियों को कभी स्वतंत्र न होने देना चाहिये। विषयों में आसक्त स्त्रियों को सदैव अपने वश में रखना चाहिये। बालकपन में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र को स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। स्त्री स्वतंत्र होने योग्य नहीं है। समय पर कन्यादान न करने पर पति, ऋतु काल में प्रेम न करने पर पति और पिता के बाद माता की रक्षा न करने से पुत्र निंदा का पात्र होता है। साधारण कुसंग से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि अरक्षित स्त्रियाँ दोनों कुलों को दुःख देती हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण वर्णों का धर्म है। दुर्बल को भी अपनी स्त्रियों की रक्षा का उपाय करना चाहिए।

व्याख्या– प्रकृति में हम देखते हैं कि समूहों में रहने वाले सभी जीव-जंतुओं का अपना-अपना सामुदायिक स्तरीकरण होता है और अधिकतर स्तनधारी प्राणियों के नरों में पराई मादाओं पर अपना प्रभाव जमाकर उनको अपने पक्ष में कर लेने की प्रवृत्ति होती है। मानव भी एक सामाजिक प्राणी है जिसके सबसे छोटे समूह में पति-पत्नी और बच्चे होते हैं। इस परिवार को सुदृढ़ बनाये रखने का मुख्य दायित्व पति का है कि वह अपनी पत्नी की मानसिक,

सामाजिक एवं शारीरिक इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को समझकर समय-समय पर उनको पूरा करें ताकि पत्नी अपने पति एवं परिवार से हृदय से जुडी रहे और कभी भी उससे अलग होने की ना सोचे। एक स्त्री को गलत लोगों से संरक्षित करके रखने का प्रथम दायित्व स्त्री के सबसे नजदीकी पारिवारिक पुरुष का होता है। स्त्री के बालपन में पिता व भाई, विवाहित अवस्था में पति और पति की अनुपस्थिति में पुत्र का कर्तव्य है कि वह उसकी सुरक्षा एवं देखभाल का उत्तरदायित्व लें। इस प्रकार मनु जी के अनुसार समाज में मौजूद दुर्जनों के दुराचार से स्त्रियों का बचाव, उसके पारिवारिक पुरुषों के संरक्षण द्वारा ही सुनिश्चित किया जा सकता है। पर-पुरुषों से अपने परिवार की स्त्री के संरक्षण की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

9. स्त्रियों के कार्य-दायित्व एवं स्व-सुरक्षा

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे।। (9-11)
अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।। (9-12)''7

शब्दार्थ–धन-संग्रह, खर्च, सफाई, पति-सेवा, धर्म, रसोई और घर को संभालने के कार्य में स्त्री को लगाना चाहिए। विश्वास-पात्र मनुष्यों से घर में रखवाली कराने से रक्षा नहीं होती है परंतु जो अपनी रक्षा अपने आप ही करें,वही सुरक्षित हो सकती है।

व्याख्या–मनु जी के अनुसार, घर के प्रबंधन का कार्य यथा धन संग्रह, खाद्य सामग्री का संग्रह,घरेलू वस्तुओं-सामग्रियों का चयन, धार्मिक पूजन की व्यवस्था, नियमानुसार परम्पराओं का निर्वहन, बुजुर्गों की सेवा, खाने-पीने की व्यवस्था, घर-सफाई आदि में महिलाओं को महारत होती है। महिलाओं अर्थात ग्रहणियों को अपनी एवं अपने घर की सुरक्षा स्वम ही करनी चाहिए। किसी अन्य को विश्वास-पात्र समझकर, उससे अपनी और अपने घर की रक्षा कराना नुकसानदायक साबित हो सकता है। आजकल अधिकतर घरों में महिलाएं काम-काजी हैं। इसके बावजूद महिला ही घर में स्वच्छता सुनिश्चित करती है, पोषण के लिए पुष्टिकर खाद्य सामग्री का चयन करती है, घरेलू सामानों यथा बिस्तर, फर्नीचर, बर्तन आदि का चयन व देखभाल करती है और

सभी गृहवासियों में सुसंस्कार सुनिश्चित करने की दिशा में धार्मिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों जैसे पूजा-पाठ, व्रत आदि के आयोजन करती हैं। एकाकी परिवारों में जहां पति-पत्नी दोनों काम पर जाते हैं, घर और बच्चों को नौकरानी के भरोसे छोडकर जाते हैं मगर अधिकतर मामलों में नौकरानी की सेवाओं से असंतुष्ट ही रहते हैं। अतः मनु जी का यह श्लोक आज के माहौल में प्रासंगिक है।

10. पुत्र और पुत्री एक समान

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। (9-130)
मातुस्तु यौतकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्।। (9-131)
दौहित्रौ ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्।
स एव दद्याद् द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च।। (9-132)
पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः।। (9-133)''7

शब्दार्थ–जैसी आत्मा है वैसा ही पुत्र है और पुत्र और पुत्री समान हैं। इसलिए पिता की आत्मारूप-पुत्री बैठी हो तो दूसरा धन कैसे ले जाये? जो धन माता को दहेज में मिला हो वह कन्या का ही भाग है। और पुत्रहीन का सब धन दौहित्र का ही है। जिसको पुत्रिका किया हो उसके पुत्र को अपुत्र-पिता का धन लेना चाहिये और उसी को पिता और नाना का पिण्डदान करना चाहिए। लोक में धर्मानुसार पौत्र और दौहित्र में कुछ भी भेद नहीं है। क्योंकि दोनों के माता-पिता एक ही देह से उत्पन्न हुए हैं।

व्याख्या–मनु जी के अनुसार पुत्र और पुत्री दोनों समान हैं। किसी मनुष्य के पुत्र से उत्पन्न पुत्र अर्थात पौत्र और उसकी पुत्री से उत्पन्न पुत्र अर्थात दोहित्र, दोनों ही उसके लिए समान होते हैं तथा उसकी मृत्यु के पश्चात पिण्डदान कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में पुत्र व पुत्री दोनों माता-पिता कि संपत्ति में समान अधिकार रखते हैं। सामान्यतः पुत्र माता-पिता के घर में उनके पास रहता है और अपने माता-पिता की घर-संपत्ति प्राप्त करता है जबकि पुत्री के विवाह के बाद उसके पति का घर व संपत्ति ही उसका घर-संपत्ति होता है। पुत्र

एक भाई के रूप में अपनी बहिन के सामाजिक प्रथाओं का निर्वहन करता है अर्थात सामर्थ्य के अनुसार त्यौहारों आदि पर बहिन और उसके परिवार को उपहार, वस्त्र आदि भेंट कर उसका सम्मान करता है। इस तरह भाई-बहिन के बीच माता-पिता की संपत्ति का बंटवारा न होकर बहिन का भाई पर एक सामाजिक अधिकार रहता है। परंतु यदि किसी माता-पिता को पुत्र न हो और सिर्फ पुत्री हो तो ऐसी अवस्था में माता-पिता की संपत्ति पर पुत्री और उसकी संतान का अधिकार होगा।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष : मनु स्मृति के 12 अध्यायों में संकलित विभिन्न श्लोकों के अध्ययन से पता चलता है कि मनु जी ने स्त्री और पुरुष दोनों को समाज में एक दूसरे का पूरक माना है। पुरुष और महिलाएं शारीरिक और मानसिक रूप से भिन्न होते हैं। पति एक पुरुष शरीर है जबकि पत्नी एक महिला शरीर है जिसमें स्वाभाविक रूप से भिन्न विशेषताएं और क्षमताएं होती हैं। लेकिन जब वे दोनों विवाह करके पति-पत्नी बन जाते हैं, तो वे एक-दूसरे की विशेषताओं और क्षमताओं का उपयोग करके एक परिवार बनाते हैं, जो मानव समाज की एक इकाई है। इस प्रकार, पति-पत्नी न तो एक-दूसरे के बराबर हैं और न ही एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी हैं, बल्कि वे दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं।

मनु जी के द्वारा परिवार और समाज का एक आदर्श ढांचा प्रस्तुत किया गया है, जिसमें महिलाओं को उनकी मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं के अनुरूप एक माता के रूप में सर्वोच्च पद प्रदान किया हैं। उनके बगैर मानव संतति की आगे उत्पत्ति संभव ही नहीं है। दैनिक जीवन में महिलाओं को प्रथम अवसर दिये जाने की संस्तुति की गई है ताकि उनको वांछित शारीरिक व मानसिक आराम के साथ सम्मान भी प्राप्त हो सके। आज भी बसों में पुरुष अपनी सीट छोड़कर महिलाओं को बैठने का अवसर पहिले देना अपना दायित्व समझते हैं। उत्सवों और त्योहारों पर पारिवारिक पुरुषों यथा पिता, भाई, पति, देवर, पुत्र आदि के द्वारा महिलाओं के लिए उनके पसंदीदा भोजन, वस्त्र, आभूषण, फल-फूल आदि उपलब्ध कराकर उनका सत्कार करने के लिए मनु जी ने संस्तुति दी है। आज भी रक्षा-बंधन, भाई-दूज, तीज आदि त्योहारों पर भाई और पिता के द्वारा स्त्री को धन, भोजन, आभूषण आदि प्रदान किए जाने की परंपरा है। करवाचौथ, दीपावली आदी त्योहारों पर पति

द्वारा अपनी पत्नी को नए वस्त्र , गहने आदि देना और पति-पत्नी दोनों के द्वारा इन त्योहारों पर अपने माता-पिता को वस्त्र, भोजन आदि देकर उनका सत्कार करना भारतीय परंपरा है।

नारी प्रकृति का प्रतिरूप है। वह सहिष्णु, त्यागशील, सेवा-उन्मुख और प्रेममय है। एक महिला ही बच्चों की आदर्श देखभाल कर सकती है। इसलिए, एक महिला स्वाभाविक रूप से एक पुरुष की तुलना में अधिक भावुक और नरम दिल वाली होती है''2। जबकि समाज में हमेशा दुर्जन नारी की इस कमजोरी का फायदा उठाने की ताक में रहते हैं। सम्मोहन कर ठगी की घटनाएँ भी महिलाओं के साथ ही अधिकतर इसी कारण से होती हैं। यही कारण है कि आज के समय में महिलाओं की मदद के लिए विशेष हेल्पलाइन/ दूरभाष की व्यवस्था की हुई है। इसलिए मनु जी ने महिलाओं को स्वतंत्र निर्णय लेने के बजाय अपने नजदीकी पुरुषों को विश्वास में लेकर ही कोई निर्णय लेने की संस्तुति की है। साथ ही पारिवारिक पुरुषों को अपने परिवार की महिलाओं की रक्षा और संरक्षण का दायित्व ग्रहण करने की संस्तुति की है। मनु जी ने पुरुषों का स्पष्टता से मार्गदर्शन किया है कि वह अपनी पत्नी को अपने प्रेम और व्यवहार इतना संतुष्ट रखे कि पत्नी कभी उससे स्वतंत्र होने कि सोचे भी नहीं। मनु जी के अनुसार परिवार का सुचारु रूप से चलना पति-पत्नी के आपसी प्रेम, संतुष्टि और तालमेल पर निर्भर करता है।

मनु जी के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों को अपनी मर्यादा में रहकर और उत्तम चरित्र का पालन करते हुए जीवनयापन करना चाहिए। स्त्री सुंदर होती है और पुरुष उसकी और स्वाभाविक तौर पर आकर्षित होता है। दुष्ट महिलाएं अपने इस आकर्षण से पुरुषों को अपने जाल में फंसाकर उनका सामाजिक सम्मान नष्ट कर सकती हैं। इसलिए विवेकशील पुरुष अपनी पत्नी के अलावा सभी स्त्रियों से हमेशा एक उचित दूरी रखते हैं। और समझदार महिलाएं भी अपने पति के अलावा सभी पुरुषों से एक सम्मानजनक दूरी रखती हैं। इस प्रकार मर्यादित और सदचरित्र लोगों वाले समाज का निर्माण होता है जिसमें विवाहोत्तर सम्बन्धों एवं उसके उप-उत्पाद विवादों व अपराधों की संभावना न्यूनतम हो जाती है।

कुछ शोधकर्ता आरोप लगाते हैं कि मनु जी ने पितृसत्तात्मक समाज की रचना करके महिलाओं को पुरुषों के अधीन कर दिया है। मगर इस शोध से

लगता है कि ऐसे शोधकर्ताओं को एकदम निष्पक्ष होकर और व्यावहारिकता के साथ दोबारा मनुस्मृति का अध्ययन करना चाहिए। मानव जीवन के सामाजिक अनुभव और अन्य सामाजिक जीवधारियों यथा बंदर, भेड़िया, शेर आदि के प्राकृतिक जीवन के विश्लेषण से यह एकदम सत्य है की मानव समाज पितृसत्तात्मक समाज है और हमें इसी सच के साथ आगे बढ़ना होगा। समाज का पितृसत्तात्मक होना कोई नकारात्मक बात नहीं है बशर्ते कि महिलाओं को सामाजिक ढांचे में उचित सम्मान और न्याय मिले। मनुस्मृति में दिये गए पितृसत्तात्मक ढांचे के अनुसार एक घर में पिता को अगर राष्ट्रपति की तरह मान लिया जाये तो निःसंदेह पत्नी प्रधानमंत्री की भूमिका में है या फिर हम इसके उलट भी समझ सकते हैं। आज भी, सबसे सफल परिवारों में, पति-पत्नी और परिवार के अन्य पुरुष और महिलाएं उसी तरह एक-दूसरे का सम्मान करते हैं। महिलाओं को जबरन पुरुषों के खिलाफ खड़ा करने का चलन आज परिवारों को तोड़ रहा है। कड़वी सच्चाई तो यह है कि आज का तथाकथित आधुनिक समाज भी अपने परिवार से अलग हुई महिला यानी तलाकशुदा महिला को कोई सम्मान नहीं देता है। आज भी, एक तलाकशुदा पुरुष, तलाकशुदा महिला की तुलना में बहुत पहले पुर्नविवाह कर लेता है, जो फिर से साबित करता है कि महिला को समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति को बदलने के बजाय खुद को सम्मानजनक स्थिति में बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित करना होगा।

मनुस्मृति के उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि इसे स्त्री और पुरुष के बीच प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह पुरुषों को महिलाओं की तुलना में अधिक महत्व देती प्रतीत होती है। हालांकि, यदि इसे समाज की व्यावहारिकता और स्त्री-पुरुष की शारीरिक व मानसिक क्षमताओं, विशेषताओं, और सीमाओं के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाए, तो इसके प्रावधानों को पूरी तरह नजरंदाज करना उचित नहीं होगा। यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि मनुस्मृति में महिलाओं से संबंधित सभी नियम और प्रावधान आधुनिक समय में पूरी तरह प्रासंगिक नहीं हैं। फिर भी, मनुस्मृति के कुछ प्रावधान आज की महिलाओं की कई सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकते हैं। आधुनिक स्त्री और पुरुष, यदि चाहें, तो मनुस्मृति के कुछ विचारों को अपनाकर अपने आचरण की

सीमाएं स्वयं तय कर सकते हैं, जिससे प्रगतिशील और खुले समाज में महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। यह तभी संभव है जब मनुस्मृति को निष्पक्ष, तटस्थ और जिम्मेदार दृष्टिकोण से पढ़ा जाए, जिसमें समाज के सभी व्यावहारिक पहलुओं को ध्यान में रखा जाए। साथ ही, इसके अध्ययन और मूल्यांकन के दौरान व्यक्ति (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) के बजाय परिवार को समाज की मूल इकाई मानने की आवश्यकता है। ऐसा करने पर ही मनुस्मृति के प्रावधानों को सही संदर्भ में समझा जा सकता है और उनका सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त विश्लेषण किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. अलका सैनी, सुमन शर्मा, भारतीय समाज पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, पुस्तक: भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव (आईएसबीएन 978-93-82065-95-1), आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2013, पेज 40-43
2. अलका सैनी, शांति संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए महिला शिक्षा का महत्व, रिसेंट एजुकेशनल एंड साइकोलोजिकल रिसर्च (इंटरनेशनल रेफरीड मल्टीडिसिप्लिनरी एंड ब्लाइंड पीयर रिव्यूड रिसर्च जर्नल) (आईएसएसएन 2278-5949), वर्ष 05, अंक 03, अक्टूबर-नवंबर-दिसंबर 2016, पेज 38-45
3. अविनाश गढ़रे, प्राचीनकाल से आधुनिक युग तक भारत में महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, एक प्रेस नोट, 2015

   (https://www.legalservicesindia.com/article/1867/The-Socio-Economic-Status-of-Women-in-India-Ancient-to-Modern-Era.html#google_vignette)
4. बी. बराल, हिंदू सामाजिक संगठन का प्रारूप, सहज प्रकाशन काठमांडू, 2050 बीएस
5. बी. ए. रानी, बी.टी.टी. रेकृी, महिला /शिक्षा, सशक्तिकरण और भावनात्मक बुद्धिमत्ता, (आईएसबीएन 978-81-8316-308-8), नीलकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद-500095, 2016
6. मनीषा द्विवेदी और सोनल मालिक, वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति, जर्नल ऑफ़ पॉजिटिव स्कूल साइकोलॉजी (आईएसएसएनरू 5693-5702), संस्करण 6 (3), 2022, पेज 5693-5702
7. मनुस्मृति, श्री हिन्दू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन, (https://www.shdvef.com/)

8. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2004
9. रिधिमा सोइन, मनुस्मृति: एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च, कल्चर सोसायटी (आईएसएसएन 2456-6683), संस्करण 3 (12), 2019, पेज 37-40
10. एस. ए. कौडिन्नयन, वैदिक धर्म मूल रूप में, प्रकाशक स्वाध्याशाला काठमांडू, 2062 बीएस
11. श्याम कार्तिक मिश्रा, प्रदीप कुमार पाण्डेय, भारत में महिला स्थिति और सशक्तिकरण, न्यू सेंचुरी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
12. वेंडी डोनिगर और ब्रायन स्मिथ, मनु के नियम, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 1991
13. विकास नंदल, वी. रजनीश, भारत में सदियों से महिलाओं की स्थिति, इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज (आईएसएसएन 2319-3565), संस्करण 3(1), 2014, पेज 21-26
14. वी. गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखंबा विद्या भवन वाराणसी, 1978
15. वी. ए. रामास्वामी, भारत की सांस्कृतिक विरासत, रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान कलकत्ता, 1993

डॉ. अलका सैनी
सहायक आचार्य (शिक्षाशास्त्र)
विभागाध्यक्ष, शिक्षा शास्त्र विभाग
धनौरी पी. जी. कॉलेज, धनौरी, जनपद हरिद्वार (उत्तराखंड)
Email: alkasaini.vks@gmail.com, ORCID ID:0000-0002-8392-1205

❑❑❑

गोदान का समाज

• डॉ. स्वपना मीना

भारतीय समाज वर्गों में विभक्त है जिसमें उच्चवर्ग मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग का शोषण करता है। इस कार्य हेतु धर्म का सहारा भी लिया जाता है; जिसे मुंशी प्रेमचंद ने 'गोदान' में उद्‌घाटित करते हुए धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों पर जमकर प्रहार किया है। यहाँ दातादीन जैसे ब्राह्मणों द्वारा होरी जैसा किसान आजीवन शोषण की चक्की में पिसता रहता है तथा दातादीन जैसे ब्राह्मण बिना किसी मेहनत के सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। प्रेमचंद ने समाज में व्याप्त उन सभी रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का जमकर विरोध किया है जो मनुष्य के विकास में साधक न होकर बाधक बनी हैं। उस सामन्ती संस्कृति को ध्वस्त करने के लिए ललकारा है जिसके चलते किसान इस समाज की चक्की में लगातार पिसता रहा है।

बीज शब्द : *साहित्य समाज जमींदार महाजन किसान मजदूर धर्म संस्कृति मानवता राष्ट्रीयता राष्ट्रीय भाषा।*

मूल आलेख : समय के साथ-साथ मानव जीवन की गति भी पूर्तिगामी नदी की भांति होती है जिसमें स्थिति के अनुसार उतार-चढ़ाव होता रहता है। इसी प्रकार समाज में भी समय-समय पर अनेक बदलाव होते रहते हैं जिनसे समाज में निवासरत सामाजिक प्राणी भी प्रभावित रहे बिना नहीं रह सकता। चूंकि साहित्य समाज का अभिन्न अंग है और साहित्यकार सामाजिक प्राणी। अतः साहित्य और साहित्यकार दोनों समाज से प्रभावित रहते हैं। इसीलिए साहित्यकार साहित्य के माध्यम से समाज की परंपरागत संकीर्णता जकड़न विकृतियाँ आदि पर प्रहार करते हुए एक नवीन दृष्टिकोण समाज के सामने प्रस्तुत करता है जिससे व्यक्ति की अनुभूतियों की तीव्रता बढ़ती है परिणामस्वरूप

व्यक्ति समाज हित हेतु सामूहिक रूप से प्रयासरत रहता है। समाज पर कुछ लिखने से पूर्व समाज के स्वरूप को स्पष्ट कर देना अत्यावश्यक है जिसे विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाओं के माध्यम से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है—

(क) 'समाज रीतियों एवं कार्यप्रणालियों अधिसत्ता एवं पारस्परिक सहयोग अनेक समूहों एवं विभाजनों मानव व्यवहार के नियंत्रणों एवं स्वतंत्रताओं की व्यवस्था है। यह सतत् परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था है जिसे हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और यह निरन्तर परिवर्तनशील है।'[1]

(ख) 'समाज पुं. (सं.) 1 समूह, गिरोह। (2) एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का वर्ग दल या समूह समुदाय। (3) किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा। (सोसायटी उक्त सभी अर्थों में)।'[2]

(ग) 'भारतीय चिंतन पद्धति के अनुसार समाज लोकमर्यादाओं और सामूहिक व्यवहार की प्रणालियों का नाम है। ये मर्यादाएं और प्रणालियाँ समय के साथ रूढ़ होती जाती हैं। उनके पालन करने से ही समाज का स्थायित्व बना रह सकता है और मनुष्य शांति और सुरक्षा के साथ जीवन बिता सकता है।'[3]

(घ) गिडिंग्स के अनुसार 'समाज स्वयं संघ है संगठन है औपचारिक सम्बन्धों का योग है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए या सम्बद्ध हैं।'[4]

(ड़) रेउटर ने लिखा है 'समाज एक 'अमूर्त' शब्द है जो समूह के सदस्यों में तथा उनके बीच पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता का बोध कराता है।'[5]

उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज एक ऐसा समूह है जिसमें मानवमन सामूहिक रूप से कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है और अपने सार्वजनिक उद्देश्य प्राप्ति हेतु शांतिपूर्वक लक्ष्य साधन की ओर बढ़ता है। सार्वजनिक उद्देश्य की प्राप्ति ही हमारे जीवन को स्वाभाविक बनाती है। इसी से हमारे मन का संस्कार होता है जिससे हमारे भावों और विचारों में तीव्रता आती

है। समाज एवं व्यक्ति में निहित पुनीत भावों का जागरण करना साहित्य का लक्ष्य होता है एवं साहित्यकार का कर्तव्य। इस पुनीत कर्तव्य को ध्यान में रखकर मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य रचना की, यही कारण है कि उनके कथा साहित्य में भारतीय समाज के जितने वर्गों भारतीय जीवन के जितने पक्षों और भारतीय मनुष्य के जितने रूपों का चित्रण है वे सब किसी दूसरे भारतीय लेखक के कथा साहित्य में शायद ही मिलें। वे उन सबका वस्तुपरक चित्रण करते हैं लेकिन भारतीय समाज के दलित जनों किसानों मजदूरों हरिजन और स्त्रियों के प्रति अपनी अडिग पक्षधरता और गहरी सहानुभूति को छिपाते नहीं हैं।'[6] इसीलिए प्रेमचंद प्रणीत उपन्यास 'गोदान' में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम प्रस्तुत हुए हैं जिन्हें हम समझने का प्रयास करेंगे।

प्रेमचंद ने जब लिखना शुरू किया तो तात्कालिक समाज परंपराओं और रुढ़ियों की अंधी आस्थाओं के जाल में बुरी तरह फंसा हुआ था। इस समय भारतीय समाज एक विशेष स्थिति के साथ पलायन कर रहा था। एक ओर जहाँ भारतीय सामाजिक धरातल पर पाश्चात्य मूल्यों का आगमन हो रहा था वहीं दूसरी ओर व्यक्ति परंपरागत रुढ़ियों में जकड़ा हुआ अपने व्यक्तित्व को ही नष्ट किये जा रहा था जहां समाज परतंत्रता की बेड़ियों में छटपटा रहा था वहीं व्यक्ति हीनता की भावना से ग्रसित होकर पतनोन्मुख हो रहा था। ऐसे समय में प्रेमचंद अपने विवेक और बुद्धि के कपाट को खोलकर समाज की कसमसाती स्थिति को स्वयं झेलते हुए महसूस कर रहे थे। वे समाज के किसान-मजदूरों की दयनीय स्थिति से द्रवित थे तथा उन्हें न्याय दिलाने के लिए प्रयत्नशील थे। कार्लमार्क्स ने लिखा है 'मैं जिससे सच्चा प्रेम करता हूँ उसके अस्तित्व की अनिवार्यता अनुभव करता हूँ।' प्रेमचंद भी किसान-मजदूरों से सच्चा प्रेम करते थे और उनकी अनिवार्यता अनुभव करते थे इसलिए उन्होंने किसान मजदूरों की समस्याओं पर विचार करते हुए उन समस्याओं को जड़ से नष्ट करने का प्रयत्न किया जो किसान मजदूरों के अस्तित्व में बाधक थी। प्रेमचंद जानते थे कि जब तक किसानों पर आक्रमण करने वाले जमींदार व्यापारी वकील थानेदार एवं अन्य सरकारी महकमों पर बैठे बड़े-बड़े मगरमच्छ रूपी अफसरों के साथ-साथ ग्राम पंचायत गांव के सूदखोर अमीर किसानों के लिए काम करने वाले पुरोहित भू-स्वामियों द्वारा नियुक्त कारिन्दे एवं बिरादरी की दमनकारी शक्तियों पर प्रहार नहीं किया जाएगा तब तक किसान-मजदूरों का अस्तित्व बने रहना संदिग्ध है

क्योंकि यह सभी किसानों के पीड़क हैं। जमींदार असामियों से रुपए वसूल न होने पर उनसे चिढ़कर उन पर गुस्सा उतारते हैं सौ-सौ मनुष्यों को एक पंक्ति में खड़ा करके हंटर से मारते हैं। असामी तड़प-तड़प कर रह जाते हैं फिर भी कानून और न्याय उनका कुछ नहीं करता क्योंकि कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ शक्ति न करे मगर होता क्या है। ...... जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है।'[7] यही कारण है कि 'गोदान' के होरी जैसे किसान की एक छोटी-सी लालसा 'घर में गाय लाने की' भी पूरी नहीं हो पाती है। वह आजीवन अथक परिश्रम करता है फिर भी न तो वह अपनी बेटियों की ठीक से कहीं शादी कर पाते है और न ही घर का लालन-पालन। स्थिति यहां तक आ जाती है कि अंततः वह मजदूर बनकर मृत्यु के ग्रास में चला जाता है। इन सबसे निजात पाने के लिए ही प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में ऐसे चरित्र को प्रस्तुत किया है जो अपने अधिकार प्राप्ति हेतु इनका प्रतिरोध करता है। वह चरित्र है– 'गोबर'। गोबर होरी के खुशामदी चरित्र से खुश नहीं रहता है और विद्रोह के स्वर में कहता है 'यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हैं। बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है बेगार देनी ही पड़ती है नजर नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।'[8] अर्थात् कहा जा सकता है कि गोबर अन्याय के प्रति विद्रोही भावना से ओतप्रोत है।

प्रेमचंद स्त्री-पुरुष संबंधों के शाश्वत स्वरूप पर बल देते हैं। भारतीय संस्कृति में आदि से ही नारी को पवित्र माना गया है और कहा गया है 'यत्रनार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्तेतत्र देवता' किंतु इस भौतिकतावादी युग में स्त्री को मात्र वासनामय दृष्टि से देखा जाता है उसका अर्थ मात्र देहलिप्सा के रूप में लगाया जाता है। पुरुष यह नहीं समझता कि स्त्री मात्र पुरुष की वासना को ही पूर्ण करने के लिए नहीं होती अपितु वह पुरुष को संबल प्रदान करने की ताकत भी होती है। प्रत्येक सामाजिक कार्य हेतु पुरुष के साथ स्त्री का होना अनिवार्य है। स्त्री-पुरुष के साथ से ही मानव का कल्याण हो सकता है। इस कल्याण के लिए स्त्री का दया त्याग सेवा श्रद्धा आदि गुणों से संपन्न होना अत्यावश्यक है इनसे रहित होकर स्त्री कुलटा का रूप ले लेती है क्योंकि यदि स्त्री में संघर्ष

संग्राम हिंसा कलह आदि भाव आ जाते हैं तो वह अपने देवत्व से गिर जाती है। दया सेवा श्रद्धा त्याग आदि गुणों से संपन्न होने के कारण ही प्रेमचंद स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ मानते हैं और लिखते हैं कि मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियां सृष्टि और पालन के देवमंदिर से हिंसा और कलह के दानव क्षेत्र में आना चाहती हैं तो उस समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूँ। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी कीर्ति को अधिक महत्त्व दिया है। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा उसने बहुत बड़ी विजय पायी। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला उन्हें बम और मशीनगन और सहस्त्रों टैंकों का शिकार बनाकर वह अपने को विजेता समझता है। और जब हमारी ही माताएं उसके माथे पर केसर का तिलक लगाकर और उसे अपनी असीसों का कवच पहनाकर हिंसा क्षेत्र में भेजती हैं तो आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसाप्रवृत्ति दिनदिन बढ़ती गई और आज हम देख रहे हैं कि यह दानवता प्रचंड होकर समस्त संसार को रौंदती प्राणियों को कुचलती हरीभरी खेतियों को जलाती और गुलजार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है।'[9] इन सब क्रूरता का खेल खेलने वालों से निजात पाने के लिए संग्राम क्षेत्र से अलग रहने के लिए ही प्रेमचंद ने स्त्रियों से कहा है कि तुम वफा और त्याग की मूर्ति हो तुम पृथ्वी की तरह धैर्यवान हो शांति संपन्न हो सहिष्णु हो इसलिए तुम अपने धर्म का पालन करते जाइए निश्चय ही हिंदुस्तान की तरक्की होगी।

प्रेमचंद सजग युगचेता व्यक्ति थे। वह अपने समय की प्रत्येक गतिविधि से परिचित थे अतः प्रत्येक विषय पर वे गंभीर चिंतन कर उनकी त्रुटियों को दूर करने हेतु प्रयत्नशील रहते थे 'उन्होंने हिंदू मुस्लिम ईसाई आदि धर्मों और अपने देश की स्थिति का बारीकी से अध्ययन किया था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जहां विदेशी शासन से मुक्त होने के लिए और स्वराज्य प्राप्ति के लिए हिंदू-मुस्लिम में सर्वधर्म समभाव के प्रसार की बड़ी आवश्यकता है वहां धर्म के क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की भी परम आवश्यकता है।'[10] सर्वधर्म समभाव का तात्पर्य सभी धर्मों की समानता से लगाया जाता है जिसमें धर्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति अथवा जाति के साथ कोई भेदभाव नहीं किया

जाता। प्रेमचंद संपूर्ण मानव समुदाय को मानवता के रूप में देखते थे इसलिए उनका मानना है कि 'किसी धर्म की महानता और फजीलत इसमें है कि वह इंसान को इंसान का कितना हमदर्द बनाता है उसमें मानवता इंसानियत का कितना ऊंचा आदर्श है और उस आदर्श पर वहां कितना अमल होता है।'[11] प्रेमचंद ऐसे धर्म से सख्त नफरत करते थे जिसमें हमदर्दी और भाईचारा अपने ही लोगों के लिए होता हो अन्य धर्म के अनुयायी इस दायरे से बाहर हो क्योंकि 'धर्म नाम है उस रोशनी का जो कतरे को समुद्र में मिल जाने का रास्ता दिखाती है— ....जो हमारी जात को इमाओस्त में हमारी आत्मा को व्यापक सर्वात्म में मिले होने की अनुभूति या यकीन कराती है।'[12] इसीलिए मुंशी प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण उपन्यास में हिंदू मुस्लिम एकता का प्रतिपादन कर राष्ट्रीय चेतना की मशाल को बुझने न दिया।

सामाजिक एवं शैक्षिक उत्थान में राष्ट्रभाषा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यक था विदेशी भाषा का बहिष्कार। लोग विदेशी भाषा बोलने और लिखने में गौरवानुभव करते थे फलतः पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर अपने मानवीय मूल्यों को ही विस्मृत कर रहे थे इसलिए अनेक समाजसुधारकों यथा राजा राममोहनराय बंकिमचंद्र चटर्जी क्षितिमोहन शर्मा महात्मा गांधी राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन महामना पंडित मदन मोहन मालवीय डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद आदि ने विदेशी भाषा का विरोध कर राष्ट्रीय भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। महात्मा गांधी ने विदेशी भाषा का विरोध करते हुए लिखा है 'मैं यदि तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा दिया जाना बंद कर देता तथा सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषा अपनाने को मजबूर कर देता मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों मैं इससे इसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह बच्चा अपनी माँ की छाती से। यही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती है। अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा (क्योंकि वह कुछ लोगों के सीखने की वस्तु हो सकती है लाखों करोड़ों की नहीं।'[13] चूंकि प्रत्येक साहित्यकार समकालीन सामाजिक राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित रहता है फलतः मुंशी प्रेमचंद भी इस कार्य में अछूते नहीं थे वह इस बात से भलीभांति परिचित थे कि आज अंग्रेजी भाषा ने हमारे मन और बुद्धि को इस कदर जकड़ लिया है कि हमारा शिक्षित समाज भी उसे

नहीं छोड़ना चाहता है वही उसके रोजगार का साधन प्रतीत होती है उसी की बेड़ियों में जकड़े रहना उसे अच्छा लगता है। इस सामाजिक अवस्था से मुंशी प्रेमचंद क्षुब्ध हो चुके थे। इसीलिए वे समाज को चेताते हुए कहते हैं कि 'जिस दिन आप अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जाएंगे। मुझे याद नहीं आता कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है। नदी पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रहता है और उसका शीराजा बिखरने नहीं देता।'[14] समाज में जो अराजकता द्वेषता अधर्मता फैली हुई है वह भाषा से ही दूर हो सकती है क्योंकि समाज की बुनियाद भाषा है। ....भाषा का सीधा संबंध हमारी आत्मा से है। ......भाषा हमारी आत्मा का बाहरी रूप है। ....उसके एक-एक अक्षर में हमारी आत्मा का प्रकाश है। भाषा सदियों तक हमारा साथ देती रहती है और जितने लोग हम जबान हैं उनमें एक अपनापन एक आत्मीयता एक निकटता का भाव जगाती रहती है। मनुष्य में मेल डालने वाला रिश्ता भाषा का है। ....हमारे मुल्की फैलाव के साथ हमें एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ गई जो सारे हिंदुस्तान में समझी और बोली जाय ......हम सुबे की भाषाओं के विरोधी नहीं हैं (आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें) करें लेकिन एक कौमी भाषा का मरकज़ी सहारा लिए बगैर आपके राष्ट्र की जड़ मजबूत नहीं हो सकती। ....अगर हमने कौमियत की सबसे बड़ी शर्त यानी कौमी जबान की तरफ से लापरवाही की तो इसका अर्थ यह होगा कि आपकी कौम को जिंदा रखने के लिए अंग्रेजी की मरकजी हुकूमत का कायम रहना लाज़िमी होगा वर्ना कोई मिलाने वाली ताकत न होने के कारण हम सब बिखर जाएंगे और प्रांतीयता जोर पकड़कर राष्ट्र का गला घोंट देगी। .....इस कौमी जबान के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट अंग्रेजी है उसका बढ़ता हुआ प्रचार और उसमें आत्मसम्मान की वह कमी जो गुलामी की शर्त को नहीं महसूस करती।'[15] इस आत्मसम्मान की रक्षा के लिए हमें हिंदुस्तानी भाषा का प्रयोग करना होगा यह हिंदुस्तानी भाषा वही भाषा है जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों ही मानते हैं जो साधारण बोलचाल की भाषा है जिसमें किसी भाषा के शब्दों का त्याग नहीं किया जाता है। हिंदुस्तानी को अपनाकर ही हम एकता के सूत्र में बंध सकते हैं तथा परतंत्रता की बेड़ियों को

तोड़ सकते हैं इन परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए मन और बुद्धि की जकड़न को खोलने के लिए आवश्यक है कि हमें अंग्रेजी का तिरस्कार करना होगा।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'गोदान' के माध्यम से सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है; समाज में व्याप्त सड़ी-गली मान्यताओं पर कुठाराघात कर किसान मजदूरों की दैयनीय स्थिति छूत-अछूत समस्या, दहेज समस्या, अनमेल विवाह, विधवा विवाह आर्थिक शैक्षिक राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रभाषा तथा हिंदू-मुस्लिम द्वेषता आदि समस्याओं को दूर करने का प्रयत्न किया है जिससे निश्चय ही हिंदुस्तान ने सामाजिक उत्थान में प्रगति की है।

संदर्भ :

1. आर-एम-मैकाइवर एण्ड चार्ल्स एच-सोसायटी एन इंट्रोडक्शन एनैलसिस 1985 पृष्ठ 5
2. रामचन्द्र वर्मा, लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी शब्द कोश (संक्षिप्त संस्करण), लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद 1998 ई- पृष्ठ 895
3. बुद्ध प्रकाश भारतीय धर्म एवं सस्कृति मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
4. फ्रैंकलिन हेनरी गिडिंग्स : द प्रिंसीपल ऑफ सोशियोलॉजी एन एनैलसिस ऑफ द फेनॉमिना ऑफ एसोसिएशन एण्ड ऑफ सोशल ऑर्गनाईजेशन प्रोफेशन ऑफ सोशियोलॉजी कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क एण्ड लंदन मैकमिलन एण्ड कम्पनी 1896 पृष्ठ 27
5. एडवर्ड बायरन रेउटर हैण्डबुक ऑफ सोशियोलॉजी द ड्राईडेन प्रेस न्यूयॉर्क 1941 पृष्ठ 127
6. मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला 2006 ई., पृष्ठ 290
7. प्रेमचन्द : गोदान प्रकाशन, संस्थान नई दिल्ली, 2005 ई. पृष्ठ 224
8. वही, पृष्ठ 17-18
9. वही, पृष्ठ 147
10. राधा अग्रवाल : प्रेमचन्द के कथा साहित्य में धर्म निरपेक्षता की भावना पराग प्रकाशन, दिल्ली 1993 ई., पृष्ठ 45
11. प्रेमचन्द कुछ विचार लोक भारती, प्रकाशन इलाहाबाद, 2006 ई., पृष्ठ 82
12. वही, पृष्ठ 82

13. महात्मा गांधी : यंग इंडिया, 1936 ई.
14. प्रेमचन्द : कुछ विचार लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2006 ई, पृष्ठ-118-119
15. प्रेमचन्द : राष्ट्रभाषा 27 अक्टूबर, 1934 राष्ट्रभाषा सम्मेलन बम्बई

डॉ. स्वपना मीना
एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)
Email: swapanameena5@gmail.com
moMob. No-9415838929

❑❑❑

फार्म 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशक स्थान	: श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान
2.	प्रकाशन अवधि	: अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	: महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर)
	क्या भारतीय नागरिक है	: हाँ
4.	प्रकाशक का नाम	: महावीर प्रसाद माली
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	पता	: मरुभूमि शोध संस्थान श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.
5.	सम्पादक का नाम	: प्रो. बी. एल. भादानी
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: रांगड़ी चौक, बीकानेर (राज.)
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	: कोई नहीं

मैं महावीर प्रसाद माली एतद्द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य हैं।

महावीर प्रसाद माली
प्रकाशक के हस्ताक्षर

कृष्णगढ़ राजघराने का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक परिदृश्य

डॉ. सुरेश सिंह राठौड़ • भगवती सोनी

किसी देश की सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास को पढ़ने के लिए उसके साहित्य को ही पढ़ना पर्याप्त होता है। इसीलिए साहित्य किसी देश, समाज तथा उसकी सभ्यता या संस्कृति का दर्पण होता हैं। साहित्य एक ऐसा माध्यम है जिसमें समाज की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर चिंतन किया जाता है। यहाँ मनुष्य अपने विचारों को खुलकर प्रकट कर सकता है, तर्क-वितर्क कर सकता है, एक आदर्श प्रस्तुत कर सकता है। साहित्य के क्षेत्र में किशनगढ़ राज्य अपनी अलग पहचान रखता है क्योंकि यहाँ के राज्याश्रय में केवल घनानंद और वृन्द जैसे महान साहित्यकारों ने ही कवित्व नहीं किया बल्कि यहाँ के राजाओं व राजकुंवरियों ने भी निरंतर साहित्य के क्षेत्र में अपनी रुचि बनाये रखी। किशनगढ़ राज्य के राजवंश ने यहाँ की कला, साहित्य एवं संस्कृति में रुचि बनाये रखी तथा सदैव यहाँ के कलाकारों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय दिया।

बीज शब्द : *साहित्य, समाज, संस्कृति*

साहित्य, कला एवं सांस्कृतिक विरासत से समृद्ध कृष्णगढ़ (वर्तमान नाम किशनगढ़) राजस्थान के ठेठ मध्य में बसा हुआ है। कृष्णगढ़ रियासत की स्थापना 17वीं शताब्दी में हुई, जो स्वतंत्रता से पूर्व देशी रियासतों तथा राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् अजमेर जिले की एक तहसील बन गया। कृष्णगढ़ रियासत की स्थापना भक्ति काल और रीतिकाल के संक्राति काल में हुई। राजपूताना के इतिहास में कृष्णगढ़ रियासत के सम्बन्ध में बताया गया है कि इसकी स्थापना जोधपुर के राठौड़ मोटा राजा उदयसिंह के पुत्र

(कृष्ण सिंह) किशनसिंह ने वि. सं. 1611 में की थी। The chief of Kishangarh belong to the Rathore clan of history. Rajput's, and are descended from Raja Udai Singh of jodhpur. The latter's second son, Kishan Singh, was born in 1575, and remained in the country of his birth till 1596, when, in consequence of some disagreement with his elder brother, Sur Singh, then Raja of Jodhpur, he took up his abote at Ajmer. Obtaining an introduction to Akbar, he received from him the district of Hinduan, now in Jaipur; and subsequently, for services rendered in recovering imperial treasure carried off by the Mers, he received a grant of setholao and certain other districts. In 1611 he founded the town of Kishangarh close to Setholao, which is now in ruins, and from this time the state began to be called by its present name.[1]

कृष्णगढ़ के राज्याश्रित कवि वृन्द की वचनिका के अनुसार वि.सं. 1668 माघ मास वसन्त पंचमी को कृष्णसिंह द्वारा कृष्णगढ़ की स्थापना की गई थी। यहाँ के कृष्ण भक्त कवियों ने इस पावन धरा पर जन्म लेकर इसे यथा नाम तथा गुण 'कृष्णगढ़' या 'कृष्णभक्ति दुर्ग' के रूप में कीर्तित किया है।[2] किशनगढ़ कोई बड़ी रियासत नहीं थी। इसमें केवल तीन परगने थें–किशनगढ़, रूपनगढ़ और सरवाड़।

कृष्णगढ़ के नामकरण को लेकर इतिहासकारों, समीक्षकों और आलोचकों के मध्य मतैक्य नहीं हैं। उक्त में से कुछ कृष्णगढ़ राजघराने का नामकरण उनके स्थापक शासक किशन सिंह के नाम से जोड़ते हैं और कुछ उनके आराध्य देव कृष्ण के नाम से। यद्यपि राजस्थान की यह परम्परा रही है कि अधिकांश स्थानों और रियासतों का नाम उस क्षेत्र में शासन करने वाले संस्थापकों के नाम पर ही रखा जाता था और उस नाम के अंत में 'नेर', 'सर', 'पुर', 'मेर', 'गढ़' अथवा 'बाद' लगा दिया जाता था। जैसे-बीकानेर, नापासर, जयपुर, जैसलमेर, कृष्णगढ़, इत्यादि। बकौल कर्नल टॉड, डॉ. अविनाश पारीक ने 'किशनगढ़ का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है–कुछ जागीरें राज्य की सीमा के बाहर बस गई, जो जागीर स्वतन्त्र हो गई उनका नाम वहाँ के संस्थापकों के नाम पर रखा गया।[3] इसके अतिरिक्त मध्यकाल में शहर के नामकरण से सम्बन्धित एक प्रथा और प्रचलन में थी। जिसके अनुसार राजा, महाराजा अपने आराध्य देव के नाम पर भी रियासत या शहर का नामकरण

किया करते थे। इस सम्बन्ध में डॉ. मोहनलाल गुप्ता का मत है मध्य काल में नगरों का नामकरण उस नगर के संस्थापक अथवा उसके आराध्य देव के नाम के साथ पुर, मेर, नर, गढ़ अथवा सर आदि प्रत्यय लगाकर किया जाता था। माना जाता है कि महाराजा किशनसिंह ने अपने आराध्य भगवान कृष्ण के नाम पर इस रियासत का नामकरण कृष्णगढ़ किया था। जब यह नगर किसी राजा की राजधानी होता था तो पूरा राज्य इसी नाम से जाना जाता था। माना जाता है कि महाराजा किशनसिंह ने अपने आराध्य भगवान कृष्ण के नाम पर इस रियासत का नामकरण कृष्णगढ़ किया था। कृष्णगढ़ का अपभ्रंश किशनगढ़ हुआ। बारहठ कृष्णसिंह तथा ओझा आदि विद्वानों ने भी इसे कृष्णगढ़ कहकर संबोधित किया है।[4] नैणसी के अनुसार किशनसिंह ने अपने नाम से इस शहर का नामकरण किया है। उन्होंने अपनी ख्यात में लिखा है–सं. 1669 अपने नाम पर कृष्णगढ़ बसाकर राजधानी बनाया।

किशनगढ़ के इतिहास एवं उसकी स्थापना से सम्बन्धित जानकारी हमें अनेक इतिहास ग्रंथों से प्राप्त होती है। मुँहणोत नैणसी की ख्यात से यह स्पष्ट होता है कि किशनगढ़ रियासत का सम्बन्ध जोधपुर से था क्योंकि यहाँ के शासक जोधपुर के राठौड़ों के ही वंशज थे। नैणसी लिखते है यहाँ के रईस जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के दूसरे पुत्र कृष्णसिंह के वंश में है। जोधपुर में पहले दूधोड़ आदि 12 गाँव कृष्णसिंह की जागीर में थे और 10 रोज नकद खर्च में जुदा मिलते थे।[5] मुँहणोत नैणसी भी राजा उदयसिंह के 1583 ई. में गद्दी पर बैठने की बात पर अपनी मुहर लगाते हैं। वे कहते हैं– राजा उदयसिंह माजी स्वरूपदेवी झाली, सज्जा राजावत की बेटी। सं. 1640 में पाट बैठा।[6]

इतिहासकारों ने जोधपुर महाराजा मोटा राजा उदयसिंह के 16 पुत्र तथा 17 रानियाँ होना बताया है। जिसमें कर्नल जेम्स टॉड ने महाराजा किशनसिंह को उदयसिंह का आठवाँ पुत्र बताया है जबकि मुँहणोत नैणसी ने उन्हें द्वितीय पुत्र माना है। अर्सकिन भी किशनसिंह को महाराजा उदयसिंह का द्वितीय पुत्र ही बताते हैं। पंडित विश्वेश्वर नाथ रेउ तथा सुखसंपत्तिराय भण्डारी जेम्स टॉड के मत का ही समर्थन करते हैं। डॉ. सुमहेंद्र ने किशनसिंह को उदयसिंह का पंद्रहवां पुत्र बताया है जबकि गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने किशनसिंह ने को चौदहवें क्रम पर रखा है। इससे इस बात की पुष्टि तो स्वतः हो जाती है

कि किशनसिंह मोटा राजा उदयसिंह के ही पुत्र थे लेकिन 16 पुत्रों में से किस क्रम पर थे इसको लेकर इतिहासकार एकमत नहीं हो पाते।

इसी प्रकार महाराजा किशनसिंह की जन्म तारीख को लेकर भी इतिहास ग्रंथों में भिन्न-भिन्न तिथियाँ मिलती है। 'इम्पीरियल गजट ऑफ इण्डिया' में अर्सकीन ने किशनसिंह का जन्म 1575 ई. माना है the chief of Kishangarh belong to the Rathore clan of history. Rajput's, and are descended from Raja Udai Singh of jodhpur. The latter's second son, Kishan Singh, was born in 1575.7 जबकि जोधपुर की ख्यात में इनकी जन्म तिथि श्रावणादि वि. सं. 1639 (चैत्रादि 1640) ज्येष्ठ वदि 2 अर्थात् 28 अप्रैल 1583 ई. अंकित है। विश्वेश्वर नाथ रेउ तथा गौरीशंकर हीराचंद ओझा भी इसका समर्थन करते हैं।

किशनसिंह द्वारा अपने पिता का राज्य छोड़ने तथा तत्पश्चात सेठोलाव पर विजय प्राप्त करने को लेकर भी इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। इस सम्बन्ध में मुँहणोत नैणसी कहते हैं यहाँ के रईस जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के दूसरे पुत्र कृष्णसिंह के वंश में है। जोधपुर में पहले दूधोड़ आदि 12 गाँव कृष्णसिंह की जागीर में थे और 10) रोज नकद खर्च में जुदा मिलते थे। जोधपुर के दीवान गोविन्दास भाटी ने वह तनख्वाह बंद कर दी तब कृष्णसिंह शहंशाह अकबर के पास चला गया।। सेठोलाव में उस वक्त घड़सिंहोत राजपूत थे और वहाँ का ठाकुर कृष्णसिंह का मौसेरा भाई था। उसको दावत में मदिरा पिलाकर बेहोश बनाया और साथियों सहित मारकर उसका इलाका लिया। सं. 1669 अपने नाम पर कृष्णगढ़ बसाकर राजधानी बनाया।[8] जगन्नाथ मिश्र के अनुसार किशनसिंह अपने भाइयों में छोटे होने के कारण जोधपुर की राजगद्दी के हकदार नहीं थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने जोधपुर त्याग दिया। अर्सकिन के अनुसार 1596 ई. के बाद अपने भाई राजा सूरसिंह से अनबन होने पर किशनसिंह जोधपुर छोड़कर अजमेर चला गया।

उक्त सभी तथ्यों के आधार पर यह स्वतः सिद्ध होता है कि किशनसिंह जोधपुर महाराजा उदयसिंह के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के पश्चात उनका बड़ा भाई सूरसिंह राजा बना जिससे अनबन होने पर जोधपुर छोड़कर अजमेर आ गए जहाँ पर अकबर के माध्यम से मुगलों से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध बने। किशनसिंह

की बहादुरी और वीरता को देखते हुए अकबर ने उन्हें हिंडौन क्षेत्र प्रदान किया तथा राजा की उपाधि भी प्रदान की। लेकिन किशनसिंह स्वाभिमानी एवं पराक्रमी योद्धा थे। वे यह सहन नहीं कर पाये कि किसी अन्य के दिए हुए क्षेत्र पर वह शासन करे। इसीलिए अकबर की मृत्यु के पश्चात जैसे ही जहाँगीर शासक बना उन्होंने हिंडौन क्षेत्र त्याग दिया और सेठोलाव के राव दूधाजी को परास्त करके अपने स्वतन्त्र रियासत किशनगढ़ राज्य की नींव रखी।

किशनगढ़ के स्थापना वर्ष को लेकर भी इतिहासकारों में मतभेद है। 'इम्पीरियल गजट' में इसका स्थापना वर्ष वि.सं. 1611 बताया है– In 1611 he founded the town of Kishangarh close to Setholao, which is now in ruins, and from this time the state began to be called by its present name[9] जबकि श्यामलदास के अनुसार कृष्णगढ़ राज्य की स्थापना किशनसिंह ने वि. सं. 1666 अर्थात् 1609 ई. में बसंत पंचमी के दिन गुन्दोलाव झील के सुरम्य तट पर पहाड़ियों के मध्य मनमोहक वातावरण में की थी।[10] नैणसी और कर्नल टॉड के अनुसार किशनसिंह ने वि. सं.1669 (1612 ई.) में किशनगढ़ राज्य स्थापित किया। इनके सहसमल, जगमाल एवं भारमल नामक तीन पुत्र हुए। भारमल का पुत्र हरिसिंह और हरिसिंह का पुत्र रूपसिंह हुआ जिसने रूपनगर बसाया था।[11] डॉ. अविनाश पारीक ने डॉ. फैयाज अली खान के शोध ग्रन्थ को आधार बनाकर लिखा है किशनगढ़ राज्य के स्थापित होने का सन् वास्तव में वि.सं. 1666 (1609 ई.) है जबकि उसकी स्थापना सेठोलाव में इसी सन् में राजधानी स्थापित करने के साथ हुई। किशनगढ़ नामकरण इसी स्थापना के साथ हो चुका था। 1612 ई. तो वास्तव में वर्तमान किशनगढ़ नगर के बसाने का समय है न कि राज्य के स्थापित होने का है।[12] जबकि कवि वृन्द ने अपने ग्रन्थ 'वचनिका' के पद्य संख्या 30 में किशनगढ़ की स्थापना की तिथि वि. सं. 1668 बताई है जिसके अनुसार यह 1611 ई. ठहरती है। कवि वृन्द कहते है–

संवत सोरठ अठसठै है सुभ मुहरत सुमथांन।
किसन बसायो किशनगढ़ सुथिर सुमेर समान।।[13]

इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराजा किशनसिंह ने 1609 अथवा इससे पहले ही किशनगढ़ क्षेत्र पर अधिकार कर लिया हो और उसके दो वर्ष बाद

विधिवत रूप से स्थापना की घोषणा की हो। इस प्रकार किशनगढ़ रियासत का विधिवत रूप से स्थापना वर्ष वि. सं. 1611 ई. ही ठहरता है।

कृष्णगढ़ राजघराने के शासकों का साहित्यिक परिदृश्य

साहित्य के क्षेत्र में किशनगढ़ राज्य अपनी अलग पहचान रखता है क्योंकि यहाँ के राज्याश्रय में केवल घनानंद और वृन्द जैसे महान साहित्यकारों ने ही कवित्व नहीं किया बल्कि यहाँ के राजाओं व राजकुंवरियों ने भी निरंतर साहित्य के क्षेत्र में अपनी रुचि बनाये रखी। किशनगढ़ राज्य के राजवंश ने यहाँ की कला, साहित्य एवं संस्कृति में रुचि बनाये रखी तथा सदैव यहाँ के कलाकारों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय दिया। यहाँ के राजवंश ने सत्रहवीं शताब्दी से लेकर लगभग बीसवीं शताब्दी तक साहित्यिक क्षेत्र में अपनी सेवा प्रदान की। लगभग चार शताब्दियों के इस काल का पूर्वार्द्ध भक्ति रस से तथा उतरार्द्ध शृंगार रस से परिपूर्ण काल था। ऐसे समय में यहाँ के कवियों ने राधा कृष्ण को अपना आलंबन बना कर अपनी भक्ति प्रदर्शित की। सलेमाबाद में स्थापित निम्बार्क पीठ का प्रभाव यहाँ के शासकों पर पड़ा जिससे उनके द्वारा रचित काव्य में राधा कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति भाव प्रदर्शित होता है। इसके साथ ही रीतिकालीन धारा प्रवाह में शृंगारिक रचनाओं का आविर्भाव भी विपुल मात्रा में हुआ। महाराजा मानसिंह, राजकुमार राजसिंह, महाराजा रूपसिंह, महाराज नागरीदास, महाराजा कल्याण सिंह, महाराजा मदन सिंह, महाराजा यज्ञनारायण सिंह, महाराजा जवान सिंह प्रभृति शासक एवं अनूप कुँवरी, सुंदर कुँवरी, ब्रज कुँवरी, छत्र कुँवरी प्रभृति रानियों एवं राजकुमारियों ने भी अपने कवित्व के माध्यम से कृष्ण उपासना की है। नागरीदास, राजमाता ब्रजकुँवरी (बाँकावती), बणी-ठणी, सुन्दरकुँवरी, छत्रकुँवरी आदि अत्यन्त प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं। बकौल मुनिकान्ति सागर के अविनाश पारीक ने लिखा है आश्चर्य की बात यह भी है कि जिस प्रकार कवि वृन्द के वंशजों में कवित्व प्रतिभा का निखार होता गया, उसी प्रकार आश्रयदाताओं में भी कवित्व विषयक शक्ति का प्रवाह कुछ वर्ष पूर्व तक अविच्छन्न गति से चला। महाराज मदन सिंह से पूर्व किशनगढ़ के सिंहासन पर ऐसा कोई नरेश नहीं हुआ, जिसने कोई न कोई स्वतंत्र ग्रन्थ न रचा हो, यहाँ तक कि रानियाँ भी प्रसिद्ध कवयित्रियाँ थीं।[14]

महाराजा किशनसिंह श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्तिभाव का उल्लेख करते हुए किशनगढ़ के कवि जयसिंह लिखते है –

श्री मन्नृत्य गोपाल के, है स्वरूप अभिराम।
छोटे श्याम सुजान हैं, बड़े रुचिर बलराम।।2।।
यह स्वरूप दोऊ सुखद, कृष्णसिंह महाराज।
पधराये निज सीस पै, कर सेवा सब साज।।3।।[15]

वीर योद्धा, परम भक्त एवं कवि महाराजा रूपसिंह की साहित्य में विशेष रुचि थी। अपने भावुक हृदय एवं भक्ति भाव के चलते उन्होंने लगभग 750 दोहों के ग्रन्थ 'रूपसतसई' की रचना की जो कि रीतिकाल का एक प्रसिद्ध भक्तिपरक ग्रन्थ है। इसमें रचित दोहे महाराजा रूपसिंह के लेखन कौशल का परिचय देते हैं। इन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रपौत्र गोपीनाथ दीक्षित से वल्लभ सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी। इनके पद भक्ति रस से युक्त हैं तथा बहुत ही सरस हैं। इनके पदों में युगल लीला का स्थान सर्वोपरि है। महाराज रूप सिंह की भक्ति-भावना, राधा-कृष्ण की गृह दम्पति रूप, विहार, गोपी-कृष्ण प्रेम, युगल-झाँकी, सखी भाव की उपासना, गुरु भक्ति आदि विविध रूपों में प्रकट हुई है। इनकी अधिकांश रचनाएँ भक्ति से ही सम्बन्धित है। इनके द्वारा रचित ब्रजभाषा पदों से यह निश्चित होता है कि वे सखी भाव के उपासक थे। ये संगीत और कला में निपुण थे। श्री कृष्ण के प्रति इनके अनन्य भक्ति भाव का परिचय इनके द्वारा लिखित एक पत्रिका से प्राप्त होता है –

प्रभुजी इहा रहे कछु नाही।
करिए गबन भवन दिशि अपने, सुनिये अरज गोसाई।
देखी बलख बरफ छू देखी, अधम असुद अवलोके।
मध्य प्रदेश देशहू मध्यम, इहां कहा ले रोके ?
भक्त बछल करुणामय सुख निधि, कृपा करो गिरधारी।
रूपसिंह प्रभु विरद लाजत है, ब्रज ले बसोऊ बिहारी।।[16]

प्रस्तुत पद महाराजा रूपसिंह के ईश्वर प्रेम के अतिरिक्त उनके काव्य कौशल का भी परिचय देता है। उन्होंने अनेक फुटकर पदों की रचना की जिससे

उनके काव्य में व्यक्त माधुर्य भाव की अनुभूति सहज ही हो जाती है जिनमें से एक पद यहाँ उद्धृत है –

अनियारे लोचन मोहन।
माधुरी मूरति देखत ही लालच लागी रह्यो मनमोहन।
हटकत मात तात यो भाखत लाज न आवत तोहन।
हों अपने गोपाल रंग राती काहि दिवावत सोहन।।
संध्या समय खटिक तें निकसी लिए दूध को दोहन।
रूपसिंह प्रभु नगधर नागर बस किनें है मोहन।।[17]

प्रभु के वियोग में रचित इनका यह पद दृष्टव्य है –

प्रभु जू इहाँ रहैं कछु नाई
करियै गवन भवन दिसि अपनैं, सुनिये अरज गुसाई
देखी बलख, बरफहू देखी, अधम असुर अवलोके
मध्यम देस, बेस हू मध्यम, इहाँ कहाँ लै रोके
भक्त-बछल करूणामय सुख-निधि, कृपा करो गिरधारी
'रूपसिंह' प्रभु विरद लजत है, ब्रज लैं बसो बिहारी।।

महाराजा रूपसिंह के पश्चात साहित्य एवं कला के प्रति विशेष रुचि महाराजा राजसिंह द्वारा रचित साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि वृन्द इनके गुरु थे। कवि वृन्द ने औरंगजेब के दरबार में पयोनिधि पर्यो चाहे मिसिरी की पुतरी[18] नामक समस्या की पूर्ति करके औरंगजेब को प्रसन्न किया। महाराजा राजसिंह भी आध्यात्मिक कवि एवं साहित्यकार थे जिन्होंने कविवृन्द को मुगल बादशाह शाहआलम से उपहार स्वरूप मांग कर अपने राजदरबार के नवरत्नों में स्थान दिया। महाराजा राजसिंह स्वयं भी ब्रजभाषा में युगल भक्तिपरक सरस पदों की रचना करने वाले भावुक कवि थे। इन्होंने अपने उपास्य युगम स्वरूप ठाकुर श्री राधासंयुक्त (बाँकावती) 'श्रीनगधरजी' के प्रति कविनाम 'नगधर' के नाम से विष्णुपद नामक वृहत् उत्सव लीला पदावली रची है, जिसमें उन्होंने विशिष्ठ ऋतुओं, पर्वों तथा वैष्णवी उत्सवों के माध्यम से स्वामिनी श्री राधाजी के

स्वकीयात्व दाम्पत्य की सरस अभिव्यंजनाएँ की हैं। राजसिंह ने लगभग 24 ग्रंथों की रचना की जो मुख्यतः वैष्णव मंदिरों में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्वों से सम्बन्धित है। जिनमें बृज भाषा से सम्बन्धित संगीतात्मकता एवं मधुरता इनके पदों को और भी अधिक विशिष्ट बनाती है। राजसिंह द्वारा रचित दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिसमें 'बाहू विलास' शृंगार रस से ओत-प्रोत है, जिसमें मुख्यतः रुकमणी के विवाह का प्रसंग है। दूसरा ग्रन्थ 'रसपाय नायक' है जिसमें दो सखियों के संवाद का वर्णन है। राजसिंह द्वारा रचित कुछ फुटकर पद प्राप्त होते हैं जिनमें से एक यहाँ उद्धृत है–

ए अखिया प्यारे जुलम करें।
यह महोटी लाज लपेटी झुक-झुक घूमें भूम परें।।
नगधर प्यारे होउहुन न्यारे हाहा तोसों कोटि रें।
राजसिंह को स्वामी श्री नगधर बिन देखे दिन कठिन भरें।।[19]

साहित्य सेवा में रत परिवार से सम्बद्ध होने के कारण महाराजा सावंतसिंह की शिक्षा-दीक्षा का कार्य साहित्यिक वातावरण से परिपूर्ण ऐसे ही अनुपम संस्कारों के मध्य पूर्ण हुआ। बचपन से ही कविता में उनकी विशेष रुचि थी इसीलिए वे 'नागरीदास' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। वे एक राजा के रूप में बहुचर्चित न होकर एक कृष्ण भक्त, विचारक, कवि, संत तथा कला मर्मज्ञ के रूप में विख्यात हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी महाराज नागरीदास हृदय से राजा कम तथा भक्त अधिक थे। वे संस्कृत, फारसी, संगीत, कला, शास्त्र विद्या, चित्रकला आदि के अच्छे ज्ञाता थे। चित्रकला ने इनको इतना प्रभावित किया कि इनका सम्पूर्ण साहित्य ही चित्रमय बन पड़ा है। प्रिया-प्रीतम के अनेकानेक शब्द रेखाचित्र नागरीदास काव्य की धरोहर हैं। लेकिन बड़े होने पर पारिवारिक कलह और राजनीतिक षड्यंत्रों के कारण उनका सांसारिकता और राजसत्ता से मोहभंग हो गया। वे अपनी कविता के माध्यम से अपने इस भाव की व्यंजना करते हुए कहते हैं—

जहाँ कलह है, तहाँ सुख नाहीं, कलह दुखन को मूल।
सभी कलह इक राज में, राज कलह को मूल।।[20]

तत्पश्चात् सावंतसिंह जी वृन्दावन चले गये तथा वहाँ रहकर 'नागरीदास'

उपनाम से रचना करने लगे। सावंतसिंह जी का राजपाठ त्याग कर भक्ति मार्ग की ओर प्रयाण करना उनके कवित्व पूर्ण भावुक हृदय एवं भक्तिभाव को प्रदर्शित करता है। उन्हें संगीत, कला, शास्त्र विद्या, चित्रकला, फारसी, संस्कृति आदि का अच्छा ज्ञान था तथा साथ ही इनमें उनकी विशेष रुचि भी परिलक्षित होती है।

नागरीदास जी कृत 'नागरसमुच्चय' में लिखित नागरीदास जी के जीवन परिचय के अंतर्गत नागरीदास जी को श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्य परम्परा में माना गया है। इनके विषय में भारतेंदु जी लिखते हैं—

हरिप्रेममाल रस जाल के नागरीदास सुमेर ने।
वल्लभ पंथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड़यो।
धन जन मान कुटुंबहि वाधक लखि मुख मोडयो।।[21]

नागरीदास जी द्वारा रचित सम्पूर्ण ग्रंथों का संग्रह 'नागरसमुच्चय' है, जिसमें नागरीदास जी द्वारा रचित कुल 69 काव्य ग्रन्थ संगृहीत हैं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ 'इश्क चमन' पर सूफी काव्य का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जिसके प्रतिउत्तर में मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह ने 'रसिक चमन' ग्रन्थ की रचना की। हृदय में भक्तिपरक संतोष जागृत करने वाला नागरीदास जी द्वारा रचित पद इस प्रकार है—

हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करी श्रीकुंजबिहारिनि अरु श्रीकुंजबिहारी।
राख्यो अपने वृन्दावन में जिहिको रूप उन्ज्यारी।
नित्त केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी।।
कलह कलेस न व्यापै इहिठां ठौर विश्वतें न्यारी।
नागरीदासहि जनम जिवायौ बलिहारी बलिहारी।। 1।।[22]

किशनगढ़ राज्य की चित्रकला का पर्याय बनी बणी-ठणी अपने उपनाम रसिक बिहारी से काव्य सर्जन करती थीं। इनके सन्दर्भ में मान्यता है कि ये किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह की द्वितीय महारानी ब्रजकुँवरी (बाँकावती) के यहाँ पासवान के रूप में रही थी। बणी-ठणी का वास्तविक नाम

विष्णुप्रिया था। बाल्यकाल से ही इनकी श्रृंगार एवं साहित्य में विशेष रुचि थी। इसी कारण वे सदैव नख से लेकर शिख तक सजी धजी रहती थी और मारवाड़ में सज-धज कर रहने वाली स्त्री को बण-ठण कर रहने वाली कहा जाता है। विष्णुप्रिया हर समय श्रृंगार करके सज-धज कर ही रहती थी इसीलिए विष्णुप्रिया राजमहल में बणी-ठणी नाम से विख्यात हुई। ये अपने उपनाम 'रसिक बिहारी' से काव्य सर्जन के कार्य में रत रहती थी। आलोचकों का मानना है कि बणी-ठणी महाराजा सावंतसिंह (नागरीदास) के साथ आजीवन वृन्दावन में रही थी। नागरीदास द्वारा संकलित 'पद मुक्तावली' में बणी-ठणी की रचनाएँ सम्मिलित हैं। नागरीदास द्वारा रचित ग्रन्थ 'नागर समुच्चय' में इनके सौ से भी अधिक पद रसिक बिहारी नाम से संकलित है। इनके पदों पर श्री वृन्दावन देवाचार्य द्वारा रचित वृन्दावनवाणी 'गीतामृग गंगा' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इनके द्वारा रचित श्री राधा एवं श्री कृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित पद इस प्रकार है–

मोहन म्हारे थे कांई हाठ लाग्या छोजी।
जाबां द्यौं घर, छोड़ों छेहड़ों, रस बातां पाग्या छोजी।।
आंख्यां थांकी रतनाली, सारी निस रा जाग्या छोजी।
'रसिक बिहारी' प्यारा म्हानै थैं, औरां सू अनुराग्या छोजी।।[23]

इनके द्वारा रचित पदों में श्री राधाकृष्ण के जन्मोत्सव एवं प्रेमलीला, सांझीलीला, राधाजी का मान, अभिसार, विरह संयोग, सुरति तथा विविध ऋतुपर्वादी का वर्णन मिलता है। 'सालूड़ा बेस' की लोक परम्परा श्रीराधाजी के वर्णन से सम्बन्धित पद इस प्रकार है-

प्यारी जी का सालूड़ा मैं आवै छै सुगंधी रूड़ी बास।
अंग भरमजी गंध लुभाया भंवर भवै आसपास।।
लटपटै बेस आणि ऊभा रह्या आँगण कुंज निवास।
रसिक बिहारी पवन दुरावै खासा होय खवास।।[24]

श्री कृष्ण के तीखे नयनों का वर्णन करते हुए वे कहती है–

तीखे नैन कन्हाई तैंडे पल-पल जुल्म करन्दे।
भौंहें तो कमान बनी हैं, पलकैं, तीर परंदे।।

कित्ते घायल परे कराहें, दिल नहीं धीर धरंदे।
रसिक बिहारी नित वार करंदे टारे नहीं टरंदे।।[25]

दूसरी रानी महारानी बांकावती का वास्तविक नाम ब्रजकुंवरी था परन्तु विवाहोपरांत बांकावत गौत्र में उत्पन्न होने के कारण इन्हें बांकावती नाम से जाना जाने लगा। इन्होंने श्रीमद्भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद 'ब्रजदासी भागवत' नाम से प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ की रचना दोहा-चौपाई छंद में हुई है। इस ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक ब्रज है किंतु राजस्थानी शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग द्दष्टव्य है। इनका कविता काल वि.सं. 1790 के आस-पास माना जाता है।

सुन्दरकुंवरी का जन्म रूपनगर में 1734 ई. में हुआ। इनकी माता ब्रजकुंवरी एवं सौतेले भाई सावंतसिंह थे जिनके सानिध्य से साहित्यिक क्षेत्र में इनकी रुचि जागृत हुई। सुन्दरकुंवरी ने सलेमाबाद के श्री निम्बार्कतीर्थ पीठाधीश्वर श्री वृन्दावन देवाचार्य जी से निम्बार्क वैष्णवीय दीक्षा ग्रहण की जिसका उल्लेख सुन्दरकुंवरी ने अपने ग्रन्थ 'मित्र शिक्षा' में अपना परिचय देते हुए किया है–

श्री वृन्दावन देव प्रभु, तिनकी दासित छाप।
लह बाल वय में सबहि, उदये भाग्य अमाप।।
श्री प्रभुजी निज दास्ता, छाप जवै मोहि दीन।
तव वय वर्ष चतुर्थु में, हौं जु हुती मति हीन।।[26]

सुंदरी कुंवरी की काव्य और संगीत दोनों में ही विशेष रुचि थी। उन्होंने मात्र पंद्रह वर्ष की आयु में ही साहित्य सर्जन का कार्य आरम्भ कर दिया था। संगीत में विशेष रुचि होने के फलस्वरूप उन्होंने अपने पदों में संगीत की तकनीक का उपयोग करके उन्हें व्यवस्थित किया। इन्होंने राधा कृष्ण को अपनी भक्ति का आलंबन बनाया जिसमें इन्होंने राधा कृष्ण की युगल रूप में उपासना की है। इन्होंने मुख्य रूप से श्रृंगार रस से ओत-प्रोत भक्ति पदों की रचना की है। इन्होंने कई साहित्यिक ग्रंथों की रचना अपने जीवन काल में की जिसमें 'नेह निधि', 'वृन्दावन गोपी महात्मय', 'संकेत-युगल', 'रंघर गोपी महात्मय', 'रसपुंज', 'प्रेम सम्पुट', 'सुर संग्रह', 'भाव प्रकाश', 'मित्र शिक्षा', 'युगल

ध्यान' तथा 'राम रहस्य' आदि ग्रंथों की रचना की। इनके द्वारा लिखित भक्ति ग्रंथों में श्री कृष्ण के बालरूप का बहुत ही सुन्दर वर्णन मिलता है–

रज मांहि मगन कैसो खेलत है।
सुभग चिकुट तन धूरि धूसरित डेलिक किलक सकेलत है।
चौंकि चकित चंहु औरनि चितवत छिपि माटी मुख मेलत है।
सुन्दर कुंवरी घुटुरुनी दौरत कोटिन छवि पग पेलत है।[27]

सुन्दरकुंवरी अपने ग्रन्थ 'रसपुंज' में नृत्यरत श्री कृष्ण को देखकर राधा और गोपियों के मन में उठने वाले भावों का चित्रण करती हैं-

स्याम रूप सागर में नैन वार पार थके,
नाचत तरंग अंग अंग रगमगी है।
गाजन गहर धुनि, बाजन मधुर वैन,
नागिन अलग जुग सोंधे सगमगी है।
भँवर त्रिर्भताई, पान मैं लुनाई,
तामें मोती मणि जालन की जोतिजगमगी है।
काम पौन प्रबल घुकान लोपी लाज तातें,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है।।[28]

छत्र कुंवरी किशनगढ़ के महाराजा सरदार सिंह जी की पुत्री थी। इनको 'सिरताज कुंवरी' के नाम से भी जाना जाता है। कवित्व शक्ति इन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली थी। इन्होंने 1788 ई. में श्रृंगार रस से पूरित 'प्रेम विनोद' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें अपने वंश का परिचय देते हुए ये लिखती हैं–

रूप नगर नृप राज सिंह जिन सुत नागरीदास
तिन पुत्र जू सरदार सिंह, होत न यामें जास।

इन्होंने अपने ग्रन्थ में श्री कृष्ण और राधा के युगल किशोर की विभिन्न क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। एक पद में इन्होंने चौसर खेलने का वर्णन किया है–

बाढ़ी चित चाह दोऊ, खेलत उमाह भरे।
दसा प्रेम पूर छिल अंग दरसत हैं।
प्रेम दांव देत प्रिय झूंठे ही रूंगट कहै
गहै पानि-पानि रिस मिसै परसत हैं।[29]

महाराजा बहादुरसिंह कलाप्रेमी और संगीत प्रेमी थे। सुन्दर कुंवरी की तरह इन्होंने भी संगीतात्मक कविताओं की रचना की। इनके द्वारा रचित दो-दो और तीन-तीन तुकों के ख्याल और टप्पे प्रसिद्ध है। जैसे–

हा हा बदन दिखाय दृग, सफल करें सब कोय।
रोज सरोजन के परै, हँसी ससी की होय।।
दुलहिन बदन दुरात हौ, क्यो सकुचति सुकुमार।
सब देखन आतुर भई; चातुर पट निरवार।।
घूंघट पट खोल्यो सखी, भोरी दृग लटकाय।
मनो मदन ससि-मीन कूं, डोरी-जाल सुलाय।।[30]

हालांकि इनकी साहित्य क्षेत्र में रुचि थी लेकिन साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशेष योगदान नहीं दे पाए।

महाराजा कल्याणसिंह भी कविता लेखन का कार्य किया करते थे इनके द्वारा रचित एक बधाई प्रसिद्ध है–

आनंद बधाई नन्द जू के द्वार।
ब्रह्मा विष्णु रूद्र धुन कीनी तिन लीनो अवतार।।
जनमत ही घर घर प्रति लक्ष्मी बांधत बदनवार।
भूप कल्याण कृष्ण जन्महि पे तन मन कीनो वार।।[31]

महाराजा मदनसिंह के बाद महाराजाधिराज श्री यज्ञनारायण सिंह जी किशनगढ़ के उत्तराधिकारी बने। यज्ञनारायण सिंह जी बाल्यकाल से ही कृष्ण उपासना में रत रहते थे। 'किशनगढ़ राजवंश की पुष्टिमार्गीय काव्यकृतियाँ' में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित इनके पद संकलित है। यज्ञनारायण जी द्वारा रचित इन पदों में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन, वैराग्य व भक्ति, ब्रज वर्णन,

वृन्दावन-प्रेम, कलिकाल वर्णन, कृष्ण भक्ति, राधा कृष्ण का युगल प्रेम आदि का वर्णन हुआ है। इनके द्वारा रचित पद इस प्रकार है–

सखी है सब जुर जुर आई खेलन फाग बसंत पंचमी आज।
नये नये पुष्प नये नये पतुवा अरी कुछ गडवा लई साज।।
नये नये वषन नये नये भूषण मदन मदन ही को राज।

उपर्युक्त किए गए समग्र विवेचानोपरांत निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्णगढ़ रियासत के अनेक शासकों ने साहित्यिक सेवा की है। इन सबके आराध्य श्री कृष्ण हैं, जिन्हें आधार बनाकर साहित्य-सर्जन कर माँ भारती के भण्डार में श्रीवृद्धि की है।

पाद टिप्पणियाँ –

1. Imperial Gazetteer Of India Provincial Series Rajputana, Published By Books Treasure, Jodhpur, 2007 Page No 271
2. डॉ. अविनाश पारीक, किशनगढ़ का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृ. सं. 145
3. डॉ.अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ. सं.13
4. डॉ. मोहनलाल गुप्ता, 'किशनगढ़ राज्य का इतिहास', शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, पृ. सं. 18
5. अनुवादक दूगड़ रामनारायण, संपादक ओझा रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद, 'मुँहणोत नैणसी री ख्यात' प्रकाशक राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण 1934, पृ. सं. 148
6. अनुवादक दूगड़ रामनारायण, संपादक ओझा रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद, 'मुँहणोत नैणसी की ख्यात' प्रकाशक राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण 1934, पृ. सं.141
7. Impreial Gazetteer of India Provincial Series Rajputana, Published By Books Treasure, Jodhpur, 2007 Page No 271
8. अनुवादक दूगड़ रामनारायण, संपादक ओझा रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद, 'मुँहणोत नैणसी की ख्यात' प्रकाशक राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण 1934, पृ. सं. 148
9. Impreial Gazetteer Of India Provincial Series Rajputana, Published By Books Treasure, Jodhpur, 2007 Page No 271

10. श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. सं.522
11. टॉड कर्नल जेम्स, राजस्थान का इतिहास, अनुवाद-बलदेव प्रसाद पृ. सं.63
12. डॉ.अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ. सं.15
13. डॉ.अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ. सं.15
14. डॉ. अविनाश पारीक, किशनगढ़ का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ सं. 145)
15. डॉ.राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा', अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 99
16. डॉ.अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.147
17. डॉ. राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा',अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं.102
18. hi.wikipedia.org/wiki/वृन्द
19. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.148
20. डॉ. फ़ैयाज अली खाँ, 'भक्तवर नागरीदास', अभिनव प्रकाशन, अजमेर प्रथम संस्करण 2015, पृ.सं.26
21. नागरीदास, 'नागर समुच्चय', पृ.सं.4, दोहा संख्या 93
22. नागरीदास, नागर समुच्चय', पृ.सं.30, दोहा संख्या 118
23. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.160
24. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.160
25. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.160
26. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.151
27. डॉ. मोहनलाल गुप्ता, 'किशनगढ़ राज्य का इतिहास',शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, पृ.सं.112
28. डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.153

29. डॉ. मोहनलाल गुप्ता, 'किशनगढ़ राज्य का इतिहास', शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, पृ.सं. 112
30. डॉ. राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा', अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 142
31. डॉ. राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा', अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 143

डॉ. सुरेश सिंह राठौड़
सह आचार्य हिंदी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बांदरसिंदरी, किशनगढ़
email:srathorecuraj.ac.in

भगवती सोनी
शोधार्थी हिंदी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय
बांदरसिंदरी, किशनगढ़
email:bhagucurajgmail.com

❑❑❑

राजस्थानी चित्रों में शबीह अंकन : एक कलात्मक अध्ययन

• डॉ. शैलेन्द्र कुमार

राजस्थान के विभिन्न केन्द्रों में राजकीय संरक्षण में 16वीं शती के अन्त से 19वीं शती के अन्त तक बहुत बड़ी संख्या में चित्र बने हैं। इनका काफी बड़ा भाग उपलब्ध है परन्तु अभी भी कितना अनुपलब्ध है अथवा नष्ट हो चुका है इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है कुछ सीमा तक हम कह सकते हैं कि चित्र भी समाज का दर्पण है। दूसरे शब्दों में तत्कालीन जीवन पद्धतियों के विभिन्न पहलुओं को समकालीन चित्रों में उतारा गया है। संस्कृत साहित्य में जहाँ चित्रकला की अन्य विधाओं का वर्णन उपलब्ध है, वहीं व्यक्ति चित्र की कला पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्मय में इसे अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। तिलकमंजरी में व्यक्ति चित्र के लिए 'प्रतिबिम्ब चित्र' का प्रयोग हुआ है। प्रतिबिम्ब चित्र के लिए प्रतिकृति चित्र, सादृश्य चित्र, प्रतिच्छन्दक चित्र, विद्धशालमांजिका का भी प्रयोग किया गया है। चित्रसूत्रम में इसे 'सत्य चित्र' की संज्ञा दी गई है। कादम्बरी में इसे 'सच्चरितमित्र' कहा गया है। फारसी में इसे 'शबीह' तथा आंग्ल भाषा में इसे प्रोट्रेट नाम दिया गया।

बीज शब्द : *राजस्थान, प्रतिच्छन्दक चित्र, विद्धशालमांजिका, कादम्बरी, तिलकमंजरी*

भारतीय चित्रकला के परिदृश्य में राजस्थानी चित्रकला का अपना महत्वपूर्ण निजस्व है। पहले राजस्थानी शैली के उद्भव को लेकर विद्वानों में तीक्ष्ण मतभेद था परन्तु अब ये निश्चित हो गया कि राजस्थानी शैली का उद्भव 16वीं शती के प्रारम्भ में हो गया था। राजस्थानी चित्रशैली एक नये युग का

प्रतिनिधित्व करती है, वह एक बड़े सांस्कृतिक आन्दोलन का एक अंग थी। इस सांस्कृतिक आन्दोलन के अन्तर्गत धार्मिक सम्प्रदाय, संगीत, काव्य आदि के क्षेत्रों में क्रान्ति आयी। वास्तुकला पर भी इसका प्रभाव पड़ा और एक नई शैली अपने-अपने प्रान्तीय भेदों के साथ चल पड़ी।

राजस्थान के विभिन्न केन्द्रों में राजकीय संरक्षण में 16वीं शती के अन्त से 19वीं शती के अन्त तक बहुत बड़ी संख्या में चित्र बने हैं। इनका काफी बड़ा भाग उपलब्ध है परन्तु अभी भी कितना अनुपलब्ध है अथवा नष्ट हो चुका है इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है कुछ सीमा तक हम कह सकते हैं कि चित्र भी समाज का दर्पण है। दूसरे शब्दों में तत्कालीन जीवन पद्धतियों के विभिन्न पहलुओं को समकालीन चित्रों में उतारा गया है। मध्यकालीन राजपूत संस्कृति मुख्य रूप से परम्परावादी थी और उन परम्पराओं की रक्षक थी क्योंकि परिवर्तन के प्रभाव चारों ओर से पड़ रहे थे इनमें प्रमुख भारतीय मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव था। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि यह द्विपक्षीय था अर्थात् दोनों ओर से लेन-देन का प्रकरण निरन्तर चल रहा था हमारे इस काल सीमा तक आते-आते राजपूतों का सम्पर्क मुगल दरबार से लगभग 150 वर्षों से था और दोनों के बीच गहरे स्तर पर उन्मुक्त सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। इस सबके मुखर साक्षी चित्र हैं।

राजस्थानी चित्रों में राजपूत-मुगल दरबारी संस्कृति पूरी तरह से प्रतिबिम्बित है। इनमें दरबार और अन्तःपुर के दृश्य तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, शिकार के दृश्य कभी-कभी युद्ध के दृश्य आदि मिलते हैं। स्थानीय विशेषताओं को छोड़कर इनमें समान संस्कृति का प्रभाव मिलता है। कहीं-कहीं तत्कालीन बिम्बों को भी हम पाते हैं जैसे मालवा शैली के प्रसिद्ध चित्र कुम्भकर्णी निद्रा में हम तुरही, ढोल, मजीरे का प्रयोग पाते हैं जो समीचीन है पर साथ-साथ एक सैनिक राक्षस की छाती पर सवार होकर बन्दूक दाग रहा है। शोर मचाने का यह भी एक तरीका था।

संस्कृत साहित्य में जहाँ चित्रकला की अन्य विधाओं का वर्णन उपलब्ध है, वहीं व्यक्ति चित्र की कला पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्मय में इसे अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। तिलकमंजरी में व्यक्ति चित्र के लिए 'प्रतिबिम्ब चित्र' का प्रयोग हुआ है। प्रतिबिम्ब चित्र के लिए प्रतिकृति चित्र, सादृश्य चित्र, प्रतिच्छन्दक चित्र, विद्धशालमांजिका का

भी प्रयोग किया गया है। चित्रसूत्रम में इसे 'सत्य चित्र' की संज्ञा दी गई है। कादम्बरी में इसे 'सच्चरितमित्र' कहा गया है। फारसी में इसे 'शबीह' तथा आंग्ल भाषा में इसे प्रोट्रेट नाम दिया गया।

भारतीय चित्र सम्बन्धी ग्रन्थों के अनुसार चित्रित व्यक्ति की वाह्य आकृति और आन्तरिक प्रकृति जो वाह्य आँखों द्वारा सामान्य व्यक्तियों को दिखाई नहीं देती उसी को चित्रकार अपनी तूलिका शक्ति द्वारा दिखाता है, यही वाह्य और आन्तरिक आकृति का सामंजस्यपूर्ण अंकन व्यक्तिचित्र है। भारतवर्ष में व्यक्ति चित्र (पोट्रेट) कितने प्राचीन काल से है इस विषय में कई मत हैं परन्तु यहाँ उनके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 16वीं शती के प्रारम्भ से चित्रों में हमें निश्चित व्यक्ति चित्र मिलने लगती है उदाहरण के लिए नियामतनामा की सचित्र प्रति में ग्यासशाह खिलजी की व्यक्ति चित्र (खण्डालावाला, एवं मोतीचन्द्र, बम्बई, 1969) (देखिये चित्र सं.-1)।

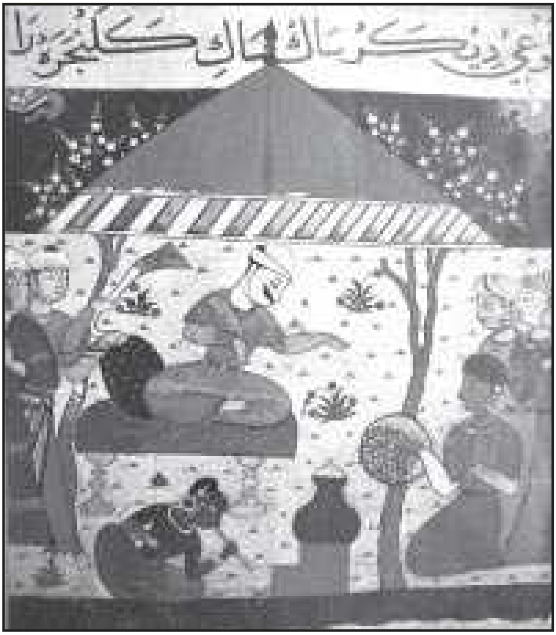

चित्र सं.-1 नियामतनामा, भारतीय सुल्तानी शैली, ल. 1450-1500 ई., इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन

मुगल शासकों को व्यक्ति चित्र बनवाने का बहुत शौक था। राजपूत राजा मुगल शासकों के सम्पर्क में आये और वहाँ के चित्रकारों के द्वारा चित्रित व्यक्ति चित्रों को देखा तो उन्होंने भी अपनी तथा अपने सभासदों, पारिवारिक व्यक्तियों जिनमें रानियाँ भी सम्मिलित थीं व्यक्ति चित्र बनवायें।

राजस्थानी शैली में 17वीं से 19वीं शती तक प्रत्येक केन्द्र में शबीहें बनीं जिनमें प्रतिपालक राजा स्वयं अपना चित्र, सरदारों, सेवकों आदि का चित्र बनवाते थे। चित्रकार का प्राथमिक कर्तव्य था कि अपने प्रतिपालक राजा को उसके उदात्तपक्ष के साथ शबीह में उपस्थित करे। कुछ राजाओं के व्यक्तिचित्र तो ऐसे हैं मानो वेशभूषा और आभूषणों की सूचना देने वाले संग्रहागार हों। इनमें राजाओं एवं दरबारियों के चुन्नटदार लहंगे, कुछ अलंकृत पगड़ियां उल्लेखनीय हैं। दरबार और अन्त:पुर के दृश्यों में राजाओं की व्यक्ति चित्र आत्मगौरव बढ़ाने के लिए होती थीं। इसके साथ ही जीवन की अनेक चर्चायें भी शबीहों के माध्यम से मिलती हैं जैसे—घुड़सवारी, उत्सव, नौकायन आदि के दृश्य।

चित्र सं. 2 महाराजा माधोसिंह, जयपुर, ल. 1760-65,
नेशनल गैलरी ऑफ विक्टोरियां, आस्ट्रेलिया

 ISSN 2278-4632

18वीं शती की राजकीय वस्त्राभूषण के अध्ययन के लिए हम राजा माधो सिंह की व्यक्ति चित्र को लेते हैं जो इस समय नेशनल गैलरी ऑफ विक्टोरिया कलेक्शन मेलबर्न में संग्रहीत है। (टाप्सफील्ड्र, 1980) इसे बख्ता नामक चित्रकार ने 1760-65 के बीच चित्रित किया था। यह चित्र जयपुर शैली का है इसमें राजा उत्तर मुगल शैली प्रकार के वस्त्र पहने हैं उनके जामे में बहुत से फोल्ड्स पड़े हैं उंगलियों में विभिन्न रत्नों से युक्त अगूँठी हैं। राजा के मुख के पीछे प्रभामण्डल है, पगड़ी के ऊपर कलगी और नीचे की तरफ झूमर की तरह कुछ लटक रहा है। कुल मिलाकर यह चित्र आभूषण और वस्त्र के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार इसी संग्रह की माधो सिंह की एक अन्य व्यक्ति चित्र के द्वारा भी हमें सांस्कृतिक जीवन की झलकियां मिलती हैं। (टाप्सफील्ड्र, 1980) (चित्र सं. 2)

पहली विशेषता के रूप में हमें तत्कालीन वस्त्र विधान और विशेष रूप से उसका स्थानीय स्वरूप जैसे पगड़ी की शैली। यहाँ पर महाराणा का घेरदार जामा तत्देशीय और तत्कालीन स्वरूप को दर्शाता है इस काल में झीने सादे सफेद वस्त्रों का प्रयोग अधिकांश चित्रों में मिलता है जो यहाँ भी है और इसे और भी अधिक अच्छे रूप में हम इनकी खड़े बल की व्यक्ति चित्र में पाते हैं। जामे के नीचे से रंगीन बन्डी झलक रही है। इस चित्र में पगड़ी स्थानीय प्रकार की है। यह सिर से चिपटी हुई टोपी के समान है परन्तु उसका चुना हुआ छोर पीछे की ओर दिखलाया गया है। इसी प्रकार के एक अन्य चित्र के द्वारा हमें दूसरी विशेषता का पता चलता है जो राजकीय फर्नीचर के अलंकरण को दर्शाता है यहाँ पर माधोसिंह एक अलंकृत सिंहासन पर बैठे हैं, सिंहासन भव्य हैं उसके दोनों पार्श्वो में कोहनी टेकने के लिए बैठे हुए सिंह बनाये गये हैं। राजा का भारी भरकम शरीर उनके पीछे और आगे तकियों पर टिका है। राजा सफेद मनकों की सुमरिनी चला कर जप कर रहे हैं। इस चौकी के सिंहासन की पीठ एक चौड़े पत्ते के समान फैली हुई है जो सम्भव है कि यूरोपिय एकन्थस पत्ते से ग्रहण की गयी हो जिसका स्थानीय रूप बहुत प्रचलित था। इस चौकी के पायों में बैठे हुए सिंह के द्वारा इसका सिंहासन रूप प्रगट होता है, सामने छोटे आकार की दो पुतलियाँ हैं जिनके हाथ में फूल, चंगेर आदि है, तीसरी विशेषता के रूप में हमें महाराणा को वैभवशाली जीवन व्यतीत करते हुए भी गहरी धार्मिक प्रवृत्ति को पाते हैं जिसका परिचय हमें उनके ध्यान मग्न होकर सफेद मनको की माला फेरने में

मिलता है। सम्भवतः इसी वातावरण को दिखलाने के लिए वह एकान्त में हैं उनके साथ अनुचर इत्यादि नहीं दिखलाये गये हैं।

नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली संग्रह में किशनगढ़ शैली की राजा हरीसिंह की व्यक्ति चित्र है। जिसका समय 1750 ई. है। (माथुर, 2000) इस चित्र के द्वारा हम 1750 ई. की राजकीय संस्कृति के उदाहरण देखते हैं। इस चित्र पर मुगल शैली के चित्रों की भरपूर छाप है जो उनके वस्त्र, आयुध और रत्न आदि में देखी जा सकती है। राजा हरीसिंह एक सूनी पृष्ठभूमि में खड़े हैं जिसका अन्त रेत के बड़े-बड़े ढूहों में दिखलाई पड़ता है सम्भव है उन्हें नगर से बहुत दूर दिखलाने के प्रयास में चित्रकार ने इस प्रकार का रेगीस्तानी वातावरण प्रस्तुत किया है परन्तु उसके बाद वाली घाटी में अत्यन्त सूक्ष्म आकृतियाँ तथा जीवन के अनेक दृश्य दिखलाये गये हैं जिनका वास्तविक उद्देश्य राजा का वैभव प्रगट करना था। इस चित्र के प्रारम्भ में दो बैलगाड़ियाँ हैं जिन पर सम्भवतः एक-एक शिकारी चीते बैठे हैं, कुछ घुड़सवार, भालाबरदार पीछे-पीछे चल रहे हैं। जिससे यह लगता है कि यह दृश्य शिकार के लिए प्रस्थान का था। इसके बाद वाली घाटी में बहुत बड़ी संख्या में घुड़सवार, पैदल, झण्डे बरदार आदि चल रहे हैं और किनारे पर कई हाथी दिखलाये गये है जिनमें एक-दो पर अम्बारी रखी है। इस सारे दृश्य में आकृतियाँ ठसाठस भरी हैं कहीं भी तिल रखने की जगह नहीं बची है। किशनगढ़ शैली में यह विशेषता है कि प्रत्येक विभाग में बहुत अधिक विवरण है। अन्त में नगर का एक दृश्य है जहाँ शिवालयों के दो झण्डायुक्त शिखर हैं। दूर पर नगर का चित्रण अकबर काल से मुगल चित्रों में मिलने लगता है।

मारवाड़ शैली की व्यक्ति चित्रण की परम्परा का सुन्दर नमूना हमें राज्य संग्रहालय, लखनऊ में संग्रहीत महाराजा अजीत सिंह की शबीह (राजकीय संग्रहालय, लखनऊ) से लगता है इसमें राजा के एक हाथ में तलवार है और दूसरे हाथ में फूल है जिसे उन्हें सूंघते हुए दिखाया गया है। चित्र के पीछे इनका नाम लिखा हुआ है। इसमें राजा का चौड़ा माथा व लम्बी कलमें, तलवार जैसी मूँछे हैं जो कि मारवाड़ शैली की पहचान है राजा घेरदार जामा और कई प्रकार के आभूषण पहने हैं। राजा के हाथ में फूल चित्रित करना भी राजस्थानी शैली में काफी प्रचलित था। केवल राजाओं, महाराजाओं की शबीहों का चित्रण चित्रकार ने नहीं किया अपितु चित्रकार ने अपनी भी शबीहों को चित्र बनाते हुए दिखाया।

कुमारसम्भव की एक सचित्र प्रति में एक पन्ने पर प्रकारान्तर से एक स्थानीय चित्रकार का अंकन हुआ है (वशिष्ठ, 1995) यह चित्र कुँवर संग्राम सिंह संग्रह, जयपुर में संग्रहीत है इसका समय लगभग 1695 ई. का है (चित्र सं. 3)। इस चित्र में एक चित्रकार पारम्परिक वीरासन मुद्रा में जाँघ पर पटली रखे हुए है, वह रंगों की प्यालियों से घिरा हुआ है उसके पार्श्व में छोटा-सा

चित्र सं. 3 कुमारसम्भव का पत्रा, मेवाड़, ल. 1690-95 ई., कुँवर संग्राम सिंह संग्रह

बस्ता और कुछ अन्य सामग्रियाँ भी दिखलायी गयी हैं, एक कोने में उसकी कटार रखी हुई है परन्तु इस दृश्य में एक दो कठिनाईयाँ भी दिखलायी पड़ती हैं। प्रथम तो उसकी उंगलियों में एक कलम के समान वस्तु है जो सामान्य तूलिका से भिन्न है दूसरे उसके तैयार किये हुए चित्र का आकार भी तत्कालीन राजस्थानी चित्रों से मेल नहीं खाता, यद्यपि अपभ्रंश शैली के 15वीं शती वाले ग्रन्थ चित्रों में कभी-कभी ठीक इसी प्रकार की पटली और चित्र दिखलाई पड़ते हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चित्र का इतना अंश परम्परा से लिया गया था। चित्रकार को एक स्त्री की आकृति पर कलम चलाते हुए दिखाया गया है। सम्भवतः चित्र का विषय नवयौवना पार्वती है। इसके माध्यम से हम

तत्कालीन मेवाड़ी अथवा राजस्थानी चित्रकार की झलक पाते हैं। यह चित्रकार अलंकरणों से सुसज्जित धनवान व्यक्ति मालूम पड़ता है जो तत्कालीन परिस्थितियों से भिन्न है क्योंकि हमें चित्रों पर ही दिये हुए अंकों से ज्ञात है कि इन चित्रों का दाम बहुत स्वल्प होता था। अतः यहाँ एक कल्पित और आदर्श स्थिति के अन्तर्गत चित्रकार को देखते हैं।

18वीं शती के उत्तरार्द्ध का एक चित्र जिसमें बूँदी शैली के चित्रकार कनिराम की व्यक्ति चित्र है। यह नेशनल म्यूजियम संग्रह, नई दिल्ली में संग्रहीत है (बीच, 1974) (चित्र सं. 4)। यह चित्र नील कलम शैली में बना है, इस चित्र के माध्यम से चित्रकार की सामाजिक स्थिति की सूचना मिलती है यहाँ चित्रकार वीरासन मुद्रा में बैठा है अर्थात् वह एक पैर मोड़े हुए है सम्भवतः

चित्र सं. 4 चित्रकार कानिराम, बूँदी, ल. 1760,
नेशनल म्यूजियम संग्रह, नई दिल्ली पन

उसी भंगिमा में बैठकर चित्र बनाता होगा जैसा कि हमें काशी के उस्ताद रामप्रसाद के घराने में वर्तमान समय तक मिलता है। उसके चित्रण की तख्ती सामने पड़ी है क्योंकि वह एक हाथ उठाये किसी से बात करने की मुद्रा में है, दूसरी ओर उसका दाहिना हाथ तलवार की मूठ पर है मानो वह किसी को चुनौती दे रहा हो।

उस काल के सभी वर्गों के लोगों में हथियार बाँधने की परम्परा थी, यद्यपि चित्रकार के दुबले-पतले शरीर को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह तलवार से युद्ध करने के योग्य था। इसी प्रकार उसकी पेटी में पेशकब्ज भी कसा हुआ है। यहाँ हम एक विचित्र स्थिति को पाते हैं चित्र बनाने की उसकी पटिया के ऊपर लघु आकार की एक आकृति है, यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह बालकृष्ण की आकृति है अथवा किसी अन्य प्रकार की परन्तु वह घुटनों के बल चलती हुई दिखलाई गयी है, सम्भव है कि वह चित्रकार के लिए एक मॉडल हो, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह अंश बाद में जोड़ा हुआ भी हो सकता है जिस प्रकार बाँयी ओर चित्र के ऊपरी भाग में चूड़ीदार वस्त्र पहने किसी व्यक्ति का हाथ भी दिखलाया गया है जिसका चित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। बूंदी-कोटा शैली में विशेष रूप से नमूने की ऐसी आकृतियाँ प्राय: मिलती है। चित्रकार के सामने विभिन्न प्रकार की प्यालियों में रंग दिखलाये गये हैं एक प्याले में घोटनी रखी है जिससे यह पता लगता है कि रंग पीसा जाता था। इसी प्रकार कैंची, तूलिका रखने की खोली आदि भी बिखरी पड़ी है, इसके सिवा दो बस्ते भी दिखलाये गये हैं। वेशभूषा आदि को देखते हुए हम चित्रकार को अत्यन्त निम्न मध्य वर्ग में रखते हैं। इस प्रकार के चित्र बहुत कम मिले हैं। इसके शीर्ष पर लिखे लेख से पता चलता है कि यह किशोरावस्था की शबीह है इससे प्रतीत होता है कि इस प्रकार के परम्परागत चित्रकार बाल्यावस्था से ही अपनी परम्परागत कला में चित्रण करते थे। इस पर जो लेख लिखा है वह इस प्रकार है–

''शबी चितेरा कनिराम कि बाल पणि की''

राजपूत राजाओं का अपने प्रिय जानवर के प्रति अगाध प्रेम था इसलिए राजपूत राजा अपने प्रिय जानवरों का भी चित्र बनवाते थे और उन पर उनके नाम भी उत्कीर्ण करवाते थे इसीलिए इस काल में पशुओं के शबीह की बाढ़-सी आ गयी।

इस प्रकार राजस्थानी शैली में राजाओं द्वारा अपनी व्यक्ति चित्र बनवाने और स्वयं चित्रकार अपनी शबीह बनाने के अतिरिक्त सरदारों, सेवकों आदि के चित्र भी बनाते थे। राजपूत राजाओं को अपनी व्यक्ति चित्र बनवाने का शौक था। शबीह के माध्यम से राजपूत राजाओं का वैभव जो आभूषण, वास्तु, फर्नीचर आदि से प्रगट होता था इसी प्रकार पालतू पशु की शबीह बनवाना भी

उनके मनोरंजन के अन्तर्गत आता था और शबीह के माध्यम से 18वीं शती की संस्कृति के बारे में बहुत कुछ पता चलता है।

सन्दर्भ :

1. खण्डालावाला, कार्ल एवं मोतीचन्द्र , ए न्यू डाकूमेण्ट ऑफ इण्डियन पेंटिंगः ए रीअप्रेजल, बम्बई, 1969 प्लेट-11
2. टाप्सफील्ड, ऐण्ड्रू पेंटिंग फ्रॉम राजस्थान इन द नेशनल गैलरी ऑफ विक्टोरिया : कलेक्शन एक्वायर्ड थ्रू दि फेल्टन बेक्वेस्ट कमेटी, मेलबर्न, 1980, पृ. 127, प्लेट नं. 183
3. वही, पृ. 42, प्लेट नं. 28
4. माथुर, विजय कुमार, मारवल्स ऑफ किशनगढ़ पेंटिंग्स फ्रॉम दि कलेक्शन ऑफ दि नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली, 2000, 2000, पृ. 58, प्लेट नं. 11
5. राजकीय संग्रहालय, लखनऊ, सं. 5. 177
6. वशिष्ठ, आर. के., आर्ट ऐण्ड आर्टिस्ट ऑफ राजस्थान, नई दिल्ली, 1995, प्लेट-19
7. बीच, माइलो क्विलैण्ड, राजपूत पेंटिंग एट बूंदी ऐण्ड कोटा, स्वीटजरलैण्ड, 1974, प्लेट नं. 43

डॉ. शैलेन्द्र कुमार

सहायक प्राध्यापक

कला इतिहास

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

❑❑❑

सीकर में जन चेतना का प्रतीक : खादी

• सुनिता कुमारी

राजस्थान की जयपुर रियासत सीकर अंचल में गाँधी युग के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ रचनात्मक कार्यक्रम किए गए। रचनात्मक कार्यों में गाँधी दर्शन में चरखा और खादी को प्रथम स्थान दिया गया। 1915 में अहमदाबाद में आश्रमवासियों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रथम शुरुआत खादी के रचनात्मक विचार से हुई।

चरखे से पूरे सीकर को एक सूत्र में बाँधा गया। वह आध्यात्मिक साधना का माध्यम बना। सीकर में खादी के प्रमुख केन्द्र और स्वतंत्रता सेनानियों की छावनियाँ फतेहपुर, रामगढ, रींगस, लोसल, काशी का बास, श्रीमाधोपुर आदि थी। खादी के प्रणेता सेठ जमनालाल बजाज, लादूराम जोशी, मदनलाल रूपचन्दका, सेठ सोहनलाल दूगड़, लाला मूलचन्द अग्रवाल, रामेश्वर अग्रवाल, रामवल्लभ नेवटिया, बंशीधर शर्मा, अंजना देवी चौधरी, सुमित्रा देवी खेतान आदि थी।

सीकर की स्वतंत्रता प्राप्ति का संदेशवाहक चरखा था। खादी राष्ट्रीय पोशाक के रूप में अवतरण हुई। खादी आश्रम और खादी मन्दिर स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र रहे। स्वदेशी भावना के प्रचार-प्रसार के लिए खादी प्रदर्शनियाँ लगाई जाती थी।

निष्कर्षत : गाँधी युग में राष्ट्रीय आन्दोलन में खादी ने जन चेतना का कार्य किया। ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बन बनाया। वर्तमान में खादी राजनीतिक विचारधारा के लोगों को सम्बल प्रदान करती है।

मुख्य शब्द : *खादी, चरखा, जन चेतना।*

राजस्थान में जयपुर रियासत के शेखावाटी अंचल का सीकर ठिकाना है।[1] सीकर में गाँधी दर्शन की विचारधारा का प्रभाव था। आधुनिक भारत के

ISSN 2278-4632

इतिहास को गाँधीयुग से सम्बोधित किया गया है। क्योंकि भारतीय राजनीति में गाँधी ने प्रवेश किया था। इस अवधि में राष्ट्रीय संग्राम में सर्वोच्च नेता के रूप में भारतीय राजनीति का मार्गदर्शक किया था। उन्हें साधन दिए, उसको नया दर्शन दिया और उसे सक्रिय बनाया।[2]

गाँधी युग में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ रचनात्मक कार्यक्रम किए गए। रचनात्मक कार्यक्रमों खादी, हरिजनोंद्धार, साक्षर, साम्प्रदायिक सौहार्द आदि रहे। गाँधी दर्शन में खादी को सबसे पहला स्थान दिया। गाँधी दर्शन में चरखा और खादी को सबसे पहला स्थान दिया।[3]

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रथम औपचारिक शुरुआत 1915 में अहमदाबाद में आश्रमवासियों द्वारा खादी के रचनात्मक विचार से हुई। इसका प्रभाव सेठ जमनालाल बजाज के द्वारा सीकर में खादी के रचनात्मक कार्य पर बल दिया। सीकर में खादी प्रचार कार्य को अधिक बढ़ावा देने के लिए बजाज ने 1926 में सीकर में चरखा संघ की स्थापना की।[4]

आर्थिक सहायता के साथ खादी कार्यों का निरीक्षण व कार्यकत्ताओं को मार्गदर्शन करते थे। बजाज भवन में नृसिंहदासजी की देख-रेख में सूत तथा खादी का कार्य आरम्भ करवाया उत्तराखण्ड के अलमोड़ा का निवासी शिवदत्त खादी उद्योग में कार्य करता था। संन्यास लेने से पूर्व पूर्णानन्द को अपना कार्यभार सम्भलवा कर चला गया था।[5] उत्तरप्रदेश के मेरठ निवासी मा. चन्द्रभान ने सीकर में खादी आश्रम की स्थापना की। जिसमें सूत कातना और कपड़ा बुनना प्रारम्भ किया। सूत कातने वाली सौ महिलाएँ और पिच्चहत्तर बुनकर काम करने लगे। वह समानता के आधार पर लाभ का बँटवारा कर दिया करते थे।[6]

बद्रीनारायण सोढ़ाणी ने सीकर में खादी प्रतिष्ठान की स्थापना की। इससे जनता को रोजगार मिला। आर्थिक स्वावलम्बन की भावना जाग्रत हुई। यह उसके व्यवहारिक स्वदेशी की भावना का पता चलता है। इन्हें सीकर का गाँधी कहा जाता है।[7]

काशी का बास में खादी ग्रामोद्योग समिति का मंत्री मदनलाल रूपचन्द थे। वह आजीवन खादी का प्रचार-प्रसार करते रहे। खादी की उपयोगिता के सन्दर्भ में अपना व्याख्यान प्रस्तुत करते थे। ग्रामीणों की रोजगार प्रदान कर स्वावलम्बी बनाते थे।[8]

मूण्डवाड़ा के लादूराम जोशी ने सीकर के गाँवों में घूम-घूमकर ऊँटों पर

खादी लादकर विक्रय और प्रचार-प्रसार करते थे। गाँव तथा कस्बों के लोग उन्हें अपने घरों में ठहराने में सुकचाते थे। जहाँ ठहरते वहाँ पर अंग्रजों द्वारा कड़ी नजर रखी जाती थी।[9] रींगस में मूलचन्द अग्रवाल ने खादी आश्रम की स्थापना की। देवीसिंह बोचल्या को सहायक व्यवस्थापक बनाया। ग्रामीण और गरीब के रोजगार का केन्द्र बन गया। नारी उत्थान और समाज में स्त्रियों के सम्मान का प्रेरक बिन्दु भी रहा।[10] रामेश्वर अग्रवाल महात्मा गाँधी के आदर्शों पर चलकर खादी विकास के कार्यों में जुट गए।[11] मूलचन्द अग्रवाल नीमच से रींगस आकर खादी उत्पादन और वस्त्र स्वालवम्बन के कार्यों में लग गया।[12] रामस्वरूप शर्मा हिंदका खादी संस्था के माध्यम से अनेक रचनात्मक कार्य किए।[13]

फतेहपुर सेवा समिति राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों का संचालन करती थी। उसके खादी भण्डार का संचालन किया। 1923 में खादी प्रचार समिति की संचालक है। शहरी एवं ग्रामीण लोगों से रोजगार का केन्द्र बन गई थी। सेठ केशवदेव नेवटिया, भीमराज दूगड़, गणपतराय सरावगी, भगतराम जालान आदि चरखा एवं खादी मन्दिर में कार्य करते थे। आस-पास के गाँवों को आर्थिक स्वावलम्बन बनाया। सेठ रामप्रताप चमड़िया ने खादी उत्थान के कार्यों को बढ़ावा देने के लिए 7,500 रुपए का दान दिया। खादी कार्यों से लोगों में नवीन चेतना और राष्ट्रवाद की भावना जाग्रत हुई।[14] सुमित्रा देवी खेतान ने रामगढ़ में पर्दा प्रथा त्याग चरखा संघ में काम करने लगी।[15]

श्रीमाधोपुर में मालीराम सैनी गाँधीवादी विचारों से प्रेरित थे। वे खादी आश्रम में कार्य करते थे। गाँव-गाँव और ढाणी-ढाणी में जाकर खादी का प्रचार करते थे।[16] अंजना देवी चौधरी ने पर्दा त्याग कर खादी पहनना शुरू कर दिया। वह घर-घर जाकर महिलाओं को खादी के कार्यक्रमों से जुड़ने के लिए प्रेरित करती थी।[17] पं. बंशीधर शर्मा की धर्मपत्नी रामेश्वरी देवी शर्मा ने सीकर के गाँवों में खादी वस्त्र को राष्ट्रीय पोशाक के रूप में अवतरण किया।[18]

इस प्रकार सीकर की स्वतंत्रता प्राप्ति का संदेशवाहक चरखा था। चरखे से पूरे सीकर को एकता के सूत्र में बाँधा गया था। आध्यात्मिक साधना का माध्यम बन गया था। खादी राष्ट्रीय पोशाक के रूप में अवतरित हुई। जिससे लोगों में जन चेतना का विकास हुआ। खादी के जन जागरण से देशी रियासतों में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। स्वदेशी आन्दोलन का भी बढ़ावा दिया। वह भारत की आजादी का मूल स्तम्भ भी रहा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झाबरमल शर्मा, 1922 : सीकर का इतिहास, कलकत्ता, राजस्थान एजेन्सी, पृ.सं.
2. विपिनचन्द्र, 1972: स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पृ.सं. 102
3. महादेव देसाई, 1949: संक्षिप्त आत्मकथा, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, पृ.सं. 31
4. सीतारामय्या, डॉ. पट्टाभि, 2016 : कांग्रेस का इतिहास, खण्ड-1 नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ.सं. 187
5. रामदास शर्मा, 2014: श्री राधेश्याम शर्मा-खादी के विकास पुरुष, पृ. सं. 180
6. मोहन सिंह, 1990: शेखावाटी में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, झुन्झुनू, रवीन्द्र प्रकाशन, पृ. सं. 195
7. माँगीलाल मिश्र, 1999 : श्री बद्रीनारायण सोढ़ाणी स्मृति ग्रन्थ, सीकर, श्री बद्रीनारायण सोढ़ाणी स्मृति ग्रन्थ समिति, पृ. सं. 11
8. महावीर पुरोहित, 2013 : स्वाधीनता सेनानी मदनलाल रूपचन्दका स्मृति ग्रन्थ, सीकर, स्वाधीनता सेनानी मदनलाल रूपचन्दका स्मृति संस्थान, पृ.सं. 28
9. रामस्वरूप जोशी, 2003 : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा-लादूराम जोशी, जयपुर, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, पृ.सं. 7
10. रामगोपाल शर्मा, 2002 : राजस्थान में प्रजामाडल आन्दोलन, भाग-3 जयपुर, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समारोह समिति, पृ.सं. 54
11. सुमनेश जोशी, 1973: राजस्थान में सेनानी, जयपुर, ग्रन्थागार, पृ.सं. 576
12. वही पृ. सं. 616
13. मोहन सिंह, 1990: वही, पृ सं. 339
14. रामगोपाल वर्मा, 1992, नगर फतहपुर नगरां नागर, फतेहपुर-शेखावाटी, श्री सरस्वती पुस्तकालय पृ.सं. 77-78
15. मोहन सिंह, 1990: वही, पृ. सं. 281
16. वही, पृ. सं. 365
17. सुमनेश जोशी, 1973 : वही, पृ. सं. 592
18. मोहन सिंह, 1990 : वही, पृ. सं. 272

सुनिता कुमारी

शोधार्थी

इतिहास विभाग, अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जीवन कौशलों के विकास हेतु प्रमुख शैक्षिक रणनीतियाँ

जसमीत कौर • अभिषेक कुमार प्रजापति

विभिन्न अध्ययन इस तथ्य को उजागर करते हैं कि किशोरावस्था की विभिन्न समस्याओं से निपटने हेतु जीवन कौशल एक महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं। सामान्यतः जीवन कौशल का सम्बन्ध उन मनो-सामाजिक दक्षताओं और कौशलों से सम्बन्धित हैं जो किशोर विद्यार्थियों अपने जीवन का प्रबंधन करने में मदद करते हैं। यद्यपि जीवन कौशल की आवश्यकता मानव विकास के प्रत्येक चरणों में होती है, तथापि यह किशोर विद्यार्थियों हेतु अधिक महत्वपूर्ण हो जाते है, क्योंकि किशोरावस्था में पर्याप्त क्षमताएं होने के बावजूद अधिकांशतः किशोर शराब की लत, नशीली दवाओं, यौन शोषण, धूम्रपान, लैंगिक अपराध, असामाजिक कृत्य आदि कारणों से अपनी क्षमताओं का उपयुक्त उपयोग नहीं कर पाते। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अनुसार, शिक्षा को न केवल संज्ञानात्मक कौशल के विकास को बढ़ावा देना चाहिए जिसमें साक्षरता और संख्यात्मकता के ''मूलभूत कौशल'' और ''उच्च-क्रम'' संज्ञानात्मक कौशल हो बल्कि उसके साथ आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान सहित सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक कौशल अथवा जीवन कौशल आदि को भी विकसित किया जाना चाहिए, जिससे किशोरों की संज्ञानात्मक क्षमताओं के साथ-साथ उनके चरित्र, समग्र कल्याण और आवश्यक 21वीं सदी के कौशलों का निर्माण किया जा सके। द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित यह आलेख

माध्यमिक स्तर पर के विद्यार्थियों में जीवन कौशलों के विकास हेतु विभिन्न शैक्षिक रणनीतियों के बारे में चर्चा करता है।

मुख्य शब्द : ***जीवन कौशल, जीवन कौशल शिक्षा, किशोर, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), शैक्षिक रणनीतियाँ***

प्रस्तावना

सतत् विकास लक्ष्य (2015) के अनुसार, शिक्षा मौलिक अधिकार होने के साथ-साथ गरीबी को कम करने, स्वास्थ्य में सुधार, लैंगिक समानता, शांति, दीर्घकालिक विकास एवं समानता के साथ समावेशन सुनिश्चित करने हेतु सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। शिक्षा न केवल मानव की पूर्ण क्षमता को साकार करने अपितु न्यायसंगत समाज बनाने और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए अति आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र समावेशी एवं संवृद्ध तब तक नहीं हो सकता जब तक की उसके प्रत्येक नागरिक के पास गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच नहीं हो जाती। जीवन कौशल अनिवार्य रूप से वे क्षमताएं है जो किशोरों की मानसिक क्षमताओं को बढ़ावा देने और जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने में मदद करती है। जब किशोर अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं तो वह दैनिक झगड़ों, उलझे हुए रिश्तों एवं साथियों से उत्पन्न होने वाले भावनात्मक गतिरोधों के दबाव के कारण उनके द्वारा किये जाने वाले असामाजिक कृत्य या उच्च जोखिम वाले व्यवहार को करने की सम्भावना कम होती है और साथ ही उनको जिम्मेदारी से कार्य करने एवं नियंत्रण रखने हेतु सशक्त भी बनाती है (सुबीता, 2013)। किशोरों को शराब, नशीली दवाओं का दुरूपयोग, अवैध सम्बन्ध, तनाव, चिंता, हताशा और अवसाद आदि से लड़ने हेतु जीवन कौशल शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता बताई है (भरत एवं किशोर, 2010)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) प्रगतिशील, समृद्ध एवं नैतिक मूल्यों से पूर्ण समाज के विकास में जीवन कौशल के ज्ञान की महत्ता पर बल देती है और यह मानती है कि जीवन कौशल व्यक्तिगत और व्यावसायिक सफलता के लिए महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि नीति व्यक्ति के संज्ञानात्मक विकास, चरित्र निर्माण एवं 21वीं सदी के प्रमुख कौशलों से सम्पन्न सर्वांगीण किशोरों के निर्माण हेतु विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम में जीवन कौशल को सम्मिलित करने की अनुशंसा करती है।

जीवन कौशल : बुनियादी समझ

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1993) के अनुसार जीवन कौशल, ''अनुकूली और सकारात्मक व्यवहार की क्षमताएँ जो व्यक्तियों को दैनिक जीवन की मांगों और चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने में सक्षम बनाती है।'' यूनिसेफ (1997) ने जीवन कौशल को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''एक व्यवहार परिवर्तन या व्यवहार विकास दृष्टिकोण जो तीन क्षेत्रों के संतुलन को संबोधित करने के लिए निर्मित किया गया है: ज्ञान, दृष्टिकोण और कौशल। सी.बी.एस.ई टीचर्स मैनुअल फॉर लाइफ स्किल्स एजुकेशन (2013) के अनुसार, जीवन कौशल अनिवार्य रूप से वे क्षमताएं हैं, जो किशोरों के मानसिक कल्याण और क्षमता को बढ़ावा देने में मदद करती हैं क्योंकि वे जीवन की वास्तविकताओं का सामना करते हैं।

संक्षेप में, 'जीवन कौशल' का सम्बन्ध उन कौशलों से है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न अवसरों का अधिकतम लाभ उठाता है। यह कौशल सामान्यता जीवन की बेहतर गुणवत्ता के प्रबंधन और जीने से जुड़े होते हुए जो व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में मदद करते हैं (सुबास्री, नायर एवं रंजन, 2010)।

जीवन कौशलों का वर्गीकरण

जीवन कौशलों की सूची बहुत लम्बी हैं, परन्तु जीवन कौशल को मोटे तौर पर कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1993) द्वारा प्रस्तावित दस आधारभूत जीवन कौशलों का विवरण निम्नलिखितानुसार हैं :

1. **आत्म जागरूकता :** आत्म जागरूकता का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपने चरित्र की शक्तियों और कमजोरियों को समझने के सामर्थ्य से है। आत्म-जागरूकता अपनी भावनाओं, विचारों और कार्यों के प्रति सचेत रहने की क्षमता है। यह व्यक्ति की तनावग्रस्तता या अन्य प्रकार के दबावों के बारे में बताता है व किशोरों में तनाव को पहचाननें, कम करने, विनियमित करने के साथ मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों का सामना करने आदि में सक्षम बनाता है।
2. **परानुभूति :** परानुभूति स्वयं को दूसरे के स्थान पर तथा उसके नजरिये

से स्थिति को देखने व समझने का सामर्थ्य है। यह कौशल किशोरों में दूसरों की भावनाओं को संकट में समझने की क्षमता प्रदान करता है। यह कौशल किशोरों के सामाजिक मेल-जोल में भी सुधार करता है और समाज हितैषी गतिविधियों की ओर झुकाव अधिक हो इस प्रक्रिया में भी परानुभूति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है (सांग, 2022)।

3. **प्रभावी सम्प्रेषण :** प्रभावी सम्प्रेषण से तात्पर्य व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति या समूह के साथ प्रभावी मौखिक और गैर-मौखिक सम्प्रेषण बनाए रखने की क्षमता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1993) के अनुसार प्रभावी सम्प्रेषण कौशल अनेक सामाजिक और व्यक्तिगत मुद्दों के संदर्भ में सकारात्मक दृष्टिकोण रखने व रचनात्मक रूप से समस्या का समाधान करने के योग्य बनाता है।

4. **अंतर्वैयक्तिक संबंध :** दूसरों के साथ बातचीत करने के लिये उपयोग किये जाने वाले कौशल को 'पारस्परिक कौशल' या 'अंतर्वैयक्तिक कौशल' कहा जाता है। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति की दिनचर्या में शामिल होता है जिसकी सहायता से वह दूसरों से अंत:क्रिया करता है। यह कौशल व्यक्तियों में सकारात्मक संबंध को शुरू करने और उनको बनाए रखने हेतु प्रोत्साहित करता है।

5. **सृजनात्मक चिंतन :** यह कौशल नवीन विचारों को उत्पन्न करने और उन्हें बुनियादी सोच के साथ जोड़ने की क्षमता प्रदान करता है। साथ ही व्यक्ति को अन्वेषण करने में सक्षम बनाकर, निर्णय लेने व समस्या समाधान करने एवं सृजनात्मकता द्वारा परिस्थितियों के अनुकूल और लचीलेपन के साथ प्रतिक्रिया करने में भी सहायक होता है। सृजनात्मक चिंतन किशोरों में विश्लेषण क्षमता, विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन, जानकारी, पहचान, पक्षपात, ठोस निर्णय लेने, स्मरण शक्ति में सुधार आदि को मजबूत करता हैं (वाई एवं अन्य, 2019)।

6. **विवेचनात्मक चिंतन :** यह कौशल तर्क और वस्तुनिष्ठता पर आधारित स्व-निर्देशित, स्व-अनुशासित समझ है। यह व्यक्ति को उसके विचार गुणवत्ता में सुधार, तार्किक और निष्पक्ष रूप से जानकार व अनुभवों का विश्लेषण करने योग्य बनाता है। इस कौशल के द्वारा किशोर परिस्थितियों को पहचानने, समस्यायों का रचनात्मक समाधान प्रदान

करने, बेहतर निर्णय लेना आदि सीखते है, अतः उनमें मूल्यांकन, आलोचनात्मक क्षमता, सत्य को पहचानने व पूर्वाग्रहों से बचनें आदि जैसे कौशलों को विकसित किया जाता है (रजाक एवं अन्य, 2022)।

7. **निर्णय लेना :** यह कौशल किशोरों को समय पर सही निर्णय लेने और विभिन्न विकल्पों के पक्ष-विपक्ष का आकलन कर उनमें से सर्वश्रेष्ठ के चयन हेतु सहायता करता है। इससे वह विभिन्न विकल्पों व परिणामों का विश्लेषण कर, अपने निर्णयों को विश्वासपूर्वक स्वीकार करते है। इसके किशोरों में समस्यायों की पहचान, सूचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण, विचार, परिणाम और विकल्पों का मूल्यांकन करने व सही निर्णय लेने में प्रशिक्षित करता है (कोलाकाडिओग्लू एवं सेलिक, 2016)।

8. **समस्या समाधान कौशल :** समस्या समाधान कौशल समस्याओं की पहचान, परिस्थितियों का व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण करके प्रभावी समाधान ढूँढ़ने और समाधान के बेहतर तरीके से क्रियान्वित करने की क्षमता है। यह कौशल किशोरों में आत्मविश्वास बढाता है, जिससे वह विपरीत परिस्थितियों का सामना कर सके प्रभावी ढंग से स्वयं को अभिव्यक्त करने, सक्रिय रूप से सुनने एवं रचनात्मक रूप से संघर्षों व समस्याओं का सामना करने योग्य बनते है (शेवांडी एवं अन्य, 2023, नवाबी एवं अन्य, 2019)।

9. **भावनाओं का सामना करना :** भावनाओं का सामना करने का कौशल किशोरों को उनकी व दूसरों की भावनाओं को जाननें में सहायता करता है। साथ ही भावनाओं के प्रभाव की पहचान व उचित रूप से प्रतिक्रिया करने और अत्यधिक जैसे क्रोध व दुःख को नियंत्रित करने के बारे में भी अवगत करता है। इस कौशल के द्वारा किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार, चिंता, तनाव व अवसाद में कमी होती है साथ ही उनमें चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना एवं स्वयं की भावनाओं को समझने की क्षमता भी विकसित होती है (तिवारी, नाइक, निर्गुड़े एवं दत्ता, 2020)।

10. **तनाव मुक्ति कौशल :** यह कौशल किशोरों को तनाव के स्रोत, प्रभाव और उसे नियंत्रित करने की तकनीक व दूर करने के उपायों को पहचाननें

में सक्षम बनाता है इस कौशल की सहायता से किशोर अपनी भावनाओं को भली-भांति अभिव्यक्त करते है और समाज में सकारात्मक सामाजिक संबंधों का विकास करते है (कैम्पबेल, टटल एवं नैप, 2009)।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1993) द्वारा प्रस्तावित आधारभूत दस जीवन कौशलों को तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया है यथा संज्ञानात्मक कौशल (स्वजागरूकता, महत्वपूर्ण विचार, रचनात्मक विचारशीलता, समस्या समाधान और निर्णय लेना), सामाजिक कौशल (सहानुभूति, सहयोग, सामूहिकता, सहिष्णुता, सम्मान, सहानुभूति, पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभावी संचार और भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता) तथा भावनात्मक कौशल (इनमें भावनाओं को समझना, नियंत्रित करना, आत्म-प्रबंधन, तनाव से मुक्ति) आदि सम्मिलित किये जाते है।

यूनिसेफ (1994) व्यापक जीवन कौशल के कई स्तरों को पहचानता है यथा बुनियादी जीवन कौशल (जैसे सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्य), स्थिति-विशिष्ट कौशल (जैसे, बातचीत, मुखरता, संघर्ष समाधान) और व्यावहारिक जीवन कौशल (उदाहरण के लिए लिंग भूमिकाओं को समझना या चुनौती देना आदि)।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता

जीवन कौशल शिक्षा ऐसा कार्यक्रम है जो सभी के लिए आवश्यक है। किशोरों हेतु यह शिक्षा विशेष रूप से आवश्यक है क्योंकि इसे जीवन की उस अवस्था के रूप में रेखांकित किया जाता है जब शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास की गति अन्य अवस्थाओं की तुलना में तीव्र होती हैं। व्यवहार व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए जीवन कौशल शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है।

यूनेस्को (1996) की रिपोर्ट ने भविष्य के तनावों से निपटने हेतु शिक्षा को चार स्तंभों पर आधारित होने की अनुसंशा की है यथा जानने, करने, बनने और एक साथ रहने हेतु सीखना। जीवन कौशल शिक्षा को अधिकांश राष्ट्रों के विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम में व्यापक रूप से समाहित किया गया अतः

किशोरावस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक परिवर्तन तेजी से होते हैं (मोशिक, तहेरे एवं परवानेह, 2014)। जब किशोरों की जिज्ञासा शांत नहीं होती या उनके हितों पर सहानुभूति पूर्वक विचार नही किया जाता, तब वह मानसिक और भावनात्मक तनाव की ओर अग्रसर हो जाते है, तब उनको जीवन कौशल शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, जिससे किशोरों के जीवन में आने वाली कठिनाइयों का वे सफलतापूर्वक सामना कर सके।

जीवन कौशल शिक्षा एक विद्यालयी शिक्षा कार्यक्रम है, जो शैक्षिक और सह-शैक्षिक क्षेत्र को विकसित करने के लिए जीवन कौशल आवश्यक है (सी.बी., एस.सी., 2005)। अतः इसे पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य घटक के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। जीवन कौशल किशोरों में प्रभावी संवाद, विश्लेषण, जानकारी, विचारों में स्पष्टता, सकारात्मक दृष्टिकोण व रचनात्मक रूप से समस्या का समाधान करने योग्य बनाता है (ताहन एवं अन्य, 2020)। समग्र कल्याण व विकास हेतु पारस्परिक सम्बन्ध विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते है जो सामाजिक कौशलों को बढ़ाकर सामाजिक चिंता व अवसाद को कम करने में भी सहायक है (सुरेन्द्र एवं अन्य, 2023)।

कक्षा-कक्ष में जीवन कौशल प्रदान करने की शैक्षिक रणनीतियाँ

जीवन कौशल को प्रत्यक्ष रूप से पाठ्यक्रम में एकीकृत करके विभिन्न गतिविधियों द्वारा विद्यार्थियों में जीवन कौशल विकसित किया जा सकता है। माध्यमिक स्तर पर जीवन कौशल शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रभावी शैक्षिक रणनीतियों का विवरण निम्नलिखितानुसार हैं–

1. **समूह चर्चा और वाद-विवाद :** समूह चर्चा एक संवादात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है, जो समूह के सदस्यों को चर्चा किए जा रहे मुद्दे पर स्वतंत्र रूप से स्वयं को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करती है। इसमें आलोचनात्मक चिंतन और तर्क शक्ति को विकसित करने की क्षमता एवं नैतिक और आचरण मूल्यों के शिक्षण हेतु इसका उपयोग किया जा सकता है। चर्चा विधि का प्रयोग करके माध्यमिक विद्यार्थियों में सोच कौशल, विश्लेषणात्मक कौशल एवं मूल्यांकन कौशलों को विकसित किया जा सकता है (इल्जा एवं तरिस्याह, 2023)।

2. **मस्तिष्क उद्वेलन :** यह विधि समस्यामूलक एवं सोच या रचनात्मकता को विकसित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। इसके अंतर्गत किशोरों के समक्ष एक समस्या प्रस्तुत की जाती है, जिसमें वह 10-15 लोगों के बीच चर्चा करता है, सोचता व विश्लेषण करता है और अंत में संश्लेषण के माध्यम से समस्या का समाधान निकालने का प्रयास करता है। मस्तिष्क उद्वेलन विधि के द्वारा विद्यार्थियों में रचनात्मक, समस्या समाधान और आलोचनात्मक समझ आदि कौशलों को विकसित किया जा सकता है (गफौर एवं गफौर, 2020)।

3. **कहानी सुनाना :** इस रणनीति का प्रयोग शिक्षकों द्वारा चित्र, पुस्तक, कॉमिक स्लाइड आदि द्वारा कही या पढ़ कर उपयोग में लायी जाती है। इसमें विद्यार्थियों को कहानी के माध्यम से उठाए गए किशोरों के मुद्दे यथा स्वास्थ्य संबंधी, नशा मुक्ति आदि के बारे में गंभीर रूप से सोचने के लिए प्रेरित किया जाता है। कहानी के माध्यम से विद्यार्थियों में विभिन्न जीवन कौशल जैसे सहानुभूति, सहयोग, जिम्मेदारी, स्व नियंत्रण आदि को विकसित किया जा सकता है (रानी, 2020)।

4. **भूमिका निर्वहन :** भूमिका निर्वहन का उपयोग एक शैक्षिक या प्रशिक्षण की तकनीक के रूप में रिलेक्टिव शिक्षण का एक अंग है। सरल रूप में रोल प्ले का अर्थ है: किसी व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थिति में किसी व्यक्ति की भूमिका की कल्पना करने के लिए कहना। यह रणनीति किशोरों में जीवन कौशल विकसित करने का एक उत्कृष्ट अवसर प्रदान करती है, जिसमें वह वास्तविक जीवन का अनुभव कर सीखते है। नाटक एवं अभिनय के माध्यम से विद्यार्थियों में जीवन कौशल अर्थात संवादात्मक कौशल को विकसित किया जा सकता है (शर्मा, 2021)।

5. **समूह शिक्षण :** इस गतिविधि के दौरान विद्यार्थियों को पाँच या छह के छोटे समूह में विभाजित किया जाता है। उनको एक कार्य पूरा करना होता है। जिससे वे एक-दूसरे को बेहतर तरीके से जानते हैं और मदद करना सीखते है। सहकारी अधिगम सामूहिक शिक्षण विद्यार्थियों में सामाजिक सहयोग व पारस्परिक कौशल विकसित करने में सहायता करते हैं (बोथा,2020)।

6. **परिस्थिति विश्लेषण :** परिस्थिति विश्लेषण के दौरान, विद्यार्थियों को समस्याओं का पता लगाने व समाधानों का सुरक्षित परीक्षण करने की अनुमति दी जाती है। इसके द्वारा विद्यार्थियों को कड़ी मेहनत करने, भावनाओं को साझा करने और रचनात्मक सोच का विकास करने का अवसर प्राप्त होता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों में इक्कीसवी सदी के कौशल जैसे सहयोग, सामूहिकता, नेतृत्व व आलोचनात्मक सोच आदि कौशल विकसित किये जा सकते है (मेयर्स, 2011)।

जीवन कौशल शिक्षण हेतु अन्य महत्वपूर्ण शैक्षिक रणनीतियों में साथी शिक्षण, सहयोगी शिक्षण, संगीत, नृत्य और रंगमंच आदि को भी सम्मिलित किया जाता है।

निष्कर्ष

जीवन कौशल शिक्षा किशोरों को उनके समक्ष आने वाली कठिनाइयों व समस्याओं का साहसपूर्ण सामना करने एवं बेहतर जीवन जीने में एक औषधि के रूप में काम कर सकती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को पाठ्यक्रम के एक हिस्से के रूप में जीवन कौशल शिक्षा को अपनाना चाहिए क्योंकि यह विद्यार्थियों में तर्कसंगतता, दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाले भावात्मक गतिरोधों से ऊपर उठनें में सक्षम, स्वास्थ्य व्यवहार, सकारात्मक पारस्परिकता आदि में सक्षम बनाती है। विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने, बेहतर अनुकूलित कौशलों से लैस करने, बदलती जीवन की चुनौतियों का सामना करने, समाज व राष्ट्र के प्रति योगदान देने एवं सशक्त बनाने हेतु जीवन कौशल शिक्षा की महती आवश्यकता है। पूर्व शैक्षिक नीतियों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) को भी जीवन कौशल की आवश्यकता एवं महत्त्व को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है, जिसमें शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर जीवन कौशल की चर्चा एवं इन कौशलों को पाठ्यक्रम में एकीकृत करने पर भी बल दिया गया। संक्षेप में, जीवन कौशल शिक्षा किशोरों में सकारात्मक सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने हेतु प्रभावी मनोसामाजिक रणनीति साबित हुई है, जो विद्यार्थियों में चुनौतियों का सामना करने और उनमें आत्मविश्वास, सहानुभूति व भावनात्मक बुद्धिमत्ता, आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान व निर्णय लेने के कौशल आदि को भी विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार, जीवन कौशल शिक्षा को नियमित विद्यालयी पाठ्यक्रम में एकीकृत करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

भरत श्रीकला एवं के.किशोर. (2010). एमपोवेरिंग एडोलसैंट्स विथ लाइफ स्किल एजुकेशन इन स्कूल्स-स्कूल्स मेंटल हेल्थ प्रोग्राम:डस आईटी वर्क?, इंडियन जर्नल ऑफ साइकाइट्री. 52(4), 344-349.https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3025161/

सुबीता, जीवी. (2013). इम्पर्टिंग लाइफ स्किल एजुकेशन. द डिपार्टमेंट ऑफ एडल्ट एंड कंटीन्यूइंग एजुकेशन,(2006) इंटरनेशनल वर्कशॉप ऑन लाइफ स्किल एजुकेशन फॉर यूथ डेवलपमेंट इन एट द यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास http://www.indiaeducationreview.com/article/current-educational-systemimparting-life-skills-education-

सुबास्री आर. एवं नायर राधा.ष्णन रंजन एस. (2010). द लाइफ स्किल अस्सेस्मेंट स्केल:द कंस्ट्रक्शन एंड वेलिडेशन ऑफ ए न्यू कोम्प्रेहेंसिव स्केल फॉर मेजरिंग लाइफ स्किल्स. स्कूल ऑफ लाइफ स्किल्स एजुकेशन, आरजीएनआईवाईडी,श्रीपेरुमबुदुर. https://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol19-issue1/Version-9/G019195058.pdf

ताहन, एम., कलंतरी,एम., रड, टी, एस., अग्हेल, एम. जे., अशरी, एम., एवं सबरी, ए. (2020). द इम्पैक्ट ऑफ कम्युनिकेशन स्किल्स ट्रेनिंग ऑन सोशल इम्पोवेर्मेंट एंड सोशल एडजस्टमेंट ऑफ स्लो पेस्ड एडोलसैंट्स. जर्नल ऑफ एजुकेशनल, कल्चरल एंड साइकोलॉजिकल स्टडीज (इसीपीएस जर्नल), (21), 131-147. DOI: https://doi.org/10.7358/ecps-2020-021-taha

सुरेन्द्रन, जी., सर्कार, एस,, कन्दासमी, पी., रहमान, टी., इलियास, एस., एवं सक्थिवेल, एम. (2023). इफेक्ट्स ऑफ लाइफ स्किल्स एजुकेशन ऑन सोशियो-इमोशनल फंशिनिंग ऑफ एडोलसैंट्स इन अर्बन पुदुचेरी, इंडिया:ए मिक्स्ड मेथोड्स स्टडी. जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड हेल्थ प्रमोशन, 12(1), 250. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/37727404/

वाई, कु, के. कोंग, क्यू., सोंग, वाई., डेंग, एल., कांग, वाई., एवं हु, ए. (2019). व्हाट प्रेडिक्ट एडोलैसैंट्स क्रिटिकल थिंकिंग अबाउट रियल-लाइफ न्यूज? द रोल ऑफ सोशल मीडिया न्यूज कंसम्पशन एंड न्यूज मीडिया लिटरेसी. थिंकिंग स्किल्स एंड क्रिएटिविटी, 33, 100570. https://doi.org/10.1016/j.tsc.2019.05.004

रजाक, ए. ए., रमदान, एम. आर., महजोम, एन., जाबित, एम. एन. एम., मुहम्मद, एफ., हुसैन, एम. वाई. एम., एवं अब्दुल्लाह, एन. एल. (2022). इम्प्रोविंग क्रिटिकल थिंकिंग स्किल्स इन टीचिंग थ्रू प्रॉब्लम-बेस्ड लर्निंग फॉर स्टूडेंट्स:ए स्कोपिंग रिव्यु. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लर्निंग, टीचिंग एंड

एजुकेशनल रिसर्च, 21(2), 342-362. http://ijlter.org/index.php/ijlter/article/view/4888/pdf

कोलाकाडिओग्लू, ओ., एवं सेलिक, डी. बी. (2016). द इफेक्ट ऑफ डिसिशन-मेकिंग स्किल ट्रेनिंग प्रोग्राम ऑन सेल्फ-इस्टीम एंड डिसिशन-मेकिंग स्टाइल्स. यूरेशियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 16(65), 259-276.

Chrome extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1121907.pdf

शेवांडी चालिचे, के., हसनवंद, एफ., गलामी, जेड., एवं नफर, जेड. (2023). द एफेक्टिवेनेस ऑफ लाइफ स्किल्स ट्रेनिंग (प्रॉब्लम-सोल्विंग एंड डिसिशन मेकिंग) ऑन इंटरपर्सनल इंटेलिजेंस, लव ऑफ लर्निंग, एंड सेल्फ-कण्ट्रोल इन मेल स्टूडेंट्स. ईरानी जर्नल ऑफ एजुकेशनल सोसायटी, 8(2), 5766. DOI: 10.22059/JAPR.2021.300406.643483

नवाबी, एम., गुडार्जी, के., रूजबहानी, एम., एवं कोर्डेस्टानी, डी. (2019). इफेक्टिवनेस ऑफ प्रॉब्लम सोल्विंग स्किल्स ट्रेनिंग ऑन साइकोलॉजिकल हार्डीनेस एंड कोगनिटिव इमोशन रेगुलेशन स्ट्रेटेजीज इन हाई स्कूल स्टूडेंट्स. ईरानी जर्नल ऑफ एजुकेशनल सोशियोलॉजी, 2(4), 158-165. DOI: 10.29252/ijes.2.4.158

तिवारी, पी., नाइक, पी.आर., निर्गुडे, ए.एस., और दत्ता, ए. (2020). एफेक्टिवेनेस ऑफ लाइफ स्किल्स हेल्थ एजुकेशन प्रोग्राम:ए क्वासी-एक्सपेरिमेंटल स्टडी अमंग स्कूल स्टूडेंट्स ऑफ साउथ इंडिया. जर्नल ऑफ एजुकेशन हेल्थ प्रमोशन, 9 (1), 336. https://pubmed. ncbi.nlm.nih.gov/33575372/

कैंपबेल-हेइडर, एन., टटल, जे., और नैप, टी. आर. (2009). सीई फीचर: द इफेक्ट ऑफ पॉजिटिव एडोलसैंट्स लाइफ स्किल्स ट्रेनिंग ऑन लॉन्ग टर्म आउटकम्स फॉर हाई रिस्क टीन्स. जर्नल ऑफ एडिक्शन नर्सिंग, 20(1),6-15.https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC2995461/

विश्व स्वास्थ्य संगठन. (1993). लाइफ स्किल्स एजुकेशन फॉर चिल्ड्रन एंड एडोलैसैंट्स इन स्कूल्ज: इंट्रोडक्शन एंड गाइडलाइन्स टू फसिलिटटे द डेवलपमेंट एंड इम्प्लीमेंटेशन ऑफ लाइफ स्किल्स प्रोग्राम्स. जिनेवा स्विट्जरलैंड: ऑथर. https://iris.who.int/handle/10665/63552

यूनिसेफ. (2012). ग्लोबल इवैल्यूएशन ऑफ लाइफ स्किल्स एजुकेशन प्रोग्राम्स : फाइनल रिपोर्ट. नई यॉर्क: यूनाइटेड नेशंस चिल्ड्रन'स फण्ड.

https://evaluationreports.unicef.org/Get Document? documentID = 260&fileID=33182

सांग युएनहांग. (2022). द इन्लुएंस ऑफ इम्पैथी प्रोसोशल बेहेवियर ऑफ चिल्ड्रन. एडवांसेज इन सोशल साइंस एजुकेशन एंड हुमैनिटीस रिसर्च. 664. (प्रोसीडिंग्स ऑफ द 2022, 8 इंटरनेशनल कांफ्रेंस हुमैनिटीस एंड सोशल साइंस रिसर्च). DOI: 10.2991/assehr.k.220504.081

मोशिक मेहदी. तहेरे हसनजादे एंड परवानेह तैमूर. (2014) मोश्कि इफेक्ट ऑफ लाइफ स्किल्स ट्रेनिंग ड्रग एब्यूज प्रिवेंटिव बेहवियर्स अमंग यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ प्रिवेंटिव मेडिसिन. 5(5):577-583 https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/24932389/

डेलोर्स, जैक्स. (1996). लर्निंग द ट्रेजर वीथिन: रिपोर्ट ऑफ इंटरनेशनल कमीशन ऑन एजुकेशन फॉर द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी, यूनेस्को, पेरिस.

https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000109590

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड. (2013). कक्षा 6वीं के लिए लाइफ स्किल्स सीबीएसई टीचर्स मैनुअल्स. http://cbseacademic.in/web_material/Lifeskills/2_Life%20

भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 2020. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली.

https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep_update/NEP_final_HI_0.pdf

सतत विकास लक्ष्य, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (2015) https://sdgs.un.org/goals

गफौर, ओला, डब्लू, ए. एवं गफौर, वालिद. (2020). क्रिएटिव थिंकिंग स्किल्स.ए रिव्यु. https://www.researchgate.net/publication/349003763_Creative_Thinking_skill-

इल्जा, परादिबा. एवं सुची, तरिस्याह. (2023). द यूस ऑफ डिस्कशन एंड डिबेट मेथोड्स इन लर्निंग सिटिजनशिप एडुकेशन टू इमप्रोव क्रिटिकल थिंकिंग स्किल्स ऑफ एलीमेंट्री. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्टूडेंट्स एजुकेशन. पृष्ठ संख्या-56-59, 2344-4890. https://journal.berpusi.co.id/index.php/IJoSE/article/view/264

मेयेर्स, शेली. (2011). लाइफ स्किल्स ट्रेनिंग थी सिचुएटेड लर्निंग एक्सपीरियंस: एन अल्टरनेटिव इंस्ट्रशनल मॉडल. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ स्पेशल एडुकेशन 26.(3),

https://www.researchgate.net/publication/287568405_Life_skills_training_through_situated_learning_experiences_An_alternative_instructional_model

शर्मा, हेमलता. (2021). टीचिंग कम्युनिकेशन स्किल्स एंड लाइफ स्किल्स एंड

कंटेम्पररी इंडियन ड्रामा ए स्टडी ऑफ सिलेक्टेड प्लेस ऑफ महेश दत्तानी एंड विजय तेंदुलकर. (ए डोक्टोरल थीसिस इन इंग्लिश). ओसामिया यूनिवर्सिटी. http://hdl.handle.net/10603/363229

रानी, रेखा. (2020). इफेक्ट्स ऑफ सोशल स्किल्स ट्रेनिंग प्रोग्राम ऑन सेल्फ कांसेप्ट एंड सोशल कोम्पेटेंस ऑफ एलेमेंट्री स्कूल स्टूडेंट्स. (ए डोक्टोरल थीसिस इन इंग्लिश). पंजाब यूनिवर्सिटी. http://hdl.handle.net/10603/308956

बोथा, वंदिले. (2020). कोआपरेटिव लर्निंग बिल्डिंग कोआपरेटिव लर्निंग स्किल्स एंड ऐटीटुड. https://.researchgate.net/publication/340683766_Cooperative_Learning-

विश्व स्वास्थ्य संघठन (1997). प्रोग्राम ऑन मेंटल हेल्थ, लाइफ स्किल्स एजुकेशन फॉर चिल्ड्रेन एंड अदोल्सन्ट्स इन स्कूल्स. https://apps. who.int/iris/bitstream/handle/10665/63552/WHO_MNH_PSF_93.7A_Rev.2.pdf

यूनिसेफ (1994). कोम्प्रिहेंसिव लाइफ स्किल्स फ्रेमवर्क. https://www.unicef.org/india/media/2571/file/Comprehensive-lifeskills-framework.pdf

यूनिसेफ (1997). कोम्प्रिहेंसिव लाइफ स्किल्स फ्रेमवर्क. http://exploresel.gse.harvard.edu/frameworks/63/

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (2005). सर्कुलर, लाइफ स्किल्स एजुकेशन-रिगार्डिंग. DOI: 10.22059/JAPR.2021.300406.643483

जसमीत कौर
शोधछात्रा
शिक्षाशास्त्र विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)
ई-मेल आईडी: jk0977894@gmail.com , मो. 9695260428

अभिषेक कुमार प्रजापति
सहायक आचार्य
शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (मध्य प्रदेश)
ई-मेल आईडी: aprajapati123@gmail.com, मो. 9074803086

❑❑❑

नये दौर में हॉर्स ट्रेडिंग एवं रिसॉर्ट कल्चर की राजनीति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

• डॉ. शक्ति जायसवाल

आज के दौर की भारतीय राजनीति में हॉर्स ट्रेडिंग और रिसॉर्ट कल्चर जैसे रणनीतियों का प्रयोग होना आम बात हो गई है। राजनीति जो सत्ता के लिए संघर्ष का खेल होती है, उसमें सत्ता प्राप्त करने के लिए किसी भी साधनों का प्रयोग मैकियावेली और चाणक्य की काल से ही उचित माना जाता रहा है। राजतंत्र रहा हो या लोकतंत्र राजनीति सदैव सत्ता के लिए संघर्ष का खेल है। आज के लोकतांत्रिक दौर में सत्ता प्राप्त करने के लिए सदन का बहुमत हासिल करना सर्वोपरि होता है। जब सदन में किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो गठबंधन का दौर शुरू हुआ। गठबंधन भी सत्ता प्राप्ति के लिए एक समान विचारधारा वाली राजनीतिक दलों का गठजोड़ है। सत्ता प्राप्त करने के लिए कई बार विचारधारा भी गौण हो जाती है उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में कांग्रेस और उद्धव ठाकरे की शिवसेना ने मिलकर सरकार बनाई थी। इसी राजनीति के सर्वोत्तम सुख सत्ता प्राप्ति ने हॉर्स ट्रेडिंग और रिसॉर्ट कल्चर को भी जन्म दे दिया। जब-जब सदन में किसी एक दल ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं किया तो वहां सांसदों या विधायकों की खरीद फरोख्त आम बात हो गई। सदन के सदस्यों को मंत्री पद की लालसा, बेहतर भविष्य की चाहत या राज दंड जिसमें इनकम टैक्स, आईबी, सीबीआई के छापे के खौफ के साए में एक गुट में विपक्षी को शामिल करना आसान हो जाता है और सत्ता प्राप्त कर ली जाती है। सदन में विश्वास या अविश्वास प्रस्ताव पर बहुमत जुटाने के लिए राजनीतिक दलों द्वारा देश के कोने-कोने में रिसॉर्ट बुक कराए जाते हैं, एवं बहुमत प्रस्तुत करने के दिन वहां से सदस्यों को सीधे सदन में उतारा जाता है। इसके लिए विधायकों की जो खरीद-बिक्री की जाती है, वह हॉर्स ट्रेडिंग का

रूप ले चुकी है। इन सब को हम राजनीति की भाषा में दल बदल की चुनौती के रूप में परिभाषित करते हैं।

इधर कुछ सालों में कांग्रेस एवं गैर भाजपा राजनीतिक दलों का आरोप है कि बिहार, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में कांग्रेस एवं गैर भाजपा सरकारों को गिराकर जनमत की चोरी करते हुए भारतीय जनता पार्टी ने ऑपरेशन लोटस को सफल बनाने के लिए साम, दाम दंड एवं भेद की रणनीति का इस्तेमाल किया है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के संस्थापक सदस्य **प्रोफेसर जगदीप छोकर**[1] कहते हैं कि भाजपा की कोशिश देश में डबल इंजन सरकार बनाने की है। आज के मौजूदा दौर में दल बदल विरोधी कानून बेअसर हो चुका है। हाल के वर्षों में क्रॉस वोटिंग ने कांग्रेस और दूसरी सरकार के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक पंकज बोहरा के अनुसार कांग्रेस पार्टी को दूसरों पर आरोप लगाने के बजाय अपनी रणनीति को ठीक करने की जरूरत है। अभिषेक मनु सिंघवी राजस्थान के हैं जबकि कांग्रेस ने उन्हें राज्यसभा के लिए हिमांचल से लड़ाया। इस प्रकार से अखिलेश यादव की गलती रही है कि उन्होंने राज्यसभा के लिए नौकरशाहो को खड़ा किया जिसे केवल 19 वोट मिले। पार्टी के अंदर बहुत से अच्छे उम्मीदवार होते हैं जो वर्षों तक इंतजार करते हैं लेकिन जब कांग्रेस और सपा में भी अपने कार्यकर्ता की अनदेखी की जाती है तो बगावत लाजमी है। बीजेपी ने सिर्फ विपक्षियों की अंदरूनी फूट एवं अनिश्चितता के माहौल का लाभ उठाया है।

हाल के वर्षों में दल बदल के उदाहरण :

- 2016 अरुणाचल प्रदेश के पीपुल्स पार्टी के 43 विधायकों में से 33 विधायक बीजेपी में शामिल हो गए।
- 2019 में गोवा में कांग्रेस के 15 में से 10 विधायकों ने अपने विधायक दल का भाजपा में विलय कर दिया।
- 2019 में राजस्थान में बसपा के 6 विधायकों ने अपने राजनीतिक दल का कांग्रेस में विलय कर दिया।
- 2019 कर्नाटक में कांग्रेस-जेडीएस की गठबंधन सरकार के 17 विधायकों ने इस्तीफा दे दिया तत्कालीन कर्नाटक के विधानसभा

अध्यक्ष ने उन्हें अयोग्य ठहराया, जिससे कर्नाटक विधानसभा में विधायकों की सदस्य संख्या 225 से घटकर 208 रह गई और बहुमत का आंकड़ा 105 हो गया था। बाकी विधायकों ने विधानसभा अध्यक्ष के फैसले को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी, जिस पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि विधायकों द्वारा इस्तीफा देने का यह मतलब नहीं कि उनको अयोग्य न ठहराया जाए, साथ ही स्पीकर को यह अधिकार नहीं की बागी विधायकों को उनके विधानसभा के बचे हुए कार्यकाल तक चुनाव लड़ने से रोक लगा दे।

- 2020 मध्य प्रदेश 2 में कांग्रेस पार्टी के 22 विधायकों ने ज्योतिरादित्य सिंधिया के साथ पार्टी से बगावत करते हुए अपना इस्तीफा दे दिया और 21 मार्च को भारतीय जनता पार्टी का दामन थाम लिया।
- 2022 महाराष्ट्र में शिवसेना के विधायको ने एकनाथ शिंदे के नेतृत्व में दो तिहाई विधायकों के साथ उद्धव ठाकरे को छोड़कर बीजेपी में शामिल हो गए और एकनाथ शिंदे ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली।
- 2 जुलाई 2023 महाराष्ट्र में ही एनसीपी के अजीत पवार ने अपनी पार्टी के विधायकों के साथ सिंदूर फनी सरकार में उपमुख्यमंत्री बने एनसीपी के पास 53 विधायक थे अजीत पवार ने 40 से अधिक विधायक अपने समर्थन में होने का दावा किया था।
- 2024 हिमाचल प्रदेश 3 में राज्यसभा में बगावत करने वाले सभी 6 बाकी विधायकों को हिमाचल प्रदेश विधानसभा स्पीकर कुलदीप ने अयोग्य घोषित कर दिया मतदान के दौरान कांग्रेस के 6 विधायकों ने क्रॉस वोटिंग की थी इसके अलावा तीन निर्दलीय विधायकों ने भी भाजपा की उम्मीदवार के पक्ष में वोट किया, इससे भाजपा और कांग्रेस दोनों ही राजनीतिक दलों की उम्मीदवार को बराबर यानी 34-34 वोट मिले फिर पर्ची के जरिए फैसला किया गया जिसमें भाजपा के हर्ष महाजन की जीत हुई। किंतु स्पीकर ने छह विधायकों को अयोग्य घोषित कर दिया था जिन्हें अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ा।

हमें यह बात समझने की जरूरत है कि हॉर्स ट्रेडिंग और रिसॉर्ट कल्चर की राजनीति भारतीय राजनीति में कोई उच्च नैतिक आदर्श या प्रतिमान नहीं

गढ़ती बल्कि यह भारतीय राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार ,अनैतिकता और सदन के सदस्यों के विचार शून्यता, स्वार्थपरता का परिणाम है। इसकी शुरुआत का श्रेय भाजपा को नहीं जा सकता। हम अगर इतिहास के आईने में देखेंगे तो नेहरू जी एवं लाल बहादुर शास्त्री जी के बाद की राजनीति में चव्हाण समिति की रिपोर्ट 1969[4] हमें बताती है कि (मार्च 1967 से फरवरी 1968) इस 12 महीने में 438 दल बदल के मामले सामने आए हैं। कुल निर्वाचित 376 उम्मीदवारों में से 157 उम्मीदवार या सदन सदस्य इन 12 महीने में विभिन्न दलों में शामिल हुए हैं। विभिन्न राज्यों के दल बदल करने वाले 210 विधायकों में से 116 विधायक को मंत्री परिषद में शामिल किया गया था। स्पष्ट है कि उसे दौर में मंत्री पद की लालच में विधायकों का पाला बदलने आम बात हो गई थी। हरियाणा के एक विधायक गया लाल ने 1967 में एक ही दिन में तीन बार अपनी पार्टी बदली और **आया राम और गया राम का नारा** भारतीय राजनीति में स्थापित कर दिया।

दल बदल को रोकने के लिए संवैधानिक प्रयास

52वाँ संविधान संशोधन विधेयक, 1985[5] दल बदल रोकने संबंधी कानून के तौर पर सर्वप्रथम राजीव गांधी की सरकार ने सफलता प्राप्त की। इन्होंने 1985 में 52 वां संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 101, 102 ,190 और 191 में संशोधन करके दल बदल करने पर निर्वाचित सांसद विधायक के अयोग्यता तय करने के साथ ही इसे दसवीं अनुसूची में स्थापित कर दिया गया।

दल बदल करने वाले निर्वाचित सदस्य निम्न आधारों पर सदन से अयोग्य घोषित हो जाएंगे :

- **स्वैच्छिक सदन सदस्यता त्याग कर**–यदि कोई निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से अपनी राजनीतिक दल की सदस्यता का त्याग कर देता है।
- **दलिय निर्देशों का उल्लंघन**–सदन का कोई निर्वाचित सदस्य यदि अपने राजनीतिक दल जिससे वह चुनकर गया है, उसके किसी दलीय अनुशासन/व्हिप या जारी निर्देश का उल्लंघन कर आदेश के विपरीत मतदान करता है या बिना अपनी राजनीतिक दल के स्वीकृति के मतदान में अनुपस्थित रहता है।

- निर्दलीय निर्वाचित सदन का सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- मनोनीत सदस्य 6 माह का कार्यकाल पूरा करने के उपरांत किसी अन्य राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है। इन उपरोक्त सभी परिस्थितियों में दल परिवर्तन करने वाले सदन के सदस्य की सदस्यता उसे सदन के अध्यक्ष के आदेश पर रद्द की जा सकती है।

सामूहिक दल बदल की अनुमति :

52वें संविधान संशोधन अधिनियम 1985 के द्वारा व्यक्तिगत दल परिवर्तन करने पर पूरी तरीके से रोक लग गई थी, किंतु इसका एक अपवाद इसमें शामिल किया गया था, जिसके अनुसार यदि किसी राजनीतिक दल के एक तिहाई सदस्य एक साथ दल परिवर्तन कर किसी दूसरे राजनीतिक दल में शामिल होते हैं, तो उनके ऊपर यह दल परिवर्तन कानून लागू नहीं होगा। वर्ष 2003 में इसमें संशोधन करते हुए **91वां संविधान संशोधन अधिनियम 2003**[6] पारित हुआ जिसके अंतर्गत सामूहिक दल बदल को तभी वैध माना जाएगा जब दल परिवर्तन करने वाले उस मूल राजनीतिक दल के कुल दो तिहाई सदस्य, उक्त विलय के पक्ष में हो।

दल बदल विरोधी कानून की चुनौतियां :

- **चुनावी जनादेश का उल्लंघन :** यह कानून व्यक्तिगत तौर पर राजनीतिक दल के सदस्य को अपना दल परिवर्तन करने पर रोक लगाता है, किंतु सामूहिक तौर पर राजनीतिक दल के सदस्यों को दल परिवर्तन करने को वैध ठहरा देता है। इस कानून के बावजूद हाल के वर्षों में कई राजनीतिक दलों के निर्वाचित सदस्यों की खरीद-फरोख्त या हॉर्स ट्रेडिंग में निरंतर बढ़ोतरी ही हुई है और रिसॉर्ट कल्चर विकसित हुआ है, जिसमें सत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक दल द्वारा अपने-अपने विधायकों को देश भर के रिसॉर्टो में छुपाना अब आम बात हो गई है।[7]
- **सदन में अधिकांश मुद्दों पर व्हिप जारी करने की परंपरा :** इस कानून के कारण सदन के निर्वाचित सदस्य अपने स्वतंत्र विवेक एवं मतदाताओं के हित के अनुसार मतदान नहीं कर पाते हैं तथा मुद्दे की प्र.ति जो भी हो वह अपने राजनीतिक दल के अनुशासनात्मक निर्देशों को मानने के लिए विवश होते हैं।

- **बहस और चर्चा पर प्रभाव :** यह कानून निर्वाचित सदस्यों को किसी भी मुद्दे पर गहराई से जांच करने और विचार विमर्श कर खुलकर बहस एवं प्रतिभाग करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं देता। इस तरह यह कानून बहुत और चर्चा को बढ़ावा देने के बजाय राजनीतिक दल और आंकड़ों पर आधारित लोकतंत्र का निर्माण करता है इसे संसद में किसी भी कानून पर होने वाली बहस कमजोर हो जाती है तथा असहमति (Dissent) एवं दल बदल (Defection) के बीच अंतर नहीं रह जाता।[8]
- **जनता के प्रति जवाब देही की शृंखला को बाधित किया है :** इस कानून ने निर्वाचित सदस्यों को राजनीतिक दलों के प्रति केवल जिम्मेदार ठहराकर जनता के प्रति जवाब देही की शृंखला को कमजोर कर दिया है।
- **सदन के स्पीकर की विवादास्पद भूमिका :** इस कानून में सदन के स्पीकर या अध्यक्ष के निर्णय की समय सीमा की कोई स्पष्टता नहीं है, कुछ मामले में सदन के स्पीकर का निर्णय आते-आते 6 माह तो कुछ मामले में 3 वर्ष भी लग जाते हैं। 2020 में सुप्रीम कोर्ट ने मणिपुर में एक मंत्री को अयोग्य घोषित कर दिया क्योंकि स्पीकर 3 साल की अवधि के बाद भी उनके खिलाफ दल परिवर्तन के मामले का निस्तारण नहीं कर पाए थे। कोर्ट ने घोषणा की कि स्पीकर को दल परिवर्तन संबंधी याचिकाओं पर अपने फैसले को अधिकतम तीन माह के भीतर घोषित करना चाहिए।

दल बदल विरोधी कानून न्यायिक समीक्षा के अधीन है :

मौलिक रूप से दल बदल विरोधी कानून के नियम-7 में यह उपबंध था कि अध्यक्ष द्वारा दिए गए निर्णय भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136, 226, 227 के तहत उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहेंगे। किंतु उच्चतम न्यायालय ने अपने अनेक निर्णयों में यह स्पष्ट कर दिया है कि दल बदल के संबंध में स्पीकर के निर्णय की न्यायपालिका द्वारा समीक्षा की जा सकती है।

किहोता होलोहॉन बनाम जचिल्हु और अन्य मामले, 1992 एस.सी.सी.-9 न्यायालय निर्णय दिया कि स्पीकर जो न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करता है उसके निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

राजेंद्र सिंह राणा एवं अन्य बनाम स्वामी प्रसाद मौर्य एवं अन्य मामले, 2007 10 में उच्चतम न्यायालय ने कहा की न्यायिक समीक्षा की शक्ति का निम्न परिस्थितियों में उपयोग किया जा सकता है-

- जब स्पीकर दल परिवर्तन की शिकायत पर कार्रवाई करने में विफल रहता है।
- जब स्पीकर बिना किसी निष्कर्ष और करण के विभाजन या विलय के दावे को स्वीकार करता है।
- जब स्पीकर दसवीं अनुसूची के अनुसार कार्य करने में विफल रहता है।

दल बदल विरोधी कानून को बेहतर बनाने के सुझाव :

- ➢ सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील विराग गुप्ता के अनुसार दल बदल कानून के दायरे से बचने के लिए निर्वाचित सांसद या विधायक इस्तीफा दे रहे, लेकिन जरूरत है कि ऐसा प्रावधान किया जाना चाहिए कि जिस कार्यकाल के लिए वह चुने गए थे अगर उससे पहले उन्होंने स्वेच्छा से त्यागपत्र दिया तो उन्हें उस वक्त तक चुनाव नहीं लड़ दिया जाए।
- ➢ फैजान मुस्तफा के अनुसार दल बदल कानून में संशोधन कर यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि दल बदलने वाले विधायक पूरे 5 साल के कार्यकाल में चुनाव नहीं लड़ सकता या फिर वह अविश्वास प्रस्ताव में वोट देंगे तो वो वोट काउंट नहीं किया जाएगा।
- ➢ कई विशेषज्ञों ने यह सुझाव भी दिया है कि यह कानून केवल उन वोटों के लिए वैध होना चाहिए, जो सरकार की स्थिरता निर्धारित करते हैं, जैसे वार्षिक बजट या अविश्वास प्रस्ताव के मुद्दे पर।
- ➢ दिनेश गोस्वामी समिति' 1990 और चुनाव आयोग ने सिफारिश की थी कि दसवी अनुसूची के तहत निर्हता के मुद्दे पर निर्णय लेने का अधिकार राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल को दिया जाना चाहिए, जो चुनाव आयोग की सलाह पर कार्य करेंगे।
- ➢ हासिम अब्दुल हलीम समिति की रिपोर्ट 1994 ,भारतीय विधि आयोग की 170 वी रिपोर्ट 1999, भारत के संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग के रिपोर्ट 2002, हाशिम अब्दुल हलीम समिति की रिपोर्ट 2003, भारतीय विधि आयोग की 255वीं रिपोर्ट

2015, में इस कानून की खामियों की समीक्षा कर अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, जिससे भारतीय लोकतंत्र को और बेहतर बनाने का प्रयास किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि खुले विचार के तौर से संसद के पटल पर इन सुझावों पर चर्चा करके दल बदल विरोधी कानून को और बेहतर और लोकतांत्रिक बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि भारतीय लोकतंत्र जनता का तंत्र बन सके।

राजनीति के इस बाजारीकरण में आए दिन अपनी पार्टी के प्रति निष्ठा को कपड़ों की तरह बदल कर हॉर्स ट्रेडिंग करने वाले इन राजनेताओं को इस बात को सोचना होगा कि जनता का विश्वास हासिल करना किसी ऑपरेशन का परिणाम नहीं होता। पत्रकार रवि प्रकाश के अनुसार कर्नाटक विधानसभा चुनाव में 2018 में भारतीय जनता पार्टी को 103 सीट मिली थी, लेकिन ऑपरेशन लोटस का परिणाम था कि 2023 में प्रत्यक्ष रूप से उसकी सीट घटकर मात्र 66 रह गई। इसमें रिपोर्टिंग के दौरान पार्टी के कैडर के नेता ने उनसे कहा था कि पार्टी ने अपनी विचारधारा और कैडर से समझौता किया, विधायकों को पैसे का प्रलोभन, मंत्री पद देने का निवेश से भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला। लोगों के बीच पार्टी की छवि धूमिल हुई और परिणाम आप सबके सामने हैं। इसी प्रकार महाराष्ट्र में शिवसेना और एनसीपी का विखंडन करके विगत 2 साल से जो राजनीति महाराष्ट्र में चल रही है वह ऑपरेशन के तौर पर कितनी सफल होगी, यह 2025 महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव बताएगा। इसी तरीके से आम आदमी पार्टी अगर देश की उभरती हुई राजनीतिक पार्टी है तो उसमें अन्ना हजारे की वैचारिकी का अमूल्य योगदान है। ठीक उसी तरह बहुजन समाजवादी पार्टी की नींव में कांशीराम और समाजवादी पार्टी के नींव में मुलायम सिंह के लोहियावादी सोच समाहित हैं। इसी प्रकार कांग्रेस भी स्वतंत्रता संग्राम संघर्ष के सेनानियों की वैचारिकी से प्रेरित रही है। क्षणिक स्वार्थ के लिए जब भी कोई दल अपने मूल से हटकर कार्य करेगा तो दीर्घकाल में उसका नुकसान होगा। इस तरह स्पष्ट है कि नए दौर की हॉर्स ट्रेडिंग और रिसॉर्ट कल्चर की राजनीति विमर्शी एवं निगरानी के लोकतंत्र का स्थाई समाधान कभी नहीं होंगे।

हमें समझने की जरूरत है कि यह देश गांधी का देश है, जहां अटल जी जैसे प्रधानमंत्री ने पार्टी के मूल्य एवं विचार के लिए सत्ता को लात मार दी थी,

भले ही उनकी सरकार 1996 में मात्र 13 दिन रही हो या 1998 में मात्र 01 वोट से सदन में बहुमत साबित करने में चूक गयी हो। अटल जी ने कहा था कि 11 ''पार्टी तोड़कर सत्ता के लिये नया गठबंधन करके अगर सत्ता हाथ में आती तो मैं ऐसी सत्ता को चिमटे से भी छूना पसंद नहीं करूंगा। न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितो यशः। भगवान राम ने कहा था कि मैं मृत्यु से नहीं डरता। अगर डरता हूँ तो बदनामी से डरता हूँ, लोकोपवाद से डरता हूँ। नीयत पर शक नहीं होना चाहिए'' सदन में अविश्वास प्रस्ताव का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि ''अध्यक्ष महोदय कमर के नीचे वार नहीं होना चाहिये। नीयत पर शक नहीं होना चाहिये। मैने यह खेल नहीं किया, मैं आगे भी नहीं करूंगा'' वास्तव में 1996 में अटल जी का मत था कि जनादेश कांग्रेस के खिलाफ है, चुनाव में कांग्रेस की संख्या आधी रह गयी, किन्तु अब सदन में भाजपा के विरूद्ध सब इकट्ठा होकर कांग्रेस का समर्थन करने को भी तैयार है और समर्थन कांग्रेस से प्राप्त भी कर रहे है। 1998 में जब 13 राजनीतिक दलों के गठजोड़ से भारतीय जनता पार्टी की सरकार मात्र 13 महीने चली, तब लालकिले की प्राचीर से 15 अगस्त को ऐतिहासिक भाषण देते हुए अटल जी ने कहा था कि ''**मैं जानता हूँ कि आज की व्यवस्था में निर्दोष संन्यासी को सत्ता-पिपासु फांसी चढ़ा देते हैं। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने जीवन में कभी सत्ता के लालच में सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं किया है, और न भविष्य में करूंगा। सत्ता का सहवास और विपक्ष का वनवास मेरे लिए एक जैसा है।**'' इस तरह हमें यह नहीं भूलना चाहिए की भाजपा आज दुनिया की सबसे बड़ी राजनीतिक दल के तौर पर स्थापित है तो इसमें कहीं न कहीं पंडित दीनदयाल उपाध्याय, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, अटल बिहारी वाजपेई जैसे युगपुरुष की दधीचि हड्डियां की आहुति दी गई है।

आहुति बाकी, यज्ञ अधूरा
अपनों के विघ्नों ने घेरा,
अन्तिम जय का वज्र बनाने,
नव दधीचि हड्डियाँ गलाएँ।
आओ फिर से दिया जलाएँ।
अटल बिहारी वाजपेयी जी

सन्दर्भ सूची :

1. अहमद, जुबेर: ''दल-बदल और क्रॉस वोटिंग: विपक्षी सरकारों के लिये कितनी बड़ी चुनौती, बी.जे.पी. को फायदा या नुकसान, ''बी.बी.सी. संवाददाता, 02 मार्च 2024
2. सैनी, गुरप्रीत: ''मध्य प्रदेश: दल-बदल कानून कैसे हुआ, बेमानी? ''बी.बी.सी. संवाददाता, 11 मार्च 2020
3. गुप्ता, अंकित: ''हिमांचल में सदस्यता गंवाने वाले 6 विधायकों पर दल-बदल विरोधी कानून लागू होगा या नहीं? ''टी.वी.-9, 29 फरवरी 2024
4. Malhotra, G.C. : Anti-Defection law in India and the Commonwealth (pp:3-9; 987-990 & 995)

   https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/58674/1/Anti_Defection_Law.pdf
5. डॉ. पाण्डेय, जय नरायन: भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी, 50वां संस्करण, 2017, पृष्ठ-481
6. वही, डॉ. पाण्डेय, जय नरायन: भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी, 50वां संस्करण, 2017, पृष्ठ-481
7. मिश्रा, दीप्ती: ''देश में दल-बदल लॉ की जरूरत क्यो पड़ी'' जागरण, 12 अप्रैल 2024
8. Rewaria, Sakshi: Anti-Defection Laws in India

   https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/58674/1/Anti_Defection_Law.pdf
9. कि हो तो होलोहान बनाम जा चील वाद 1992(1) एस0सी0सी0 309
10. राजेन्द्र सिंह राणा एंव अन्य बनाम स्वामी प्रसाद मौर्या वाद-2007
11. त्रिवेदी, विजय: ''हार नहीं मानूँगा'' एक अटल जीवन गाथा, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इण्डिया, 2016, पृष्ठ संख्या-118, 127, 153

डॉ. शक्ति जायसवाल

एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान विभाग)

बुद्ध विद्यापीठ पी.जी. कॉलेज, नौगढ़-सिद्धार्थनगर

E-Mail: shaktijaiswal59@gmail.com

Mob: 9838606388

❑❑❑

सतत विकास लक्ष्यों (SDG) की प्राप्ति की दिशा में वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों के समाजशास्त्रीय आयामों पर बॉलीवुड फिल्मों का एक अध्ययन

• प्रो. (डॉ.) रमेश कुमार शर्मा

सतत विकास लक्ष्य (SDGs) एक वैश्विक एजेंडा है जिसे 2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस संकल्प के साथ अपनाया गया की आगामी पंद्रह वर्षों यानी 2030 तक वैश्विक स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, गरीबी, असमानता और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं को समाप्त करना है। इस संकल्प की सिद्धि के लिए संयुक्त राष्ट्र और स्थानीय सरकारों के प्रयासों को जन जन तक पहुंचने और प्रेरित करने में सुचना और संचार के जन माध्यमों की भूमिका अत्यंत महत्त्व पूर्ण है। भारत में सिनेमा अथवा फिल्म का सूचना और जन माध्यमों का सबसे प्रचलित और आकर्षक माध्यम होने कारण इसकी भूमिका को केंद्र में रखकर अध्ययन किया गया है। बॉलीवुड भारत का सबसे बड़ा हिंदी फिल्म उद्योग है, जिसे हिंदी सिनेमा के रूप में भी जाना जाता है। यह शोध पत्र बॉलीवुड फिल्मों के माध्यम से वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों के समाजशास्त्रीय आयामों की समीक्षा करता है और भारत में सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को प्राप्त करने में इन फिल्मों की भूमिका को उजागर करता है। कुछ चुनिंदा फिल्मों के माध्यम से पर्यावरणीय समस्याओं, सामाजिक दृष्टिकोण और जनता के व्यवहार में बदलाव की दिशा में योगदान का अध्ययन किया गया है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य है कि यह पता लगाया जाए कि किस प्रकार बॉलीवुड फिल्मों ने पर्यावरणीय मुद्दों को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और समाज में जागरूकता बढ़ाई।

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2025

विशिष्ट शब्द : *सतत विकास लक्ष्य (SDGs), संयुक्त राष्ट्र, बॉलीवुड, पर्यावरण, सूचना, सिनेमा*

प्रस्तावना

सतत विकास लक्ष्य (SDGs) कुल 17 लक्ष्यों और 169 उपलक्ष्यों के माध्यम से आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, और पर्यावरण संरक्षण और उसमें संतुलन स्थापित करने का एक संकल्प है जिसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 अनुमोदित किए गया और 2030 तक हासिल करने की योजना बनाई गई है। इस संकल्प में जिन 17 लक्ष्यों को चिन्हित किया गया उनका विवरण निम्नवत है :

1. गरीबी का उन्मूलन: सभी जगहों पर गरीबी को समाप्त करना।
2. भूख का उन्मूलन: खाद्य सुरक्षा और पोषण को सुनिश्चित करना, और स्थायी कृषि का विकास करना।
3. स्वास्थ्य और कल्याण: सभी के लिए स्वस्थ जीवन और कल्याण को बढ़ावा देना।
4. गुणवत्ता शिक्षा: सभी के लिए समावेशी और गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त करना और जीवनभर के लिए सीखने के अवसर प्रदान करना।
5. लैंगिक समानता: महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों को सशक्त बनाना और लैंगिक समानता को प्राप्त करना।
6. स्वच्छ पानी और स्वच्छता: सभी के लिए जल और स्वच्छता की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
7. सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा: सभी के लिए सस्ती, विश्वसनीय, टिकाऊ और आधुनिक ऊर्जा की पहुँच सुनिश्चित करना।
8. सामाजिक और आर्थिक विकास: समावेशी, टिकाऊ और सतत आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और पूर्ण और उत्पादक रोजगार और सभी के लिए काम करना।
9. औद्योगीकरण, नवाचार और अवसंरचना: टिकाऊ औद्योगीकरण और नवाचार को बढ़ावा देना।
10. असमानता में कमी: देशों के भीतर और देशों के बीच असमानता को कम करना।

11. सतत शहर और समुदायः सतत शहरों और मानव बस्तियों का निर्माण करना।
12. उपयोग और उत्पादन के पैटर्न का स्थायित्वः टिकाऊ उपभोग और उत्पादन के पैटर्न को सुनिश्चित करना।
13. जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध कार्रवाईः जलवायु परिवर्तन और उसके प्रभावों के खिलाफ तात्कालिक कार्रवाई करना।
14. जल के पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षणः महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का सतत उपयोग करना।
15. स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षणः भूमि और पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण करना, वनों की रक्षा करना और भूमि में अवनति को रोकना।
16. शांतिपूर्ण और समावेशी समाजः शांतिपूर्ण और समावेशी समाज का निर्माण करना, न्याय की उपलब्धता सुनिश्चित करना और संस्थाओं का निर्माण करना।
17. सहयोग के लिए साझेदारीः वैश्विक स्तर पर सतत विकास को प्राप्त करने के लिए सहयोग बढ़ाना।

SDGs का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी लोग, चाहे वे किसी भी पृष्ठभूमि से हों, एक बेहतर जीवन जी सकें तथा प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण का समुचित उपयोग के साथ साथ उसमें संतुलन बना रहे। इन लक्ष्यों (SDGs) का समग्र दृष्टिकोण विकास के लिए समावेशी और टिकाऊ

Image source: https://sdgs.un.org/goals

ISSN 2278-4632

तरीकों को अपनाने पर जोर देता है, जिससे भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक बेहतर और अधिक सुरक्षित दुनिया का निर्माण किया जा सके।

पर्यावरणीय मुद्दे तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण: साहित्य समीक्षा

भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश है, परन्तु यहाँ लगभग सभी धर्मों की मान्यताओं में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहरी आस्था पाई जाती है। हिन्दू धर्म में, नदियों, पेड़ों और पर्वतों की पूजा की जाती है, जबकि बौद्ध धर्म और जैन धर्म में अहिंसा और पर्यावरण की रक्षा पर बल दिया जाता है। इस धार्मिक दृष्टिकोण के कारण लोगों में पर्यावरण के संरक्षण की भावना स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी अगर हम अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होता है की हमारे पूर्वज और मनीषी सदैव सामुदायिक विकास और स्थानीय संसाधनों के उचित उपयोग और आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज में समानता और समरसता पर भी जोर देने की बात करते थे जो कि पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों के समाजशास्त्रीय आयामों पर चर्चा करते हुए, यह समझना आवश्यक है कि पर्यावरण और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध है। भारत में सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति के लिए यह ज़रूरी है कि हम सामाजिक संरचनाओं, आर्थिक असमानताओं और सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखें। पर्यावरण के मुद्दों पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सम्बंधित कुछ प्रकाशनों जैसे पुस्तकों और शोध पत्रों की संछिप्त समीक्षा इस प्रकार है:

1. Gadgil, Madhav & Guha, Ramachandra (1995). Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India.

माधव गाडगिल और रामचंद्र गूह की पुस्तक *'इकोलॉजी एंड इक्विटी'* में समकालीन भारत में प्रकृति के उपयोग और दुरुपयोग पर ध्यान केंद्रित किया गया है। लेखक यह तर्क करते हैं कि पर्यावरणीय असमानताओं के बढ़ते स्तर के साथ-साथ आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सामाजित और पारिस्थितिकीय न्याय की कमी स्पष्ट होती जा रही है। यह पुस्तक भारत में पारिस्थितिकी और सामाजिक न्याय के बीच के संबंधों की जटिलताओं को उजागर करती है, विशेष रूप से आदिवासी और गरीब समुदायों पर इसके प्रभाव को। गाडगिल

और गूह का यह अध्ययन न केवल पर्यावरणीय स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक न्याय के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है।

2. Agarwal, Anil & Narain, Sunita (1997). Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems.

Agarwal & Narain (1997) द्वारा प्रकाशित पुस्तक " Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems." भारत के पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों के उत्थान, पतन और संभावनाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक दर्शाती है कि किस प्रकार जल संकट के संदर्भ में पारंपरिक ज्ञान और प्रथाओं को भुलाया जा रहा है। लेखक बताते हैं कि इन पारंपरिक प्रणालियों का संरक्षण और पुनर्स्थापन न केवल जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए आवश्यक है, बल्कि यह स्थानीय समुदायों के लिए भी जीवनदायिनी साबित हो सकता है। इस अध्ययन में जल प्रबंधन की पारंपरिक विधियों की पुनर्वापसी की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

3. Guha, Ramachandra & Martinez-Alier, Joan (1998). Varieties of Environmentalism: Essays North and South.

गुहा और मार्टिनेज-एलियेर (1998) की पुस्तक "Varieties of Environmentalism" में उत्तरी और दक्षिणी देशों के पर्यावरणीय विचारों की तुलना की गई है। यह पुस्तक विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों में पर्यावरणीय चिंताओं की विविधता को उजागर करती है, जिसमें विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच के जटिल संबंधों का विश्लेषण किया गया है। लेखक यह तर्क करते हैं कि पर्यावरणीय मुद्दे केवल वैश्विक नहीं हैं, बल्कि उनके स्थानीय और ऐतिहासिक संदर्भ भी महत्वपूर्ण हैं। यह अध्ययन पर्यावरणीय सक्रियता के विभिन्न रूपों को समझने में सहायक है, जो विभिन्न देशों की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं।

4. Berkes, Fikret (2008). Sacred Ecology.

फिकरेट बर्केस (2008) की "Sacred Ecology" में पारिस्थितिकी और स्थानीय ज्ञान के बीच के संबंधों का अध्ययन किया गया है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि पारंपरिक समुदायों का प्रकृति के प्रति संबंध एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है, जो पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। बर्केस का यह काम दिखाता है कि कैसे स्थानीय ज्ञान और अभ्यास,

विशेष रूप से पवित्र स्थलों और सांस्कृतिक मान्यताओं के संदर्भ में, पारिस्थितिकी और संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यह अध्ययन पारिस्थितिकी और संस्कृति के संयोग को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

5. IPCC (2014). Climate Change 2014: Impacts, Adaptation, and Vulnerability.

आईपीसीसी (2014) की जलवायु परिवर्तन 2014: प्रभाव, अनुकूलन, और संवेदनशीलता रिपोर्ट जलवायु परिवर्तन के व्यापक प्रभावों और मानव समाज पर इसके दीर्घकालिक परिणामों का विश्लेषण करती है। यह रिपोर्ट बताती है कि जलवायु परिवर्तन न केवल पर्यावरणीय बल्कि आर्थिक और सामाजिक रूप से भी विनाशकारी हो सकता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां लोगों की संवेदनशीलता अधिक है। इसमें अनुकूलन की रणनीतियों पर जोर दिया गया है, जो स्थानीय समुदायों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचने और अपने जीवन को सुरक्षित रखने में मदद कर सकती हैं। रिपोर्ट यह दर्शाती है कि वैश्विक और स्थानीय स्तर पर सहयोग के बिना जलवायु परिवर्तन से निपटना असंभव है।

6. Shiva, Vandana (2016). Staying Alive: Women, Ecology and Development

वंदना शिवा की पुस्तक स्टेइंग अलाइव: वुमेन, इकोलॉजी एंड डेवलपमेंट में महिलाओं की भूमिका और पारिस्थितिकी के बीच के गहरे संबंधों की चर्चा की गई है। शिवा का तर्क है कि महिलाओं ने पारिस्थितिकीय स्थिरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, विशेष रूप से ग्रामीण और कृषि आधारित समुदायों में। वह इस बात पर जोर देती हैं कि विकास के मौजूदा मॉडल अक्सर महिलाओं की आवाज़ और उनके ज्ञान को नजरअंदाज करते हैं, जो कि पारिस्थितिकी और समाज के लिए हानिकारक होता है। इस प्रकार, पुस्तक यह दिखाती है कि यदि हम सच में स्थायी विकास की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं, तो हमें महिलाओं के पारंपरिक ज्ञान और अनुभव को सम्मानित करना और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करना आवश्यक है।

7. Singh,R. (2020). "Sustainable Development Goals and Sociological Perspectives." Journal of Environmental Sociology

Journal of Environmental Sociology में प्रकाशित R. Singh का लेख

"Sustainable Development Goals and Sociological Perspectives" पर्यावरणीय समाजशास्त्र की दृष्टि से स्थायी विकास लक्ष्यों का विश्लेषण करता है। इस लेख में बताया गया है कि कैसे समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय कारकों के बीच जटिल अंतर्संबंधों को समझने में मदद कर सकता है। सिंह इस बात पर जोर देते हैं कि स्थायी विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हमें न केवल तकनीकी समाधान की आवश्यकता है, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के संदर्भ में भी एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह लेख सामाजिक न्याय, सामुदायिक भागीदारी और पर्यावरणीय स्थिरता के महत्व को रेखांकित करता है।

उपर्युक्त पुस्तकों और शोध पत्रों की समीक्षा के आधार पर हम यह कह सकते हैं की, वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण भारत के सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि हम पर्यावरणीय समस्याओं के सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक प्रभावों को समझें और समावेशी नीतियों के माध्यम से सभी वर्गों के लिए समान अवसर और न्याय सुनिश्चित करें। इस प्रकार, सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पर्यावरणीय मुद्दों को समझना और उनके समाधान के लिए सामुदायिक और सामाजिक ढांचे में बदलाव आवश्यक है।

अध्ययन का उद्देश्य

बॉलीवुड, भारत की सबसे प्रचलित हिंदी फिल्म इंडस्ट्री होने के साथ-साथ सामाजिक संदेशों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का एक सशक्त साधन भी है। जिसने समय-समय पर सामाजिक मुद्दों को उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पर्यावरणीय मुद्दों पर केंद्रित बॉलीवुड हिंदी फिल्मों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है, जिनका उद्देश्य पर्यावरण के प्रति समाज में जागरूकता बढ़ाने और उनके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है।

बॉलीवुड फिल्मों में पर्यावरणीय मुद्दे तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

सुचना एवं जन संचार तथा मनोरंजन के क्षेत्र में बॉलीवुड (हिंदी फिल्म इंडस्ट्री) का प्रमुख स्थान है, यह भारत की सबसे प्रचलित एवं प्रमुख फिल्म

इंडस्ट्री होने के साथ-साथ दुनिया की सबसे बड़ी फिल्म इंडस्ट्री में से एक है। बॉलीवुड की शुरुआत 1913 में दादा साहेब फाल्के के द्वारा निर्मित पहली मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र से हुई थी। आज लगभग सौ वर्षों से अधिक का सफर तय कर चुकी बॉलीवुड इंडस्ट्री में हर साल हज़ारों फिल्में बनती हैं, जो न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी रिलीज़ होती हैं। बॉलीवुड फिल्मों का निर्यात कई देशों में होता है, विशेषकर मध्य-पूर्व, अमेरिका, ब्रिटेन और दक्षिण-पूर्व एशिया में। बॉलीवुड भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने के साथ पर्यटन को भी बढ़ावा देती है जिससे विदेशी दर्शक भी भारतीय संस्कृति और परंपराओं के प्रति आकर्षित होते हैं। बॉलीवुड का भारतीय समाज और जीवनशैली पर गहरा प्रभाव है। इसने मनोरंजन के अलावा सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरण से संबंधित मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति के लिए बॉलीवुड फिल्मों के समाजशास्त्रीय द्दटिकोण की बात करें तो हम फिल्मों के माध्यम से सामाजिक जागरूकता का निर्माण, संवेदनशीलता और नैतिकता का विकास, सामुदायिक भागीदारी और समाधान, पर्यावरणीय न्याय, व्यक्तिगत जिम्मेदारी का बोध और नीति निर्माताओं पर प्रभाव का आकलन करते हैं। पर्यावरणीय मुद्दों पर जागरूकता फैलाने के लिए बॉलीवुड हिंदी फिल्मों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रदूषण, जल संरक्षण, वन्यजीव संरक्षण, जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संतुलन जैसे विषयों को कहानी के केंद्र में रखकर कई फिल्मों का निर्माण किया है। अतः पर्यावरणीय समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन समझने के लिए कुछ हिंदी फिल्मों का विश्लेषण प्रस्तुत है :

1. SDG 13 और 15 को केंद्र में रखकर बॉलीवूड निर्देशक अभिषेक कपूर ने अभिनेता सुशांत सिंह राजपूत और अभिनेत्री सारा अली खान को लेकर 2013 में केदारनाथ में आयी भयंकर बाढ़ और भूस्खलन की विभीषिका को एक प्रेम कहानी के माध्यम से दर्शाया गया है, फिल्म 'केदारनाथ' के केंद्र में एक बड़ा पर्यावरणीय मुद्दा है। तीर्थयात्रा के दौरान पर्यटन के बढ़ते दबाव, अव्यवस्थित विकास, और पर्यावरण के प्रति लापरवाह द्दष्टिकोण को दर्शाया गया है, जिससे प्राकृतिक आपदाओं का खतरा और भी बढ़ जाता है। बी बी सी के हवाले से प्रकाशित एक

रिपोर्ट के अनुसार इस भयावह त्रासदी में हज़ारों लोगों की मृत्यु हो गयी और कुछ का तो अता पता ही नहीं लग पाया, वैसे तो यह प्राकृतिक आपदा थी परन्तु भारी धन-जन की हानि के पीछे अव्यस्थित जनसंख्या वृद्धि और पहाड़ों को तोड़कर किया गया अव्यवस्थित निर्माण हैं। फिल्म में जलवायु परिवर्तन और मानव गतिविधियों के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय असंतुलन को अप्रत्यक्ष रूप से दिखाया गया है।

फिल्म में दिखाया गया है कि किस तरह मानवीय गतिविधियों, जैसे अधिक निर्माण कार्य और जंगलों की कटाई, ने क्षेत्र की पारिस्थितिकी को प्रभावित किया है। इन गतिविधियों ने नदियों की धाराओं में अवरोध पैदा किया, जिसके परिणामस्वरूप 2013 की आपदा और भी विनाशकारी साबित हुई। 'केदारनाथ' इस बात को भी उजागर करती है कि किस प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों में अतिवृष्टि और भूस्खलन जैसी घटनाएं जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हुई हैं। यह प्राकृतिक आपदा हमारे लिए एक चेतावनी के रूप में देखी जा सकती है कि अगर हम जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यान नहीं देंगे, तो इस तरह की आपदाएं बार-बार होंगी। फिल्म 'केदारनाथ' पर्यावरणीय असंतुलन के बीच मानवीय रिश्तों और संघर्षों को दिखाने का प्रयास करती है, जो यह संदेश देती है कि प्रकृति के साथ तालमेल बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2. SDG 13: जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को उजागर करने और इससे निपटने के लिए 2017 में कड़वी हवा' एक संवेदनशील और गंभीर फिल्म है जो जलवायु परिवर्तन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले संकटों को उजागर करती है। फिल्म की कहानी बुंदेलखंड और ओडिशा के सूखाग्रस्त और बाढ़ प्रभावित इलाकों के इर्द-गिर्द घूमती है, जहाँ किसानों का जीवन जलवायु असंतुलन से बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। नील माधब पांडा द्वारा निर्देशित यह फिल्म पर्यावरण के दो बड़े मुद्दों जलवायु में आ रहे बदलाव और जल स्तर में असंतुलन और सूखा या बाढ़ जैसी गंभीर समस्याओं को दर्शाती है, फिल्म की पृष्ठ्भूमि उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड और उड़ीसा के तटीय इलाकों पर केंद्रीय है दोनों क्षेत्रों में पर्यावरणीय असंतुलन होने के कारण जहाँ बुंदेलखंड के लोग

कम बरसात होने और जल स्तर घटने की समस्या से जूझ रहे हैं वही उड़ीसा के तटीय इलाके के लोग अत्यधिक वर्षा, बाढ़ और जल स्तर बढ़ने से परेशान दिखाए गए हैं। यह फिल्म पूरे देश में जारी मौसमी बदलाव और उसके दुष्प्रभाव को दर्शाने के साथ साथ किसानों की आत्महत्या जैसे ज्वलंत मुद्दों को सामने लाती है। यह फिल्म न सिर्फ एक गंभीर सामाजिक और पर्यावरणीय मुद्दे को दर्शाती है बल्कि यह सन्देश भी देती है की समय रहते अगर इस गंभीर समस्या से हम सचेत नहीं होंगें तो पूरे विश्व को जलवायु परिवर्तन के गंभीर परिणामों को झेलना होगा।

3. कांतारा ऋषभ शेट्टी द्वारा निर्देशित एक कन्नड़ फिल्म है जिसको हिंदी भाषा में डब करके प्रदर्शित किया गया है, कांतारा कन्नड़ भाषा का शब्द है जिसका एक अर्थ जंगल होता है। कर्नाटक में जंगल के देवता को कांतारे कहा जाता है। यह फिल्म SDG 15 स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण करना, वनों की रक्षा करना और भूमि में अवनति को रोकना तथा SDG 16 शांतिपूर्ण और समावेशी समाज पर आधारित है, 'कांतारा' फिल्म की कहानी का मूल विषय वन और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण है, जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से, फिल्म वन संसाधनों के दोहन, अवैध खनन, और जंगलों की कटाई के नकारात्मक प्रभावों को सामने लाती है, जो सीधे तौर पर स्थानीय समुदायों की आजीविका और पारिस्थितिकी पर प्रभाव डालते हैं। निर्देशक ने फिल्म के माध्यम से जंगल में बसने वाले वनवासियों और आदिवासियों का जंगल एवं वन सम्पदा पर उनके अधिकारों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ यह संदेश भी प्रसारित करता है कि जंगल और प्राकृतिक सम्पदा के बिना वहाँ के लोगों की सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान समाप्त हो जाती है। आदिवासी समुदाय अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर होते हैं, और इन संसाधनों की हानि न केवल पर्यावरणीय असंतुलन पैदा करती है, बल्कि स्थानीय समुदायों को भी हाशिये पर धकेलती है। कहानी के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती वन्यजीवों और मानवों के बीच संघर्ष, पारंपरिक संसाधनों की कमी और प्रकृति के प्रति मानवीय लालच की भी

आलोचना की गई है। फिल्म में दिखाया गया है कि प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखना न केवल सामुदायिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह पर्यावरणीय स्थिरता के लिए भी आवश्यक है।

समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण का सामान्य अर्थ सामाजिक जागरूपता, संवेदनशीलता, सामुदायिक भागीदारी और व्यक्तिगत जिम्मेदारी का बोध होता है। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में निहित वैश्विक पर्यावरणीय और जलवायु परिवर्तन समेत अन्य मुद्दों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, गरीबी उन्नमूलन, लिंग भेदभाव और स्वछता सदैव बॉलीवुड फिल्मों का प्रमुख विषय रहा है। SDG 3: स्वास्थ्य और कल्याण को ध्यान में रखकर पैडमैन, SDG 6: स्वच्छ जल और स्वच्छता पर आधारित - टॉयलेट: एक प्रेम कथा, SDG 13: जलवायु परिवर्तन पर आधारित कड़वी हवा, SDG 15: स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण-पर केंद्रित शेरनी और अभी हाल में प्रदर्शित फिल्म रोबोट जिसमें मोबाइल टावर द्वारा निकलने वाले चुंबकीय तरंगों से गोरैया व अन्य छोटी पक्षियों की प्रजातियां पर हो रहे नुकसान को दिखाया गया है। यह सब सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) पर आधारित कुछ बॉलीवुड फिल्मों के उदहारण है ऐसी अनगिनत हिंदी फ़िल्में है जिनका समाज, पारिस्थितिकी और पर्यावरण को लेकर जन चेतना के निर्माण और सामाजिक सुधारों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

निष्कर्ष

समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण का सामान्य अर्थ सामाजिक जागरूपता, संवेदनशीलता, सामुदायिक भागीदारी और व्यक्तिगत जिम्मेदारी का बोध होता है। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में निहित वैश्विक पर्यावरणीय और जलवायु परिवर्तन समेत अन्य मुद्दों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, गरीबी उन्मूलन, लिंग भेदभाव और स्वछता सदैव बॉलीवुड फिल्मों का प्रमुख विषय रहा है। SDG 3: स्वास्थ्य और कल्याण को ध्यान में रखकर पैडमैन, SDG 6: स्वच्छ जल और स्वच्छता पर आधारित - स्वदेश लगान एवं टॉयलेट: एक प्रेम कथा, SDG 13: जलवायु परिवर्तन पर आधारित कड़वी हवा, SDG 15: स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण-पर केंद्रित शेरनी और अभी हाल में प्रदर्शित फिल्म रोबोट जिसमें मोबाइल टावर द्वारा निकलने वाले चुंबकीय तरंगों से गोरैया व अन्य छोटी पक्षियों की प्रजातियां पर हो रहे नुकसान को दिखाया गया

है। यह सब सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) पर आधारित कुछ बॉलीवुड फिल्मों के उदहारण है ऐसी अनगिनत हिंदी फ़िल्में है जिनका समाज, पारिस्थितिकी और पर्यावरण को लेकर जन चेतना के निर्माण और सामाजिक सुधारों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- Agarwal, Anil & Narain, Sunita (1997). Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems.
- Berkes, Fikret (2008). Sacred Ecology.
- Guha, Ramachandra & Martinez-Alier, Joan (1998). Varieties of Environmentalism: Essays North and South.
- Gadgil, Madhav & Guha, Ramachandra (1995). Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India.
- IPCC (2014). Climate Change 2014: Impacts, Adaptation, and Vulnerability.
- Singh, R. (2020). "Sustainable Development Goals and Sociological Perspectives." Journal of Environmental Sociology.
- Shiva, Vandana (1988). Staying Alive: Women, Ecology and Development.
- Shiva, Vandana (2016). Staying Alive: Women, Ecology and Development.
- https://www.jansatta.com/review/movie-review/kadvi-hawa-movie-review-film-imdb-rating
- https://www.bhaskar.com/ent-revi-rev-movie-review-jal-4570200-nor.html/
- https://www.bbc.com/hindi/articles/cge198wd4eko#
- https://indiafoundation.in/articles-and-commentaries/the-2013-kedarnath-tragedy-and-the-post-calamity-eco-conscious-development/
- https://www.bhaskar.com/bihar/shekhapura/news/sparrow39s-twitter-is-now-a-thing-of-the-past-birds-that-are-extinct-from-radiation-093005-4819319.html
- https://navbharattimes.indiatimes.com/movie-masti/movie-review/2-0-movie-review-in-hindi/moviereview/66858544.cms

प्रो. (डॉ.) रमेश कुमार शर्मा

विवेकानंद इंस्टिट्यूट ऑफ़ प्रोफेशनल स्टडीज, दिल्ली

❑❑❑

भारत में पुर्तगालियों द्वारा निर्मित प्रथम दुर्ग के अवशेष

केरल के कोच्चि के दक्षिण समुद्रतटीय क्षेत्र की लहरों के कारण से फोर्ट इम्मेनुअल के अवशेष उजागर हुए हैं। विशेषज्ञों का विश्वास है कि यह पुर्तगालियों द्वारा एशिया में निर्मित प्रथम दुर्ग है। कोचीन विश्वविद्यालय के समुद्री भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार उजागर हुए अवशेष सम्भवतः फोर्ट इम्मेनुअल के हो सकते हैं जिसका निर्माण पुर्तगालियों ने 1503 ई. में किया था। समुद्री भूगर्भ शास्त्री रथीस कुमार का मानना है कि वे इस बारे में यह निश्चय कर रहे हैं कि क्या यह मूल दुर्ग है जिसे पुर्तगालियों ने बनाया था या डचों ने इसका पुनर्निर्माण करवाया था।

यह अत्यंत दिलचस्प खोज है जिससे भारत में पुर्तगालियों के आगमन के काल, उनके द्वारा निर्मित दुर्ग एवं व्यापारिक संस्थान की जानकारी प्राप्त होती है।

टाईम्स ऑफ इण्डिया

25 जून, 2025

रायपुर संस्करण

❑❑❑

बहज-पुरातात्विक उत्खनन की सर्वे रिपोर्ट

प्रागैतिहासिक काल हो पुरामहत्व का युग, राजस्थान सदैव से ही चर्चा में रहा है। कालीबंगा, आहड़ जैसे पुरास्थलों ने राज्य को विश्व पटल पर विशिष्ट पहचान दी है। राजस्थान के भरतपुर संभाग के डीग जिले के पास बहज गांव में 2024 से पुरातात्विक खुदाई का कार्य चल रहा है। एक लम्बे इंतजार के बाद विगत मई में वहां की यात्रा करने का अवसर मिला। प्रारम्भिक अन्वेषण में पुराविदों ने इसे रेड-वेयर साइट रिपोर्ट किया था।

डीग अपने जल महल के लिए प्रसिद्ध है। मथुरा, वृंदावन आदि बृज क्षेत्र के समीप होने के कारण इस क्षेत्र का धार्मिक महत्व अधिक है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग जयपुर द्वारा बृज को ऐतिहासिक महत्व का घोषित करने का जिम्मा लिया और 2024 में यहां वृहद उत्खनन शुरू किया।

डीग पहुंच कर सबसे पहले पैलेस देखने का सौभाग्य लिया जो मध्यकालीन भवन स्थापत्य कला का नायाब उदाहरण है। यहां की वर्षा-जल संग्रहण की तकनीक वर्तमान समय में अत्यंत प्रांसगिक है। यहां से सुबह सात बजे बहज के लिए निकला। करीब 5 किमी की दूरी तय करने के बाद मुख्य स्थल पर पहुंचा।

बहज गांव में ऐतिहासिक उत्यानन से कई चौकाने वाले तथ्य सामने आए है। वहां जयपुर सर्किल के अधिक्षक श्री विनय गुप्ता जी से वहां मिलना हुआ। उनके अनुसार यहां महाभारत कालीन सभ्यता से जुड़े महत्वपूर्ण अवशेषों की खोज की जा रही है और काफी सामग्री मिली है। यह स्थान गोवर्धन के 84 कोस की परिक्रमा से सटा हुआ है। ऐसा माना जा रहा है कि कालीबंगा के बाद यह क्षेत्र पुरामहत्व की दृष्टि से काफी बड़ा और अहम है। उन्होंने बताया कि यहां से लगभग 4500-5000 वर्ष पुरानी महाभारत कालीन संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। खुदाई में समग्र निवास स्थान मिला है जिसमें कुआं, भोजन शाला, शयन कक्ष व बैठक आदि हैं। यहां एक महिला का कंकाल भी मिला

है। यद्यपि वो मुझे देखने का सौभाग्य नहीं किला क्योंकि उसे डेटिंग के लिए प्रयोगशाला में भेज दिया गया था। कंकाल की लम्बाई 5 फीट 2 इंच बताई गई। संभवत: कंकाल को गुप्त कालीन माना जा रहा है। इसी तरह हड्डियों से औजार बनाने का कारखाना अथवा कार्यशाला के अवशेष भी मिले हैं।

खुदाई में लगे पवन सारस्वत ने बताया कि आरंभ में इस स्थल में उत्खनन कार्य PGW सांस्कृतिक जमाव का अध्ययन करना था लेकिन बाद में सब बदलता ही चला गया। यहां से शिव पार्वती की मूर्तियां मिली हैं। एक मिट्टी के टुकड़े पर त्रिशूल और डमरू कर अंकन मिला है यह देखकर मैं रोमांचित हो रहा था। यह अब तक की सबसे महत्वपूर्ण सामग्री है। मनकों के अवशेष, शंख से बनी चुड़ियां और धातु के औजार बनाने की भट्टियां भी मिली है। ऐसा माना जा रहा है कि यह उत्खनन महाभारत कालीन सभ्यताा को समझने में महत्वपूर्ण उपलब्धि साबित होगी।

पवन के अनुसार यहां से मिलने वाली सामग्री में पंचमार्क सिक्के भी महत्वपूर्ण सामग्री है। 2000 से 5000 साल पुरानी मुहर, सिलिंग के साथ-साथ इनसे भी पुराने पंचमार्क सिक्के मिले हैं। मौर्य कालीन ब्राह्मी की मुहर और सिलिंग मिली है जिसका निर्माण जेस्पर से किया गया है। इन पर ब्राह्मी लिपि के साथ स्वास्तिक व पंच जीवों का अंकन है जिसमें मोर, मछली, कछुआ आदि है। प्राप्त मोहर अति दुर्लभ है जो राजकीय प्रमाण की हो सकती है। वहीं अन्य मुहरों में शुंग कुषाण काल के स्थलों से मिली है। इनमें ब्राह्मी, खरोष्ठी दोनों लिपि की सिलिंग है। खरोष्ठी लिपि की सिलिंग बृज क्षेत्र में मिलना अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। मुहरों पर स्वास्तिक त्रिरत्न आदि का अंकन है। खुदाई में कुछ स्तरों से चांदी व तांबे के पंचमार्क सिक्के मिले हैं। शुंग-कुषाण काल के सिक्कों पर हाथी, मेरू पर्वत, वृषभ, कुषाण शासकों व दैवियों का अंकन है। यह इस खुदाई की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है।

यहां मुहरों के अलावा टेराकोटा पात्र, कपड़े, रिंग स्टोन आदि पर भी लिपि का अंकन मिला है। खुदाई में जो 4 मिट्टी की सिलिंग मिली है उन पर ब्राह्मी का अंकन है। ये ब्राह्मी के प्राचीनतम प्रमाण है।

उत्खनन स्थल का सबसे उत्कृष्ट दृश्य मिट्टी के रिंग बेल थे। यहां करीब 10 माउंट (टेंच) पर खुदाई हो रही है। उनमें करीब तीन ऐसे टेंच हैं

जिनमें 6 रिंग वेल मिले है। ये करीब 40 फीट गहरी है। ऐसा अनुमान है यहां एक दौर में सरस्वती नदी का पाट रहा है। यह दृश्य सिर्फ उत्खनन क्षेत्र में ही देखा जा सकता है अन्यत्र नहीं। श्री विनय गुप्ता ने यह दावा किया है कि यह सरस्वती नदी के बहाव क्षेत्र का की ओर इशारा करता है। यदि गुप्ता जी का यह दावा सही साबित हो जाता है तो इसे इस उत्खनन की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक माना जाएगा। जिसका श्रेय सभी काम करने वाले मजदूरों और पुरातत्वविदों को जाता है। इसे पैलियो चैनल माना जा रहा है। एक दफन प्राचीन नदी तल जो बहज को बड़ी सरस्वती बेसिन संस्कृति से जोड़ता है। उन्होंने यह भी माना कि इस नदी के कारण ही यहां सभ्यता का विकास हुआ।

खुदाई को और अधिक उल्लेखनीय बनाने वाली बात है वहां मिले अनुष्ठान के अवशेष। यहां 15 यज्ञ कुंड, शक्ति पुजा के लिए समर्पित मन्नत टैंक महत्वपूर्ण है। यज्ञ कुंड महाजनपद कालीन है जो रेतीली मिट्टी से भरे हैं और वहीं छोटे बर्तनों में बिना लिखे तांबे के सिक्के भी थे।

उत्खनन से बहज की समृद्ध शिल्प विरासत का भी पता चलता है। यहां से मिलने वाली सामग्री निवासियों की आर्थिक जीवंतता को उजागर करती है। मुख्य रूप से मिट्टी के बर्तनों में सबसे नीचे के स्तर से गैरिक मृदभांड संस्कृति के अवशेष मिले हैं। उसके ऊपर के जमाव में (BRW) कृष्ण मार्जित मृदभांड संस्कृति का छोटा जमाव मिला है। (BRW) जमाव के ऊपर हमें एक बड़ा जमाव चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति का जमाव मिला है। इसके ऊपर फिर हमें क्रमवार मौर्य, शुंग, कुषाण व गुप्त काल के जमाव मिले हैं।

मुख्यतः OCP को छोड़कर ऊपर के जमाव में कच्ची ईंटों की प्राप्ति हुई है। शुंग काल से मुख्यतः पक्की ईंटों का निर्माण व्यापक स्तर पर दिखता है। कुषाण काल तक आते आते इन शुंग ईंटों का पुन उपयोग भवन निर्माण में दिखता है। इसके साथ भवनों में कच्ची मिट्टी के फर्श, चूल्हे, सिलबट्टे व स्टोरेज के जार भी मिले हैं।

जहां तक मनकों की बात है तो अगेट, क्रिस्टल, करनेलियन, ग्लास, हड्डी, शंख, अमिथिस्ट, फिआंस इत्यादि की प्राप्ति विभिन्न स्तरों से हुई है। इसी तरह कुषाण काल के टेराकोटा प्लेक मातृदेवियों की मूर्तियां, अश्विनी

GOVT. OF INDIA
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA
उत्खनन स्थल, बहज
EXCAVATION SITE, BAHAJ
जिला - डीग
Distt. DEEG

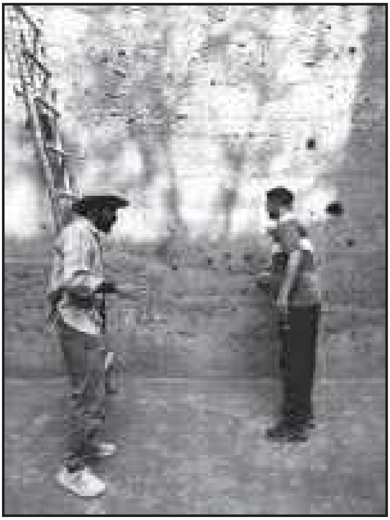

कुमार, नवग्रह पैनल, कुबेर, महिषासुर मर्दिनी आदि की मूर्तियां भी यहां से मिली है।

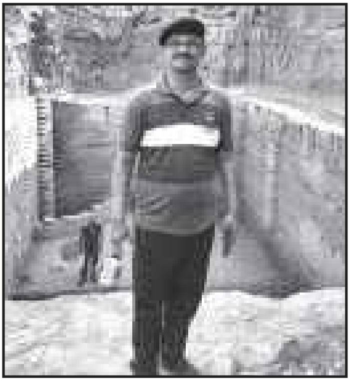

इस प्रकार इस क्षेत्र ने सारा परिदृश्य ही बदल दिया। यहां प्राचीन बस्ती के निर्माण के साक्ष्य, औद्योगिक नगर होने के प्रमाण, धार्मिक महत्व, व्यापारिक व प्रशासनिक स्थिति के प्रमाण तथा विभिन्न सांस्कृतिक जमाव साक्ष्य मिले हैं। इससे बहज भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि एक समृद्ध सभ्यता का प्रतीक बन गई है। मुझे इस पुरास्थल का दौरा करने से ज्ञानवर्धन हुआ और इसके लिए मैं श्री विनय गुप्ता जी व उनके सहयोगी पवन सारस्वत, मनोज मीना, सत्यप्रकाश कुमावत का तथा वहां लगे सभी कर्मचारियों का हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

डॉ. रीतेश व्यास

बीकानेर (राज)

❑❑❑

हीरक जयन्ती

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति

संस्कृति भवन, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

कार्यकारिणी समिति-वर्ष 2025-2030

श्याम महर्षि
अध्यक्ष

सुशील कुमार बाहेती
वरिष्ठ उपाध्यक्ष

भीखमचंद पुगलिया
उपाध्यक्ष

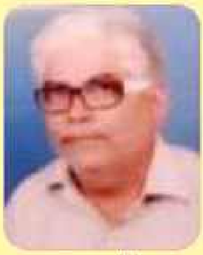
सत्यदीप
उपाध्यक्ष

डॉ. मदन सैनी
उपाध्यक्ष

रवि पुरोहित
मंत्री

सत्यनारायण योगी
संयुक्त मंत्री

विजय महर्षि
संयुक्त मंत्री

रामचन्द्र राठी
कोषाध्यक्ष

महावीर सारस्वत
प्रचार मंत्री

शोभाचंद आसोपा
सदस्य

भीकमचन्द पुगलिया
सदस्य

बजरंग शर्मा
सदस्य

महावीर प्रसाद माली
सदस्य

भंवरलाल भोजक
सदस्य

तुलसीराम चौरड़िया
सदस्य

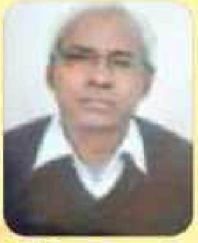
गोपीराम फूलभाटी
सदस्य

महेश जोशी
सदस्य

नारायणचन्द्र शर्मा
सदस्य

भगवती पारीक
सदस्य

सम्पर्क : 9414416274, 9414416252, 9414416269, 01565-294670 (कार्यालय)

www.rbhpsdungargarh.com hindipracharsamiti@gmail.com

जूनी ख्यात परिवार की तरफ से हार्दिक बधाई।

मरूभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

कार्यकारिणी समिति-वर्ष 2025-2030

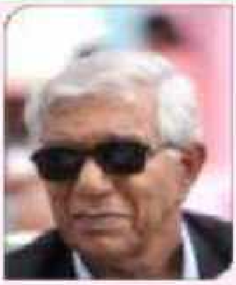

प्रो. बी. एल. भादानी
अध्यक्ष एवं पदेन निदेशक

डॉ. चेतन स्वामी
उपाध्यक्ष

डॉ. गजादान चारण
उपाध्यक्ष

श्याम महर्षि
सचिव

रवि पुरोहित
उपसचिव

रामचन्द्र राठी
कोषाध्यक्ष

श्याम सुन्दर आर्य
सदस्य

डॉ. अनिता वर्मा
सदस्य

विजयराज सेठिया
सदस्य

श्रीभगवान सैनी
सदस्य

ओमप्रकाश गुरावा
सदस्य

सम्पर्क : 9414416274, 9414416252, 9414416269, 01565-294670 (कार्यालय)

www.rbhpsdungargarh.com hindipracharsamiti@gmail.com

जूनी ख्यात परिवार की तरफ से हार्दिक बधाई।

महावीर प्रसाद माली मरुभूमि शोध संस्थान,
श्रीडूँगरगढ़ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : महर्षि प्रिंटर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

जूनी ख्यात बैंक विवरण :

Account Name : Marubhumi Shodh Sansthan
Bank : Punjab National Bank, Sridungargarh
Account No. : 3604000100174114
IFSC : PUNB0360400

Website : http://rbhpsdungargarh.com